भारतीय मज़दूर

लेखक

शंकरसहाय सक्सेना एम. ए., एम. काम.,

अर्थशास्त्र प्रोफेसर बरेली कॉलेज, बरेली

रचयिता

भारतीय सहकारिता आन्दोलन, गावों की समस्याएँ, कार्ल मार्क्स के आर्थिक सिद्धान्त, पूर्व की राष्ट्रीय जागृति, भारतीय ग्राम अर्थशास्त्र इत्यादि ।

प्रकाशक:-

नवयुग साहित्य-सदन

आचार्य श्री नरेन्द्र देव

को

" जिनकी
वाणी में समाज के
शोषित अंग की आशा निहित है,
जो प्रति क्षण देश के लिए ही जीवित रहते हैं,
और जिनके महान व्यक्तित्व ने
लेखक को प्रभावित
किया है।"

सादर समर्पित

निवेदन.

१५ अगस्त १९४७ को भारतवर्ष ने शताब्दियों के उपरान्त अपनी चिरपोषित अभिलाषा स्वतन्त्रता को प्राप्त किया है। ऐसी दशा में देश की आर्थिक उन्नति के सम्बन्ध में देशवासी गम्भीरतापूर्वक सोचने लगें यह स्वाभाविक ही है। गत युद्ध की विभीषिका ने औद्योगिक उन्नति की आवश्यकता को और भी नग्नरूप में हमारे देश के सामने उपस्थित कर दिया है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न विचार के लोग अपनी आर्थिक योजनाओं को लेकर देश के सामने उपस्थित हुए हैं। परन्तु औद्योगिक उन्नति और धन्धों में काम करने वाले मज़दूरों की समस्या का घनिष्ट सम्बन्ध है, अतएव हम मजदूरों के प्रश्न की अवहेलना नहीं कर सकते।

हिन्दी में अर्थशास्त्र संबंधी साहित्य इतना कम है कि उसके लिए हम हिंदी प्रेमियों को लज्जित होना चाहिए। परन्तु जहां अन्य आर्थिक समस्याओं पर हिन्दी में एक दो ग्रन्थ हैं, वहां मजदूरों के सम्बन्ध में एक पुस्तक का भी न होना लेखक को बहुत खटकता था। कई बार मज़दूरों की समस्याओं को लेकर एक पुस्तक लिखने की बात मन में उठी और विलीन हो गई। और पुस्तकों के लिखने में फँसे रहने के कारण तथा पिछले वर्षों से कॉलेज का कार्य-भार बढ़ जाने के कारण मैं इस पुस्तक को न लिख सका। १९४५ के जून मास में जब मैं अपने आदरणीय मित्र प्रो. दयाशंकर दुबे और श्री. भगवानदास केला से मिलने प्रयाग गया तो वहां इस सम्बन्ध में फिर चर्चा चली और मैंने पुस्तक लिखने का दृढ़ निश्चय कर लिया।

यद्यपि मैंने "भारतीय मजदूरों" पर ही पुस्तक लिखी है, किन्तु जहां-जहां मजदूरों के प्रश्नों का सैद्धांतिक विवेचन किया गया है, वहां मैंने अन्य देशों के बारे में भी संकेत किया है। कुछ समस्याओं के हल करने में हमें विदेशों के उदाहरणों से सहायता मिल सकती है।

अस्तु, मैंने उन समस्याओं पर लिखते समय विदेशों में होने वाली हलचलों की भी चर्चा की है।

आज हमारे बहुत से राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता मज़दूरों में भी काम करते हैं और उन्हें मज़दूरों की समस्याओं पर साहित्य पढ़ने की आवश्यकता होती है। अंग्रेजी में तो इस विषय पर ढेरों साहित्य है परन्तु जो कार्यकर्त्ता अंग्रेजी नहीं जानते या कम जानते हैं, वे हिन्दी में इस विषय पर कोई पुस्तक न होने के कारण बहुत-सी आवश्यक बातों से अनभिज्ञ रहते हैं। यहां तक कि मज़दूरों सम्बन्धी कानून भी अंग्रेजी में प्रकाशित होने के कारण साधारण कार्यकर्त्ता तथा स्वयं मजदूरों के लिये व्यर्थ रहते हैं। उन्हें इन कानूनों की जानकारी नहीं होती, इस कारण वे उनसे पूरा लाभ भी नहीं उठा पाते। इसी कारण पुस्तक में सारे मजदूरों से सम्बन्धित कानूनों की मुख्य बातों को लिख दिया गया है।

संक्षेप में मैंने पुस्तक लिखते समय इस बात का ध्यान रक्खा है कि पुस्तक में सभी आवश्यक बातों का समावेश कर दिया जावे जिससे वह भारत की आर्थिक समस्याओं के अनुशीलन करने वालों, राजनैतिक कार्यकर्त्ता, मजदूरों के शुभचिन्तकों और स्वयं मजदूरों के लिये उपयोगी हो। पुस्तक कैसी है इसका निर्णय तो विज्ञ पाठक ही कर सकते हैं। मैंने तो पुस्तक लिख कर अपना कर्तव्य-पालन कर दिया।

अन्त में मैं आचार्य नरेन्द्र देव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट किये बिना नहीं रह सकता। उन्होंने मुझे इस पुस्तक के लिखने के लिये बहुत प्रोत्साहित किया और बराबर वे मुझे पुस्तक को शीघ्र लिख देने का आग्रह करते रहे। उनके इस गम्भीर आग्रह ने ही मुझे इस पुस्तक को शीघ्र समाप्त करने के लिए प्रेरित किया है।

बरेली
१४ मई ४८

शंकरसहाय सक्सेना

विषय सूची

भारतीय मजदूर

प्रथम परिच्छेद

पूर्व कथन

अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक भारतवर्ष केवल अपनी जनसंख्या के लिए ही तैयार माल उत्पन्न नहीं करता था, वरन विदेशों को भी अपना तैयार माल भेजता था। उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही भारतीय उद्योग-धन्धों का पतन आरम्भ हो गया। क्रमशः भारतवर्ष विदेशों विशेष कर ब्रिटेन से तैयार माल मँगाने लगा और कच्चा माल तथा अनाज विदेशों को भेजने लगा। यह सब इस कारण हुआ कि भारत परतंत्र होगया। ईस्ट इण्डिया कंपनी की घातक नीति ने भारतीय धन्धों को नष्ट करने में सहायता पहुँचाई। इधर ब्रिटेन में भाप तथा यंत्रों के आविष्कार से औद्योगिक क्रान्ति हुई और वहां बड़े-बड़े कारखाने स्थापित हुए। अपने कारखानों के माल को भारत में खपाने के लिये यह आवश्यक था कि भारत के धन्धों को नष्ट कर के भारत को केवल कच्चा माल उत्पन्न करने वाला देश बना दिया जावे। इस नीति का फल यह हुआ कि भारत क्रमशः विदेशों को खाद्य पदार्थ तथा कच्चा माल भेजने लगा और उसके बदले तैयार माल मंगाने लगा।

इसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग-धन्धों में काम करने वाले भी खेती करने पर विवश हो गये और भारत की कला, कारीगरी, उद्योग-धन्धे नष्ट हो गये। आर्थिक पतन के साथ ही हमारा बौद्धिक विकास रुक गया और हमारा नैतिक पतन भी आरम्भ हो गया।

१८५० ईसवी के उपरान्त गमनागमन के साधनों की उन्नति के फल स्वरूप नये उद्योग-धन्धों का भारत में प्रादुर्भाव हुआ। सब से पहले खेती से सम्बन्धित धंधों का यहाँ श्री गणेश हुआ। अंग्रेज व्यवसायियों ने

सस्ती मजदूरी और अनुकूल जलवायु तथा भूमि का लाभ उठाने के लिये यहाँ नील, चाय, कहवा, जूट की खेती करना आरम्भ की।

इसके उपरान्त कोयले तथा अन्य खनिज पदार्थों को खानों से निकालने का धंधा आरम्भ किया गया। खनिज पदार्थों को निकालने में भी मुख्यतः अंग्रेजी पूंजी ही लगाई गई। ध्यान रखने की बात यह है कि खानों का धन्धा भी ब्रिटेन को कच्चा माल ही देता था।

१८५० के उपरान्त ही भारत में सड़कों और रेलों का विस्तार आरम्भ हुआ। रेलवे स्वयं एक बहुत बड़ा धंधा है। सच तो यह है कि रेलवे ने देश में बहुत से धंधों को जन्म दिया है। इसके उपरान्त बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में नहरों का विस्तार किया गया।

किन्तु इन सब धंधों से अधिक महत्वपूर्ण धंधे सूती कपड़े के कारखाने थे, जो कि १८६० के उपरान्त तेजी से स्थापित होने लगे। सूती कपड़ों के अतिरिक्त जूट के कारखाने, लोहे के कारखाने और ऊन के कारखाने भी स्थापित हुए।

प्रथम महायुद्ध के उपरान्त सूती कपड़े के कारखानों, लोहे, दियासलाई, शीशे, शक्कर, चमड़े, काग़ज, सीमेंट के कारखानों की भी स्थापना हुई।

द्वितीय महायुद्ध के समय भारतीय-धंधों की और भी वृद्धि हुई; और अब देश में राष्ट्रीय सरकार स्थापित हो जाने के फल स्वरूप वे आर्थिक योजनायें, जो कि देश के सामने उपस्थित की जा रही हैं, यदि कार्य रूप में परिणत की गईं तो निकट भविष्य में भारतवर्ष में आशातीत औद्योगिक उन्नति हो सकती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

किन्तु इससे हमें यह न मान लेना चाहिए कि भारत में आधुनिक ढंग के उद्योग-धन्धों का प्राधान्य है। बात ठीक इसके विपरीत है। आज भी देश की अधिकांश जन-संख्या (७५ प्रतिशत) खेती पर निर्भर है। और शेष ग्रामीण जन-संख्या, जो गाँवों में निवास करती है, वह भी परोक्ष रूप से खेती पर निर्भर है। इस संबन्ध में नीचे लिखे आँकड़े

महत्वपूर्ण हैं ।

पिछले पचास वर्षों में खेती पर अवलम्बित जन-संख्या का अनुपात भारत की कुल जन-संख्या की तुलना में इस प्रकार था—

१८६१ में ६१·१ प्रतिशत, १९०१ में ६५·५ प्रतिशत, १९११ में ७२·२ प्रतिशत, १९३१ में ७३ प्रतिशत, १९४१ में ७५ प्रतिशत ।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि खेती पर अधिकाधिक जन संख्या निर्भर होती गई; और यही कारण है कि भारत में प्रति किसान जोती जाने वाली भूमि का औसत केवल ढाई एकड़ रह गया । भूमि पर जन-संख्या के अत्यधिक भार का मुख्य कारण यह है कि जहाँ एक ओर देश की जन-संख्या बढ़ती गई, दूसरी ओर गृह उद्योग धन्धे नष्ट होते गए और आधुनिक ढंग के कारखाने और धन्धे, गृह उद्योग धन्धों से हटाई हुई जनसंख्या को तथा स्वाभाविक रूप से बढ़ी हुई जनसंख्या को न खपा सके । इसका परिणाम यह हुआ कि उद्योग-धन्धों में लगी हुई जन-संख्या का अनुपात कम होता गया । जहाँ १९११ में उद्योग-धन्धों (जिसमें गृह-उद्योग धन्धे भी सम्मिलित हैं) में लगी हुई जनसंख्या देश की कुल जनसंख्या की ५·५ प्रतिशत थी, वहाँ १९४१ में ४·२ प्रतिशत रह गई ।

यदि हम केवल आधुनिक ढंग के यंत्रों से चलने वाली फैक्टरियों, खानों, चाय, कहवा, रबर इत्यादि के बागों, रेलवे वर्कशॉपों तथा बन्दर-गाहों में लगे हुए मजदूरों को ही लें तो उनकी संख्या भारत की कुल जनसंख्या का केवल एक प्रतिशत ही है । यदि हम उन लोगों को भी इस संख्या में सम्मिलित कर लें जो कि कारखानों में काम करने वाले मजदूरों पर अवलम्बित हैं—जैसे उनकी पत्नी और बच्चे इत्यादि, तो भी आधु-निक धन्धों में लगे हुए मजदूरों और उनके आश्रितों की संख्या देश की कुल जनसंख्या के ४ प्रतिशत से अधिक नहीं होगी ।

भारतवर्ष में जनसंख्या का भूमि पर इतना अधिक भार है कि अन्य किसी देश में जनसंख्या इस सीमा तक खेती पर निर्भर नहीं है । अत-

एव भारत की निर्धनता का एक मुख्य कारण यह भी है कि प्रति मनुष्य इतनी कम भूमि (एक एकड़ से भी कम) का औसद है कि उस पर एक व्यक्ति के लिए यथेष्ट सम्पत्ति उत्पन्न करना सम्भव नहीं है। भूमि के अत्यधिक भार को कम करने का एक मात्र उपाय उद्योग-धन्धों की उन्नति है। यही कारण है कि देश का प्रत्येक विचारवान् व्यक्ति भारत के औद्योगीकरण का पक्षपाती है।

आज देश के सामने बहुत-सी आर्थिक योजनायें उपस्थित हैं। टाटा-बिरला योजना, गांधी योजना, जनता की योजना, कांग्रेस द्वारा स्थापित राष्ट्रीय योजना समिति, सभी ने इस बात को स्वीकार किया है कि बिना औद्योगिक उन्नति के देश का निस्तार नहीं है। केवल मत-भेद इस बात पर है कि औद्योगिक संगठन किस प्रकार का हो। अस्तु। अब देश के स्वतन्त्र हो जाने के उपरान्त देश की औद्योगिक उन्नति तेजी से होगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। और उद्योग धन्धों के साथ मजदूरों का प्रश्न जुड़ा हुआ है। उद्योग-धन्धों की उन्नति तभी हो सकती है कि जब उनमें लगे मजदूरों की स्थिति में सुधार हो, उनकी कार्य-क्षमता बढ़े, मिल मालिकों और मजदूरों के सम्बन्ध अच्छे रहें, मजदूरों की आर्थिक, सामाजिक तथा नैतिक उन्नति हो और उनकी सुविधा तथा उनके सुख का ध्यान रक्खा जावे। इस दृष्टि से मज़दूरों की समस्या राष्ट्रीय महत्व की समस्या है।

आज हमारे कारखानों में काम करने वालों की जो दयनीय दशा है, उससे प्रत्येक व्यक्ति परिचित है। जब देश में औद्योगिक उन्नति की चर्चा बहुत तेजी से हो रही है, तब हमें धन्धों में काम करने वालों की समस्याओं को भूल नहीं जाना चाहिये। उद्योग-धन्धों की उन्नति का एक मात्र उद्देश्य देश की निर्धनता को मिटाना है, न कि कतिपय पूँजीपतियों और मिलमालिकों की तिजोरियों को भरना। यदि भारत की औद्योगिक उन्नति का अर्थ यह हो कि कतिपय पूंजीपति करोड़पति से अरब और खरबपति बन जावें और उन धंधों में लगे हुए मजदूर

विवश, निर्धन और गंदा जीवन व्यतीत करें तो यह औद्योगिक उन्नति देश के लिए अहितकर होगी। औद्योगिक उन्नति भारत के लिए आवश्यक है किन्तु राष्ट्र के असंख्य नागरिकों के शोषण को कदापि सहन नहीं किया जा सकता। इसी दृष्टि से हमें मजदूरों की समस्याओं को देखना होगा और देश के भावी औद्योगिक संगठन में मज़दूरों का क्या स्थान होगा, यह निर्धारित करना होगा।

सच तो यह है कि मज़दूरों के शोषण का अंत तभी हो सकेगा, जब कि हम देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित कर सकें और उद्योग-धंधों का राष्ट्रीयकरण हो जावे। किन्तु जब तक कि देश में समाजवादी व्यवस्था कायम नहीं होती, तब तक हमें पूंजीवादी व्यवस्था में ही मजदूरों के हितों की अधिक से अधिक रक्षा करने का प्रयत्न करना चाहिए।

द्वितीय परिच्छेद

गांवों और उद्योग धंधों का संबंध

भारत के मुख्य औद्योगिक केन्द्र

भारत में जूट का धंधा कलकत्ते के समीप हुगली नदी के दोनों ओर केन्द्रित है और भारतवर्ष में सब से अधिक साढ़े चार लाख मज़दूर इस औद्योगिक केन्द्र में काम करते हैं। इस का अर्थ यह नहीं है कि कलकत्ते में जूट के अतिरिक्त और दूसरे कारखाने नहीं हैं; वहां कपड़ा, कागज, इंजिनियरिंग वर्क्स, दियासलाई तथा अन्य कारखाने भी हैं। कलकत्ते के उपरान्त बम्बई भारत का प्रमुख औद्योगिक केन्द्र है। बम्बई में चार लाख मज़दूर भिन्न-भिन्न कारखानों में काम करते हैं। यहां मुख्यतः कपड़े के कारखाने हैं। इन दो औद्योगिक केन्द्रों में भारत के

कारखानों में काम करने वाले मजदूरों का बहुत बड़ा भाग काम करता है। इन दो केन्द्रों के अतिरिक्त अहमदाबाद, कानपुर, मद्रास, नागपुर, जमशेदपुर, प्रमुख औद्योगिक केन्द्र हैं। अहमदाबाद में सूती कपड़े की मिलें हैं, मद्रास में कपड़ा, चमड़ा तथा अन्य कारखाने हैं, कानपुर में कपड़े और चमड़े के कारखाने हैं और नागपुर में मुख्यतः कपड़े के कारखाने हैं। जमशेदपुर में प्रसिद्ध टाटा कंपनी का लोहे का कारखाना है। इन प्रमुख केन्द्रों के अतिरिक्त फुटकर औद्योगिक केन्द्र हैं, जहां कतिपय मिलें और कारखाने हैं; जैसे शोलापुर, इंदौर, देहली, लखनऊ, लाहौर इत्यादि।

इनके अतिरिक्त रानीगंज झरिया की कोयले की खानें, आसाम, बंगाल तथा दक्षिण के चाय और कहवा के बाग तथा रेलवे वर्कशापों में भी मजदूरों की आवश्यकता होती है।

इनमें कलकत्ता, बम्बई, जमशेदपुर कोयले की खानों और चाय के बागों को छोड़ और सभी केन्द्रों में मजदूर समीपवर्ती जिलों से ही आते हैं।

भारतीय धंधों में स्थायी मजदूरों का अभाव

भारतीय धंधों की एक विशेषता है। धंधों में काम करने वाले मज़दूर औद्योगिक केन्द्रों में उत्पन्न नहीं होते, वरन् वे गांवों से आते हैं और कुछ समय कारखानों में काम करने के उपरान्त अपने गांवों को वापस लौट जाते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारतीय धंधों में काम करने वाले मज़दूर उन औद्योगिक केन्द्रों के स्थायी रहने वाले नहीं होते, वरन् वे कुछ समय के लिए गांवों से प्रवास करके केन्द्रों में आते हैं और अन्त में फिर गांवों में वापस लौट जाते हैं। जो भी ग्रामीण गांवों से औद्योगिक केन्द्र की ओर आता है, वह इस बात की कल्पना भी नहीं करता कि वह स्थायी रूप से गांव को छोड़ कर औद्योगिक केन्द्र में रहेगा। वह तो अपने गांव को ही अपना देश मानता है और जहां काम

करता है, उसे परदेश मानता है।

भारतीय मज़दूर की इस मनोवृत्ति के आधार पर कुछ मिल मालिक और विद्वान् यह कहते हैं कि भारतीय कारखानों में मुख्यतः किसान काम करते हैं। जब वे खेती से अवकाश पाते हैं तो कारखानों में काम करने चले आते हैं; और जब खेती के लिए उनकी जरूरत होती है तो वे गांवों को लौट जाते हैं। जहां तक मौसमी कारखानों, जैसे शक्कर, चावल, कपास के पेच का प्रश्न है; यह बात ठीक है; किन्तु स्थायी कारखानों में काम करने वाले मज़दूर किसान नहीं होते। उन मज़दूरों का, जो सूती कपड़े, चमड़े, लोहे तथा अन्य कारखानों में काम करते हैं, खेती से कोई सीधा संबंध नहीं होता; परन्तु प्रति वर्ष वे कुछ समय के लिए नियमित रूप से गांवों को जाते हैं, जिससे कुछ मिल मालिक यह अनुमान लगाते हैं कि वे मुख्यतः खेती करने वाले किसान हैं, जो अवकाश के समय कारखानों में काम कर लेते हैं। वास्तव में यह धारणा गलत है: सच तो यह है कि जो मज़दूर कारखानों में काम करते हैं, वे गांवों में उत्पन्न, गांव में पले और अपने जीवन के संध्या काल में फिर अपने गांव को लौट जाने के स्वप्न देखते हैं। इस कारण वे अपने गांव को छोड़ते नहीं, वरन् उससे सम्बन्ध बनाये रखते हैं। किन्तु उनका खेती से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं होता। हां, यह अवश्य है कि किसी की दो-चार बीघा मौरूसी भूमि होती है तो किसी के भाई, बाप, चाचा, गांव में रहते हैं और उसका भी अपने कुटुम्ब की पैतृक जायदाद में थोड़ा हिस्सा है। किसी-किसी कुटुम्ब में ऐसा होता है कि यदि घर में चार भाई हैं तो दो बम्बई चले जाते हैं, और दो गांव में खेती करते हैं।

यद्यपि मज़दूरों का खेती से सीधा सम्बन्ध नहीं रहता, परन्तु यह सत्य है कि प्रत्येक मज़दूर अपने पैतृक गांव से सम्बन्ध बनाये रखता है और अन्त में गांव को ही लौट जाता है। मजदूर अपने गांव से सम्बंध क्यों बनाये रखता है, इसके कुछ कारण हैं। वह हृदय से ग्रामीण है, गांवों में ही उत्पन्न हुआ, गांवों में ही वह पला और अधिकांश मजदूर अपनी

पत्नियों को गांव में ही छोड़ देते हैं। यदि औद्योगिक केन्द्र में वे अपनी पत्नियों को लाते भी हैं तो बच्चा उत्पन्न होने के समय वे गांवों को चली जाती हैं। यही नहीं, अधिकतर बच्चों का बचपन भी गांवों में ही व्यतीत होता है। इसी प्रकार से जब कोई बीमार होता है या वृद्ध हो जाने के कारण कार्य नहीं कर सकता तो वह अपने पैतृक गांव को चला जाता है। इन्हीं कारणों से वह अपने गाँव को छोड़ना नहीं चाहता और विवाह के मौसम में, कुटुम्ब के किसी महत्वपूर्ण कार्य में बराबर सम्मिलित होता रहता है। यही नहीं, यदि उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है तो वह प्रतिवर्ष एक या दो महीने के लिए गाँव आता है, नहीं तो दूसरे या तीसरे वर्ष तो अवश्य ही आता है।

गांवों से औद्योगिक केन्द्रों की ओर प्रवास के कारण

गाँवों से मजदूर क्यों कारखानों में काम करने जाता है, इसका मुख्य कारण उसकी निर्धनता और गाँव में आय के साधनों का न होना है। यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारत में भूमि पर जनसंख्या का अत्यधिक भार है। खेती को छोड़ कर गाँव में और धंधे नहीं हैं, साथ ही क्रमशः घरेलू धंधे नष्ट हो रहे हैं और जनसंख्या तेजी से बढ़ रही है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि गाँव में बहुत बड़ी संख्या में भूमि रहित मजदूर वर्ग उत्पन्न हो गया है। साथ ही, अधिकांश किसानों के पास इतनी कम भूमि है कि उसका भूमि से गुजारा नहीं होता। अतएव अपनी रोजी कमाने के लिए उसे अपना गाँव छोड़ कर औद्योगिक केन्द्रों की ओर जाना पड़ता है। कर्ज का भयंकर बोझ भी किसान को औद्योगिक केन्द्रों में जा कर धन कमाने के लिए विवश करता है। गाँवों में चलने वाले घरेलू उद्योग धन्धों के मिलों तथा विदेशी माल के मुकाबिले में नष्ट हो जाने के कारण और भूमि की कमी के कारण उन धन्धों से हटने वाले कारीगर मिलों में जाकर काम करते हैं। अहमदाबाद तथा बम्बई में अधिकांश बुनने वाले जुलाहे या कोरी हैं, जिनका घरेलू धंधा

नष्ट हो गया तो उनके पास जीविका का कोई साधन न रहने के कारण उन्हें केन्द्रों में जाने के सिवाय और कोई चारा नहीं रहा।

अतएव यह साफ है कि किसान अपनी निर्धनता के कारण शहरों की ओर जाता है। हां, पिछले दिनों में जो नीची जाति के लोगों में चैतन्य उदय हुआ है, वह भी इस प्रवास का एक कारण है। क्योंकि गाँवों में छुआछूत, जातपांत के बन्धन इतने कड़े हैं कि अछूत कहे जाने वाले लोगों को वह असह्य होते हैं। इसके विपरीत शहरों में स्थिति इतनी कठोर नहीं है। हरिजनों के अतिरिक्त और भी जो लोग गाँवों में जातिच्युत हो जाते हैं, उनका जीवन भी वहाँ दूभर हो जाता है. क्योंकि वहाँ उनका सामाजिक बहिष्कार होता है। इस कारण ऐसे लोग गाँव से भाग कर नगरों में चले आते हैं। यद्यपि ग्रामीणों के शहर की ओर जाने के यह सामाजिक कारण भी हैं; किन्तु मुख्य कारण तो उनकी निर्धनता ही है।

मजदूरों का अपने गांव से संबंध बनाये रखना

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट हो गया कि आर्थिक तथा सामाजिक कारणों से ग्रामीण, केन्द्र को प्रवास करता है; किन्तु गाँव से वह सम्बन्ध क्यों बनाये रखता है, यह स्पष्ट नहीं होता। गांव से सम्बन्ध बनाये रखने का एक मात्र कारण यह है कि ग्रामीण के लिये शहरों में कोई भी आकर्षण नहीं है; वह तो अपनी निर्धनता के कारण वहाँ पैसा कमाने के लिये जाता है। किन्तु वहाँ उसका मन नहीं लगता, वह अपने गाँव के खेत बाग और झोपड़ी की याद करता है और उस दिन की बाट जोहता है, जब वह सर्वदा के लिये शहर को छोड़ कर अपने गांव में जाकर शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करेगा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण को नगर अपनी ओर आकर्षित नहीं करते, वरन् परिस्थितियां उसे शहरों की ओर ढकेल देती हैं। यही कारण है कि जब परिस्थिति अनुकूल होती है तभी वह गाँव को लौट आता है। और जिन दिनों वह शहरों में रहता है उन दिनों भी वह अपने गाँव से सम्बन्ध बनाये रखता

है और समय और सुविधा होने पर गांव आता है।

हिन्दुओं में प्रचलित संयुक्त कुटुम्ब-प्रणाली भी इसका एक मुख्य कारण है। मजदूर के अधिकाँश परिवार के लोग गाँव में रहते हैं और उसके हिस्से की थोड़ी भूमि भी होती है। वह इस बंधन से बंधा रहता है। फिर शहरों में बच्चों और औरतों के लिए काम की कमी रहती है। इस कारण मजदूर अपने स्त्री और बच्चों को गाँव में ही छोड़ देता है; क्योंकि गाँव में रहने का खर्च बहुत कम है और वहाँ मकान इत्यादि की असुविधायें नहीं हैं। गाँव में थोड़ाबहुत काम स्त्रीबच्चे सभी कर लेते हैं, इस कारण गाँव में परिवार का पालन पोषण सरलता से हो सकता है। फिर ग्रामीण का पीढ़ी दर पीढ़ी का गाँव से सम्बन्ध होता है। उसे शहरी जीवन, जो व्यक्तिवाद के आधार पर निर्भर है, नहीं भाता। उसे तो गाँव का सामूहिक जीवन ही अच्छा लगता है।

फिर शहरों और औद्योगिक केन्द्रों के जीवन में आकाश पाताल का अन्तर होता है। जब ग्रामीण बम्बई या कलकत्ता जैसे विशाल केन्द्र में पहुँचता है तो वह भौचक्का-सा रह जाता है। कहां गांव का शान्त वातावरण और कहां इन केन्द्रों का मनुष्य को थका देने वाला निरन्तर शोर! कहीं वृक्षों का नाम नहीं। रहने का स्थान गंदा और पशुओं के निवास स्थान से भी निकृष्ट। थका हुआ मजदूर जब अपनी चाल में आता है तो मानो जेल की एकांत कोठरी में आ गया हो।

केवल यही अंतर नहीं होता, बहुत से औद्योगिक केन्द्र दूसरे प्रान्तों के मजदूरों को आकर्षित करते हैं। वहां की भाषा, वेश, भोजन, रहन-सहन, और जलवायु, सभी ग्रामीण के लिए अपरिचित होते हैं और वह वहां खोया-खोया-सा रहता है। शहरों की सभ्यता, वहां का जीवन और वहां के आदर्श, गांवों से इतने भिन्न हैं कि ग्रामीण उन्हें कभी भी नहीं अपना पाता।

जब ग्रामीण पहली बार अपने गांव को छोड़ कर औद्योगिक केन्द्र में आता है तो वहां की जलवायु की भिन्नता और रहन-सहन की भिन्नता

के कारण वह बीमार पड़ जाता है। उस समय वह गांव और औद्योगिक केन्द्र के अन्तर को समझता है। जहां गांव में बीमार पड़ने पर उसकी चारपाई के पास चार गांव के लोग बैठे रहते थे, वहां वह शहर में अपनी गंदी कोठरी में अकेला पड़ा रहता है। उस समय उसे अपनी गांव की चौपाल, खेत, भाई-बिरादरी की याद आती है और वह भाग खड़ा होता है। यदि ग्रामीण पहली बार की बीमारी झेल गया तो फिर वह वहां रह कर काम करता है। फिर भी जब कभी ग्रामीण लम्बा बीमार हो जाता है अथवा वृद्ध हो जाता है, या बेकार हो जाता है तो वह अपने गांव को याद करता है। बीमारी, बेकारी, और बुढ़ापे को काटने के लिए गांव औद्योगिक केन्द्रों की अपेक्षा बहुत ही सुविधा जनक स्थान हैं।

यही नहीं, कारखानों का काम भी ग्रामीण के अनुकूल नहीं पड़ता। ग्रामीण बहुत मेहनती होता है, किन्तु खेती का काम ऐसा नहीं होता कि जिसमें किसान को मशीन बन जाना पड़े। फैक्टरियों का काम मनुष्य को यंत्रवत बना देता है, वहाँ का अनुशासन भी ग्रामीण मजदूर को बहुत खलता है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतीय मजदूर अपने युवाकाल में औद्योगिक केन्द्र में आता है, तब तक वह खेती करता है। खेती और कारखानों के काम में बहुत बड़ा अन्तर है।

यही कारण हैं कि ग्रामीण सर्वदा के लिये गांव को नहीं छोड़ता, वह अस्थायी रूप से ही केन्द्रों में रहता है।

अब प्रश्न यह है कि हिन्दुस्तानी मजदूर की इस विशेषता से धंधों को लाभ है या हानि? सच तो यह है कि इससे लाभ और हानि दोनों ही हैं। जहाँ संयुक्त राज्य अमेरिका या ब्रिटेन का मजदूर जो औद्योगिक केन्द्रों में ही जन्म लेता है और अपने पिता को कारखानों में जाते देखता है, उन्हीं कारखानों में स्वयं भी बड़ा होने पर काम करने की बात सोचता है तो वह यह मानने पर विवश होता है कि कारखानों और उसका चिर-सम्बन्ध है। वह जानता है कि उसको सर्वत्र इन्हीं कारखानों में काम करना है और सदा औद्योगिक केन्द्रों में ही रहना है। ऐसी दशा में ब्रिटेन

का मजदूर अपने अधिकारों, वेतन, काम के घंटों के प्रश्नों में तथा मजदूर सभाओं में अधिक दिलचस्पी लेता है। वह यंत्रों से काम करने में अधिक कुशल होता है; क्योंकि, वह बचपन से ही यंत्रों से परिचित होता है। किन्तु भारतीय मजदूर जब तक कि वह औद्योगिक केन्द्रों में नहीं पहुँचता, यंत्र के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता। बहुत दिनों में यन्त्रों पर काम करने की कुशलता वह प्राप्त कर पाता है; फिर भारतीय मजदूर जानता है कि उसे सदैव तो औद्योगिक केन्द्रों में रहना नहीं है; इसलिए वह धन्धे से सम्बन्ध रखने वाली बातों में उतनी दिलचस्पी नहीं लेता। स्थायी रूप से औद्योगिक केन्द्रों में ही बसने वाले मजदूर कारखाने के अनुशासन के अभ्यस्त हो जाते हैं और उनकी मनोवृत्ति यांत्रिक हो जाती है। किन्तु भारतीय मजदूर में वह उत्पन्न नहीं होती।

इसका एक परिणाम यह होता है कि फैक्टरी में मजदूर जल्दी-जल्दी बदलते रहते हैं। कहीं-कहीं तो यह देखने में आता है कि चार-पांच वर्षों में सब नये मजदूर हो जाते हैं। पुराना एक नहीं रहता। क्योंकि जब मजदूर गांव जाता है, तब उसे छुट्टी तो मिलती नहीं, वह नौकरी छोड़ कर जाता है। जब वह महीने दो महीने के बाद लौट कर आता है तो उसे पुराना मजदूर होने के कारण भर्ती होने में कोई सुविधा नहीं दी जाती; इस लिए अगर उसी कारखाने में जगह मिल गई तो वह उस कारखाने में नहीं तो और किसी कारखाने में जगह ढूंढता है। हर एक कारखाने के यंत्र, काम करने का ढंग और संगठन भिन्न होता है। इसलिए मजदूर जब दूसरे कारखाने में जाता है तो वह नौसिखिया होता है और उसकी कार्यक्षमता कम होती है। यही नहीं, इस अदल-बदल का फल यह होता है कि मिल मालिक और मजदूरों में घनिष्ट और स्नेहपूर्ण सम्बन्ध ही स्थापित नहीं हो सकता। यही नहीं, जैसा कि हम आगे चल कर बतलावेंगे, मजदूर जब गाँव से वापस लौटता है तो उसे कुछ दिनों भटकना पड़ता है, तब कहीं जाकर उसे घूस देने पर जगह मिलती है। इससे मजदूरों की आर्थिक हानि भी बहुत होती है।

जहां गांव से सम्बन्ध रहने से यह हानियां हैं, वहां लाभ भी हैं। हानि की अपेक्षा लाभ अधिक महत्वपूर्ण हैं। पहला लाभ तो यह है कि कारखानों में काम करने वाला मजदूर गांव में पलता और बड़ा होता है। इस कारण उसका स्वास्थ्य और शरीर अच्छा होता है। एक गांव के लड़के को देखिये, जो किसान का लड़का है; और एक कानपुर के मिल मजदूर के बच्चे को देखिये, जो कानपुर में ही उत्पन्न हुआ हो और पला हो तो अन्तर स्पष्ट हो जावेगा। यदि यह मजदूर गांवों से न आ कर शहरों में ही उत्पन्न होते और बड़े होते तो उनका स्वास्थ्य और भी खराब होता और शरीर निर्बल होता।

जो मजदूर प्रति वर्ष एक-दो महीने के लिए औद्योगिक केन्द्र से छुट्टी लेकर गांव चला जाता है, वह भी उसके मस्तिष्क और शरीर को सबल बनाता है। यही नहीं, ग्रामीण और शहरी जीवन के सम्मिलन से जो दृष्टिकोण विस्तृत होता है, वह केवल शहरी जीवन से नहीं हो सकता। इसके सिवाय जहां गांव से सम्बन्ध रहता है, वहां मजदूर को विपत्ति और आवश्यकता के समय एक अवलम्बन रहता है, जहां कि वह जा सकता है। एक प्रकार से गांव मजदूरों की बीमारी, बुढ़ापे और बेकारी का बीमा है। अन्य औद्योगिक देशों में इन समस्याओं को हल करने के लिए सामाजिक बीमे का प्रबन्ध किया गया है। जब तक केन्द्रों में इनका उचित प्रबन्ध नहीं होता, तब तक तो गांवों से सम्बन्ध रखना एक अनिवार्य आवश्यकता है। गांव वृद्ध, गर्भवती स्त्री, छोटे बच्चों, बेकारों, अपाहिजों और शक्तिहीनों के लिए शहरों की अपेक्षा अच्छा निवासस्थान है।

गांव और औद्योगिक केन्द्रों के केवल यही लाभ नहीं हैं। शहरों में जाकर ग्रामीण नई बातों को सीखता है, नये विचारों को ग्रहण करता है और जब गांवों में समय-समय पर आता है तथा अन्त में गांवों में बसता है, तब वह उन नवीन विचारों का गाँवों में भी समावेश करता है। जो व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की भावना मजदूर में जागृत होती है, वह उसका प्रचार गांव में भी करता है। अस्तु, औद्योगिक केन्द्रों में

जाने से उसे आर्थिक लाभ ही नहीं होता; वरन् उसे नवीन विचार, विस्तृत संसार का ज्ञान होता है और वह उन विचारों को गांवों में लाता है। यदि गांव और शहरों का यह सम्बन्ध समाप्त हो जावेगा तो गांव इस लाभ से वंचित हो जावेंगे।

अब प्रश्न यह उठता है कि भविष्य में हमें अपने औद्योगिक केन्द्रों में ऐसा मजदूर वर्ग उत्पन्न करना चाहिये कि जो गांवों को सदा के लिए छोड़ चुका हो और जो स्थायी रूप से औद्योगिक केन्द्र में बस गया हो, या वर्तमान संबंध सुरक्षित रखना चाहिए और उसे प्रोत्साहन देना चाहिए।

यह एक ऐसा प्रश्न है कि जिस पर ध्यान देना नितान्त आवश्यक है; क्योंकि मजदूरों की बहुत-सी समस्याओं का इससे गहरा सम्बन्ध है। अतएव हमें इस प्रश्न पर एक निर्णय कर लेना चाहिए।

शाही मजदूर कमीशन ने इस सम्बन्ध में अपना मत देते हुए कहा था कि यह सम्बन्ध बहुत गहरा है, अतएव यदि हम इसको नष्ट करना भी चाहें तो वह बहुत समय लेगा। साथ ही, कमीशन का यह स्पष्ट मत था कि यह सम्बन्ध अत्यन्त लाभदायक है; इस कारण नष्ट करने के स्थान पर उसे सुरक्षित रखना चाहिए और प्रोत्साहन देना चाहिए। लेखक का भी यही मत है। आवश्यकता इस बात की है कि इस संबंध को नियमित और स्थायी कर दिया जावे, जिससे कि इसके कारण होने वाली हानियां न रहें और उससे होने वाले लाभ को बढ़ाया जा सके।

तृतीय परिच्छेद

मजदूरों की भर्ती

जब भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के कारखानों की स्थापना हुई थी, तब से मालिकों को मजदूरों की कमी की बराबर शिकायत रही। किन्तु १९२० के उपरान्त क्रमशः इस स्थिति में सुधार होता गया और आज कोयले की खानों और चाय के बागों को छोड़ कर किसी भी धन्धे में

मजदूरों की कमी का अनुभव नहीं होता है। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ है कि जहां पहले मिल मालिक मजदूरों को सुख-सुविधा पहुंचाने का प्रयत्न करते थे; उनके लिए मकान, औषधालय तथा अन्य सुविधायें दी जाती थीं और मजदूरों के साथ उनका अच्छा व्यवहार रहता था, वहां आज मिल मालिकों की शोषण करने की शक्ति अधिक बढ़ गई है; क्योंकि उसे मजदूरों की कमी नहीं है। मजदूरों की कमी ही मजदूरों की पहले सब से बड़ी शक्ति थी। किन्तु क्रमशः मजदूरों की वह शक्ति नष्ट होती जा रही है, और उनकी तुलना में मिल मालिक अधिक बलशाली होते जा रहे हैं। आज तो स्थिति यह है कि जब तक मजदूर अपना सबल संगठन नहीं करते, तब तक उनका निस्तार नहीं हो सकता।

आरम्भ में जब मजदूरों की बहुत कमी थी तो हर एक मिल मालिक को मजदूरों की भर्ती के लिए अपने आदमियों को दूर-दूर भेजना पड़ता था। मजदूरों के ठेकेदार तथा अन्य कर्मचारी गांवों में जा कर मजदूरों को भर्ती करते थे और उन्हें मिलों में काम करने के लिये राजी करते थे। इस कार्य के लिए उन्हें कमीशन या वेतन दिया जाता था। आज भी यह तरीका चाय के बागों, कोयले की खानों इत्यादि में प्रचलित है। किन्तु अधिकांश धन्धों में स्थिति यह हो गई है कि भर्ती के दिन मिल के फाटक पर ही आवश्यकता से अधिक मजदूर मिल जाते हैं और मालिक उनमें से छांट कर भर्ती कर सकते हैं। यद्यपि आज मजदूरों को भर्ती करने के लिए मालिकों को गांवों में आदमी भेजने की जरूरत नहीं है; किन्तु फिर भी मिल मालिकों ने सीधे मजदूरों की भर्ती स्वयं करने के बजाय, यह काम पहले की तरह दलालों के हाथ छोड़ रक्खा है। यह जो मजदूरों और मालिकों के बीच में एक मजदूरों का दलाल-वर्ग भारतवर्ष में पैदा हो गया है, यह भारत की एक विशेषता है। इसको भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। जाबर, मुकद्दम, सरदार, मिस्त्री, नायक नामों से इनका सम्बोधन होता है; लेकिन वह सब हैं एक ही पद के नाम। हां, तो मजदूरों और मालिकों के बीच में जो यह

'जाबर' जमा हुआ है, यह हमारे औद्योगिक केन्द्रों का एक भयंकर रोग है।

जाबर

'जाबर' हर एक फैक्टरी में होता है और उसकी शक्ति असीम होती है। वह एक प्रकार से मजदूर के लिए सर्वेसर्वा होता है। वह वस्तुतः चार्जमैन होता है, जिसे मजदूरों की श्रेणी से पुराना और चतुर होने के कारण 'जाबर' बना दिया जाता है। मजदूरों को अपने विभाग में भर्ती करना, उन्हें आवश्यक शिक्षा देना, उनके काम की देखभाल करना तथा मशीनों को ठीक रखना, उसके मुख्य काम होते हैं। मजदूर केवल फैक्टरी में जगह पाने के लिए उस पर निर्भर नहीं रहता, वरन् अपनी जगह को सुरक्षित रखने और आगे उन्नति के लिए भी उस पर ही अवलम्बित रहता है। किसी-किसी स्थान पर तो जाबर मजदूर का महाजन भी होता है। मजदूर उसके ऋण से दबा रहता है। यही नहीं, कहीं-कहीं जाबर के ही मकानों में मजदूर रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता में इन लोगों ने बहुत से रहने के स्थान पट्टों पर ले लिए हैं और इनमें उनके आधीन मजदूर किराये पर रहते हैं।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य, जो जाबर करता है, वह है, उसका मालिक और मजदूरों के बीच में दुभाषिये का काम। जब मालिक कोई सूचना मजदूरों को देना चाहते हैं तो वह जाबर को दी जाती है और वह मजदूरों को समझा देता है। यही नहीं, यदि मजदूरों की कोई माँग होती है, उन्हें कोई कष्ट होता है या वे कोई सुविधा प्राप्त करना चाहते हैं तो वे जाबर के द्वारा ही अपनी बात मालिकों तक पहुँचाते हैं। दूसरे शब्दों में जाबर कुछ कार्य मजदूर सभाओं के भी करता है। इसका स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि जाबर ऐसा महत्वपूर्ण व्यक्ति बन गया है कि मैनेजर इत्यादि भी उसको जल्दी हटाने का साहस नहीं करते; इसका कारण यह है कि अधिकांश मिल-मैनेजर मजदूरों से सीधा संबंध स्थापित करने में असमर्थ हैं।

अब सुनिये 'जाबर' कैसा व्यक्ति होता है। अधिकतर उसे कोई

शिक्षा नहीं होती। थोड़ी बहुत शिक्षा इस कार्य के लिए यथेष्ट होती है। वह उसी मिल का कोई पुराना मजदूर होता है, जो अपने अफसरों को खुश रखने के कारण 'जाबर' बना दिया जाता है। ऐसी दशा में उससे यह आशा करना कि वह अपनी स्थिति से लाभ नहीं उठावेगा, भूल होगी। जाबर मजदूरों से खूब घूस लेता है। जब वह किसी मजदूर को नौकर रखता है तो एक या दो मास का वेतन घूस के रूप में लेता है। कहीं-कहीं मजदूर प्रति मास एक रुपया या कुछ कम घूस उसे देते हैं। जब किसी की तरक्की का प्रश्न आता है तो फिर मजदूर को भेंट चढ़ानी होती है। जाबर को शराब पिलाना, उसकी दावत करना भी आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त जाबर के घर पर बारी-बारी से काम करना तो अनिवार्य है। जाबर अपने दो चार सम्बन्धियों को भर्ती कर लेता है, वे अधिकांश में काम नहीं करते। वह कार्य अन्य मजदूरों से लिया जाता है और तनख्वाह के दिन वह लोग तनख्वाह ले लेते हैं। यह रुपया भी जाबर की जेब में जाता है। सच तो यह है कि जाबर मजदूरों को खूब ही लूटता है। साथ ही मजदूरों पर उसका प्रभाव भी इतना अधिक होता है कि मिल मालिक भी उसको निकालने से हिचकते हैं।

कई ऐसे उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जाबर को निकालने पर उसने हड़ताल करवा दी। यही सब कारण हैं, जिनसे मिल मालिक यह जानते हुए भी कि वह घूस लेता है और मजदूरों का शोषण करता है, जाबर को हटाना नहीं चाहते।

जाबर ही केवल घूस लेता हो, ऐसी बात नहीं है। जाबर को हेड जाबर को घूस देनी पड़ती है और कहीं-कहीं तो ऊंचे अधिकारी भी घूस में हिस्सा पाते हैं। शाही मजदूर कमीशन ने इस सम्बंध में यह राय दी थी कि जाबर की शक्ति को कम करना और रिश्वतखोरी को समाप्त करना अत्यन्त आवश्यक है, नहीं तो मजदूरों का शोषण नहीं रुक सकता।

कमीशन की सम्मति में रिश्वतखोरी तभी रोकी जा सकती है, यदि

मजदूरों को भर्ती करने और उन्हें निकालने का काम जाबर के हाथ में से ले लिया जावे। प्रत्येक कारखाने में 'लेबर आफिसर' नियुक्त किया जाना चाहिए। वह सीधा जनरल मैनेजर के अधीन हो और उसके हाथ में यह कार्य दिया जावे। लेबर आफिसर को ऊंचा वेतन दिया जाना चाहिए। वह ऊंची शिक्षा प्राप्त, ईमानदार, मजदूरों से सहानुभूति रखने वाला और ऊंचे चरित्र का व्यक्ति हो। मिल के जितने भी विभाग हों, उनके अध्यक्षों की सलाह ली जावे किन्तु मजदूरों को नौकर रखने तथा निकालने का काम लेबर आफिसर के हाथ में ही होना चाहिये। यदि योग्य व्यक्ति इस पद पर रक्खे गये तो शीघ्र ही वे मजदूरों का विश्वास प्राप्त कर लेंगे और यदि मजदूरों की सुख-सुविधा का कार्य भी उनके हाथों में सौंप दिया जाय तो वह मजदूरों के विशेष रूप से विश्वास-भाजन बन सकते हैं।

जिन कारखानों में अधिक स्त्रियां काम करती हैं, वहाँ वे एक स्त्री जाबर के आधीन रहती हैं, जहाँ कम होती हैं, वे पुरुष जाबर के ही आधीन रहती हैं। कहीं-कहीं तो यह पुरुष और स्त्री जाबर, जिसे नायकिन, सरदारिन, तथा मुकादमिन भी कहते हैं, स्त्री-मजदूरनियों को अत्यन्त घृणित जीवन व्यतीत करने पर विवश करती हैं और उनका खूब ही शोषण करती हैं।

यह सब बुराइयाँ तभी दूर हो सकती हैं कि जब सुशिक्षित, चरित्रवान तथा योग्य लेबर आफिसर प्रत्येक कारखाने में नियुक्त किये जावें और यदि कारखाने में यथेष्ट संख्या में मजदूर स्त्रियां काम करती हों तो एक चरित्रवान और शिक्षित महिला उनकी सुख-सुविधा और आवश्यकताओं की देख-भाल करने के लिये रक्खी जावे, जो लेबर आफिसर की सहकारी हो।

खेद की बात है कि भारत की अधिकांश मिलों ने इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया और आज भी स्थिति जैसी की तैसी है। हां, बम्बई तथा अन्य कुछ केन्द्रों में "बदली प्रथा" में कुछ सुधार करने का प्रयत्न अवश्य किया गया है; जिससे कि जाबर बिलकुल मनमानी न कर सके;

परन्तु फिर भी "बदलियों" में से मजदूर भर्ती करने या काम देने का अधिकार तो जाबर को ही होता है, इस कारण उनकी शक्ति बहुत कम नहीं हुई है।

बदली कंट्रोल पद्धति

यह पद्धति १९३५ में सर्व प्रथम बम्बई में अपनाई गई और फिर शोलापुर में भी मिलों ने इसे अपनाया। मिल मालिक संघ ने इस पद्धति को इस लिये अपनाया था कि "बदली" वाले मजदूरों की स्थिति में सुधार हो और जाबर की शक्ति घटे। हर एक मिल में जो स्थायी मजदूर गैरहाजिर होते हैं, उनके स्थान पर 'बदलियों' की जरूरत होती है। इस पद्धति के पहले "बदली" वाले मजदूर किसी एक मिल से बंधे नहीं थे, प्रति दिन वे मजदूरी की तलाश में मिलों में चक्कर लगाते रहते और जाबर को घूस देकर नौकरी पाने की कोशिश करते थे। इससे जाबर को रिश्वत लेने का खूब अवसर मिलता था। जाबर किसी भी बदली वाले को बहुत दिनों काम नहीं करने देता था। इसका फल यह होता था कि हर एक बदली वाले को कुछ ही दिनों एक मिल में काम मिलता था। इससे जहाँ जाबर की जेब गरम होती थी, वहां मिल और मजदूर दोनों को ही नुकसान पहुंचता था।

इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक मिल अपने भिन्न-भिन्न विभागों की गैरहाजिरी का अनुमान लगा, एक संख्या निश्चित करती है और उतने ही बदली कार्ड बना कर प्रति मास उतने ही बदली वाले मजदूरों को दे दिये जाते हैं। प्रत्येक विभाग के लिये बदली वालों की संख्या निश्चित रहती है। प्रत्येक 'बदलीवालों' को प्रातः काल मिल में जाना पड़ता है और उनमें से ही वे एवजी रक्खे जाते हैं। जब तक कार्ड वाले बदली होते हैं, तब तक नये बदली भर्ती नहीं किये जाते। जब कोई स्थायी जगह खाली होती है तो पुराने बदली को वह दी जाती है और हर एक 'बदली का नम्बर ऊंचा होता जाता है। इसी तरह स्थायी जगहों

पर 'बदलियों' में से नम्बर वार नियुक्ति होती जाती है। जब प्रत्येक दिन 'बदली' काम की खोज में प्रातः काल आता है और काम नहीं होता तो उस विभाग का अध्यक्ष उसके कार्ड पर हस्ताक्षर कर देता है। यदि कोई 'बदली' हाजरी में अनियमित होता है या उसका काम ठीक नहीं होता तो उसका नाम काट दिया जाता है। इस प्रकार 'बदली' प्रथा से मजदूर को कुछ लाभ तो अवश्य हुआ है। जाबर की शक्ति कुछ कम हुई है। परन्तु बदलियों में से नौकरी देना, पुराने बदलियों को स्थायी करना आदि काम जाबर ही करता है। और वह अब भी रिश्वत लेता है। आवश्यकता इस बात की है कि यह कार्य उसके हाथ से निकाल लिया जावे।

जाबर की शक्ति और प्रभाव तभी घट सकता है कि जब उसे मजदूरों को रखने और निकालने का अधिकार न रहे और यह अधिकार लेबर आफिसर को दे दिया जावे। बम्बई में सूती कपड़े का काम करने वाले मजदूरों की जांच के लिये जो लेबर कमेटी बिठाई गई थी, उसकी यह राय थी कि बम्बई, अहमदाबाद, तथा शोलापुर में "लेबर ऐक्सचेंज" स्थापित की जावें, जो सब धंधों के लिये मजदूरों की भर्ती का काम करें।

अधिकांश साल भर चलने वाले कारखानों में जाबर ही मजदूरों को भर्ती करता है और उसके साथ रिश्वत और शोषण अनिवार्य है। अब हम कुछ विशेष धंधों के विषय में लिखेंगे, जिनकी अपनी विशेष समस्यायें हैं।

आसाम के चाय के बाग

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि चाय के बागों में मजदूरों की बहुत कमी रहती है। कारण यह है कि आसाम में जनसंख्या कम है और वहाँ का जलवायु नम होने के कारण अन्य प्रान्त वालों के अनुकूल नहीं पड़ता। यही कारण था कि आसाम के बागों के मालिकों ने एक कानून बनवा कर शर्तबंद मजदूरों की प्रथा को जारी किया था। चाय के बग़

अपने सरदारों को रुपया देकर बिहार, संयुक्तप्रान्त, उड़ीसा, उत्तरी सरकार तथा अन्य घने आबाद प्रान्तों में उन्हें भेजते थे और यह भोले-भाले ग्रामीणों को धोखा दे कर उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन देकर भर्ती कर लेते थे और जब वह मजदूर जिला अधिकारी के सामने अंगूठा लगा देता था तो फिर मानो उसने जीवन भर की दासता का पट्टा लिख दिया। सरदार उसे आसाम ले जाता था। मजदूर न तो कानूनन नौकरी छोड़ सकता था और जहां वह चाय के बागों में रहता था, उसकी रात्रि को रखवाली की जाती थी कि जिससे कोई मजदूर भाग न जावे। यदि कोई मजदूर भाग जावे तो उसको पकड़ने और उस को सजा देने का अधिकार बाग के मैनेजर को दे दिया गया था। सच तो यह है कि मजदूर एक बार भर्ती होने पर क्रीतदास बन जाता था। और बहुत से तो वहीं मर जाते थे। गांव के लोग इन भर्ती करने वालों को आरकाटी कहते थे और उनसे अत्यन्त घृणा करते थे। १९२६ में सरकार ने इस घृणित कानून को घोर आन्दोलन के उपरान्त रद्द कर दिया और एक नया कानून बनाया गया, जो उतना बुरा नहीं है।

आसाम और बंगाल दोआर के चाय के बागों की समस्या वास्तव में है भी कठिन; क्योंकि मजदूरों को बिहार, संथाल परगना, छोटा नागपुर, मध्यप्रान्त और उत्तरी सरकार के जिलों से भर्ती करना पड़ता है। इस कारण मजदूरों को लाने में व्यय अधिक होता है और चाय के बागों में स्त्री मजदूरों की बहुत जरूरत रहती है। इसी कारण सरदार लोग लड़कियों और विवाहित स्त्रियों को धोखा दे कर उनके नाम बदल कर उनको भगा लाते थे। यही कारण था कि चाय के बाग के मालिकों को कानून (workman's breach of Contract Act.) बनवाने की आवश्यकता हुई। यह कानून १८५९ में बना और १९२६ में घोर आन्दोलन के उपरान्त रद्द किया गया। १९२१ में आसाम के चाय के बागों के मजदूरों में घोर अशान्ति फैल गई। हजारों की संख्या में मजदूर चाय के बागों से भाग खड़े हुए। रेलों ने उन्हें टिकिट नहीं

दिया । पुलिस ने भागते हुए मजदूरों पर गोली चलाई, सैकड़ों मारे गये, हजारों को जेलों में ठूंस दिया गया । इसके उपरान्त एक कमेटी बिठाई गई, जिसकी सिफारिश के अनुसार वह घृणित कानून रद्द कर दिया गया ।

१६३३ में एक नया कानून बनाया गया, जिसके आधीन आसाम के चाय के बागों के लिए मजदूरों की भर्ती होती है । इस कानून के अन्तर्गत एक उच्च अधिकारी जिसे प्रवासी मजदूरों का कन्ट्रोलर कहते हैं, नियुक्त किया जाता है, उसे मजदूरों के हितों की रक्षा के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं । इस कानून के अनुसार प्रत्येक मजदूर और उसके परिवार को बाग के खर्चे पर तीन वर्ष के उपरान्त अपने गांव लौटने का अधिकार मिल जाता है । यदि मजदूर का स्वास्थ्य अच्छा न रहे या अन्य कोई विशेष कारण हो तो तीन साल का समय कम भी किया जा सकता है ।

बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यप्रान्त, मद्रास तथा संयुक्तप्रान्त के उन जिलों को, जिनसे मजदूरों की भर्ती होती हैं, "नियंत्रित प्रवास क्षेत्र" घोषित कर दिये गये हैं । जब किसी चाय के बाग का सरदार आसाम या बंगाल से इन क्षेत्रों में मजदूरों की भर्ती के लिए चलता है तो उसे प्रवासी मजदूरों के कंट्रोलर से लाइसैंस लेना पड़ता है । उस लाइसैंस के बिना वह उन जिलों में भर्ती का काम नहीं कर सकता । जब सरदार उन जिलों में पहुँचता है तो वह वहां के जिला अधिकारियों को अपना लाइसैंस दिखलाता है । तब कहीं वह क्षेत्र में मजदूरों की भर्ती कर सकता है । जो मजदूर आसाम या बंगाल के बागों में जाना चाहता है, वह अधिकारियों के सामने उपस्थित किया जाता है और इस बात की जाँच की जाती है कि मजदूर पर अनुचित दबाव तो नहीं डाला गया है, और उसको सारी परिस्थिति समझा दी गई है । यहां से वह जब आसाम जाता है तो उसका नाम इत्यादि प्रवासी मजदूरों के कंट्रोलर के दफ्तर में दर्ज कर लिया जाता

है। यदि उसके साथ कोई धोखा किया गया हो तो वह कंट्रोलर से शिकायत कर सकता है। यदि भर्ती करने में कानूनों के विरुद्ध कोई कार्य किया गया हो तो उन सरदारों का लाइसेंस जब्त किया जा सकता है।

दक्षिण के काफी, रबर तथा कुनैन के बागों में, जो मजदूरों की भर्ती होती है, वह समीपवर्ती प्रदेशों से ही आते हैं। बाग के मालिकों का एक संगठन है, जो इन बागों के लिए मजदूरों की भर्ती करता है। इसकी शाखें भिन्न-भिन्न जिलों में होती हैं और यह भर्ती करने के लिए एजेन्ट रखते हैं, जिन्हें 'कनगनी' कहते हैं। मजदूरों को बागों में काम करने के लिए उत्साहित करने के उद्देश्य से उन्हें पेशगी रुपया दिया जाता है, जिसमें से अधिकांश 'कनगनी' की जेब में ही चला जाता है। १६२६ तक दक्षिण में भी एक कानून लागू था, जिसके आधीन मजदूर नौकरी छोड़ कर जा नहीं सकता था और भागने पर उसे कठोर दण्ड दिया जाता था।

एक प्रकार से वह दासवत् जीवन व्यतीत करता था। १६२६ में यह कानून भी रद्द कर दिया गया। अब मजदूर इच्छा न रहने पर नौकरी छोड़ सकता है। दक्षिण के बागों में काम करने वाला मजदूर प्रत्येक वर्ष कुछ समय के लिए अपने गांवों को लौटता है। यद्यपि १६२६ में वह घृणित कानून रद्द कर दिया गया, किन्तु फिर भी अभी पूर्ण रूप से भर्ती करने के दोष समाप्त नहीं हुए हैं।

खानों में मजदूरों की भर्ती

भारतीय कोयले की खानों में अधिकतर मजदूर ठेकेदारों द्वारा भर्ती किये जाते हैं। ठेकेदार को एक निश्चित संख्या में मजदूर लाने को कहा जाता है और खान फिर उन मजदूरों को नौकर रख लेती है। लेकिन एक दूसरी भी प्रथा है जो कि कोयले की खानों में बहुत अधिक प्रचलित है। ठेकेदार केवल मजदूरों को भर्ती करने का ही जिम्मेदार नहीं

होता, वह कोयले की खुदाई का ठेका लेता है और जितना कोयला खुदवाता है; उसी के हिसाब से उसे मजदूरी दे दी जाती है। लगभग ४० से ७० प्रतिशत मजदूर इस प्रकार के ठेकेदारों के आधीन कार्य करते हैं। खान का मैनेजर प्रति टन खुदाई और डिब्बों में कोयले की लदाई का एक रेट निश्चित करता है। ठेकेदार जितना कोयला खुदवा कर भरवा देगा उसी हिसाब से उसे खुदाई दे दी जावेगी। इस प्रकार मजदूरों को ठेकेदार क्या मजदूरी देता है, इससे खान को कोई मतलब नहीं। फल यह होता है कि मजदूर का खूब ही शोषण होता है। शाही मजदूर कमीशन ने इस प्रथा का घोर विरोध किया था। कमीशन की राय थी कि खानों में मजदूरों की सीधी भर्ती होनी चाहिए, इस प्रथा का अन्त कर देना चाहिए किन्तु अभी तक कतिपय खानों को छोड़ और सब खानों में कोयले की खुदाई का ठेकेदार पहले की तरह ही जमा हुआ है।

ठेकेदारों के अतिरिक्त मजदूरों की भर्ती की कुछ और भी प्रथायें हैं। खान का सरदार मजदूरों की एक टोली भरती करता है और वह उसकी देख रेख में ही काम करते हैं। यह सरदार ही मैनेजर के प्रति उनके काम का जिम्मेदार होता है। एक तीसरी प्रथा है, जिसे "सरकारी" कहते हैं। मैनेजर अपने आदमियों को मजदूरों की भरती के लिए भेजता है और मजदूरों की सीधी भरती करता है। शाही मजदूर कमीशन की यह राय थी कि खान मजदूरों की भरती ठेकेदारों के द्वारा न कर के सीधी की जावे; किन्तु अभी तक इस दिशा में अधिक सुधार नहीं हुआ है। और अधिकतर मजदूर सीधे खान के अधिकारियों द्वारा भरती न किये जा कर ठेकेदारों द्वारा भरती किये जाते हैं। यह किसी भी प्रकार वांछनीय नहीं है। इसमें जितनी जल्दी सुधार हो उतना ही उत्तम है।

समुद्री मजदूर

जहाजों पर काम करने तथा माल ढोने के लिए बंदरगाहों पर

मजदूरों की जरूरत होती है। दुर्भाग्यवश भारत का समुद्री यातायात सब विदेशी जहाजी कंपनियों और विशेष कर ब्रिटिश कम्पनियों के हाथ में है; वे अपने लिए मजदूर भरती करने का काम सरकारी लायसैंस प्राप्त किये हुए दलालों को सुपुर्द कर देते थे। यह दलाल ही जहाजी कंपनियों के लिए मजदूरों की भरती करते थे। समुद्री मजदूरों की संख्या इतनी अधिक होती है कि कभी भी साधारणतया एक तिहाई से अधिक मजदूर काम नहीं पाते। इस कारण मजदूरों को नौकरी पाने के लिए खूब रिश्वत देनी पड़ती थी। १६२२ में भारत सरकार ने इस समस्या की जाँच के लिए "समुद्री मजदूर भरती कमेटी" बैठाई। पूरी जांच करने के उपरान्त कमेटी ने अपना मत प्रगट किया कि मजदूरों की भरती करने का यह ढंग बहुत ही दोषपूर्ण है; और इससे रिश्वत बेहद बढ़ती है। कमेटी ने यह सिफारिश की कि समुद्री मजदूरों को भरती करने का एक दफ्तर स्थापित किया जावे और उसका अधिकारी नियुक्त किया जावे, जो मजदूरों के लिए स्थायी नौकरी दिलाने और रिश्वत से बचाने का प्रयत्न करे।

भारत सरकार ने १६२६ में आज्ञा निकाल कर लाइसैंस प्राप्त दलालों के द्वारा ऊंचे दर्जे के मजदूरों का भरती करना बिलकुल रोक दिया। अब वे या तो सीधे जहाजी कम्पनियों द्वारा भरती किये जाते हैं या सरकारी अधिकारी द्वारा, जहाजी दफ्तर से। यह प्रयत्न किया जाता है कि जो मजदूर सब से अधिक समय से बेकार रहा हो, उसको पहले स्थान दिया जावे। जहां जहाजी कम्पनियां अपने मजदूरों की रजिस्ट्री का प्रबन्ध नहीं कर पाती हैं; वहां जहाजी दफ्तर मजदूरों की भरती करता है। दफ्तर में ऊँचे दर्जे के मजदूरों के नाम रजिस्टर में लिख लिए जाते हैं और जहाजों के मालिक या उनके एजेन्ट उन लोगों में से मजदूर छांट लेते हैं। यद्यपि कोई नियम और प्रतिबन्ध तो नहीं है, परन्तु प्रयत्न यह किया जाता है कि जो अधिक लम्बे समय से बेकार हो, उसे पहले जगह दी जावे।

यद्यपि स्थिति में कुछ सुधार अवश्य हुआ है, किन्तु फिर भी रिश्वत का बाजार जैसा का तैसा है। कोई मजदूर बिना रिश्वत दिये काम नहीं

पा सकता। इसका मुख्य कारण यह है कि समुद्री मजदूरों में बेकारी बेहद रहती है। आवश्यकता इस बात की है कि लाइसैंस प्राप्त दलालों के द्वारा भर्ती बिलकुल बंद कर दी जावे। जहाजी दफ्तर में सब मजदूरों की भर्ती हो और जहाजी कंपनियों को नियमानुसार उन्हीं मजदूरों में से मजदूर लेने पर विवश किया जावे। आवश्यकता से जो अधिक मजदूर समुद्री काम में लगे हैं, उन्हें दूसरे धन्धों में लगाने का प्रयत्न किया जाय।

रेलवे

रेलें भी बहुत बड़ी संख्या में मजदूरों को भर्ती करती हैं। रेलें तीन विभागों में मजदूरों की भर्ती करती हैं (१) इंजिनियरिंग (२) यातायात तथा व्यापार (३) वर्कशाप। यहां भी रिश्वत देकर ही किसी को जगह मिलती है। साथ ही रेलों में जाति तथा रंग भेद भी बहुत अधिक है। एक ही काम के लिये भारतीय को कम वेतन दिया जाता है और एंग्लो इंडियन को अधिक। आज जबकि सभी रेल्वे लाइनें सरकार की हैं, तब यह एकक्षण के लिये भी सहन नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही भर्ती करने का काम, इन्स्पेक्टरों, स्टेशन मास्टरों, चार्जमैनों तथा अन्य नीचे कर्मचारियों के अधिकार में न दे कर उसके लिए एक पृथक विभाग स्थापित किया जाना चाहिए जो ऐसे व्यक्तियों का एक रजिस्टर रक्खे कि जो रेलवे के भिन्न-भिन्न विभागों के लिए प्रार्थी हों और उनमें से जो भी अधिक पुराना हो उसको पहले स्थान दिया जावे। जब भर्ती करने का अधिकार स्थानीय कर्मचारियों को होगा, तब तक रिश्वत को समाप्त नहीं किया जा सकता।

सरकार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तथा म्युनिस्पैलटी इमारतें, सड़कें, पुल तथा कार्यों के लिए बहुत बड़ी संख्या में मजदूर रखते हैं किन्तु इन कार्यों के लिये ठेका दिया जाता है। ठेकेदार मजदूरों को नौकरी देता है। इन मजदूरों की दशा अत्यन्त दयनीय होती है। उन्हें बहुत अधिक कार्य करना

पड़ता है। उनसे १२ घण्टे काम लिया जाता है और मजदूरी बहुत कम दी जाती है। यह तो असम्भव है कि सरकार या डिस्ट्रिक्टबोर्ड इन मजदूरों को भर्ती करें परन्तु ठेका देते समय यह शर्त रक्खी जानी चाहिए कि ठेकेदार को अपने मजदूरों को सरकार द्वारा निर्धारित मजदूरी देनी होगी। साथ ही १२ वर्ष से कम आयु के बालकों को मजदूर नहीं रक्खा जावेगा। शाही मजदूर कमीशन ने इस आशय की सिफारिश की थी किन्तु सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। जब तक नियम बना कर ठेकेदारों को एक न्यूनतम मजदूरी देने पर विवश नहीं किया जावेगा, तब तक इन मजदूरों की दशा नहीं सुधर सकती।

जो मौसमी कारखाने हैं; जैसे शक्कर, कपास, चावल, तथा तेल इत्यादि, उनमें अधिकतर निकटवर्ती गांवों के खेत मजदूर और किसान काम करते हैं। यद्यपि इन कारखानों में भरती होते समय रिश्वत नहीं देनी पड़ती किन्तु इनकी मजदूरी बहुत कम होती है।

इन कारखानों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी धन्धे हैं, जिनमें फेक्टरी कानून लागू नहीं होता; जैसे बीड़ी, दरी, गलीचे के कारखाने। इनमें छोटे-छोटे बच्चों, स्त्रियों और पुरुषों को बहुत लम्बे समय तक काम करना पड़ता है और उनको बहुत थोड़ा वेतन मिलता है। इन कारखानों में कहीं-कहीं छोटे लड़कों को मां-बाप कुछ रुपया पेशगी लेकर गिरवी रख देते हैं। इसका अर्थ यह है कि वह लड़का अपने मालिक का काम नहीं छोड़ सकता। यद्यपि अब कानून इसके विरुद्ध है; किन्तु फिर भी यह प्रथा कहीं-कहीं ज्यों की त्यों बनी है।

सच तो यह है कि मजदूरों की भरती से सम्बन्धित जो बुराइयां हम देखते हैं, उनका मूल कारण तो यह है कि गांवों में काम की कमी है, धन्धे वहां नहीं हैं और खेती पर आवश्यकता से अधिक लोग अवलम्बित हैं। साथ ही देश की सामाजिक स्थिति और मजदूरों की अशिक्षा भी इसके मुख्य कारण हैं।

मजदूरों की भरती के सम्बन्ध में दो और भी महत्वपूर्ण बातें हैं

जिनकी ओर हमें ध्यान देना आवश्यक है। पहली बात तो यह है कि कारखानों में बराबर स्थान खाली होते रहते हैं, इस कारण आवश्यकता से अधिक मजदूर औद्योगिक केन्द्रों में इस लालच से पहुँचते हैं कि कुछ ले-दे कर काम तो मिल ही जावेगा। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि मजदूरों की भरती का इस प्रकार नियंत्रण किया जावे कि आवश्यकता से अधिक मजदूर औद्योगिक केन्द्रों में न पहुँच सकें। दूसरी बात यह है कि अधिकतर पुरुष ही औद्योगिक केन्द्रों में जाते हैं, स्त्रियां गांवों में ही रह जाती हैं। इसका फल यह होता है कि औद्योगिक केन्द्रों में पुरुषों का अनुपात स्त्रियों की तुलना में अधिक होता है और इससे व्यभिचार तथा नैतिक पतन का रास्ता खुलता है। अतएव इस बात की आवश्यकता भी है कि औद्योगिक केन्द्रों में दम्पत्तियों को प्रवास करने के लिए उत्साहित किया जावे। यह तभी हो सकता है, जब केन्द्रों में स्त्रियों के योग्य कार्य वहां मिल सके और मजदूरों की भरती का नियंत्रण किया जावे। यही नहीं भविष्य में उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए यह भी आवश्यक है कि जो मजदूर केन्द्रों में आवें, उनको भरती करते समय उनकी कुशलता और कार्य-शक्ति का ध्यान रक्खा जावे। यह तभी हो सकता है कि जब मजदूरों की भरती पर सार्वजनिक नियंत्रण हो। इस सम्बन्ध में हम बेकारी के परिच्छेद में लिखेंगे।

तृतीय परिच्छेद

कारखानों में मनुष्यों का जीवन और स्वास्थ्य

कारखानों में मजदूर यथेष्ट समय व्यतीत करता है, इसलिए कारखानों के जीवन का उसके स्वास्थ्य और उसकी कार्यशक्ति पर भारी प्रभाव पड़ता है। इस दृष्टि से हमें भारतीय कारखानों के जीवन का अध्ययन करना आवश्यक है।

धूल और गंदगी

कुछ कारखानों में धूल और गंदगी इतनी अधिक होती है कि मजदूर का स्वास्थ्य शीघ्र नष्ट हो जाता है। कुछ कारखाने तो ऐसे होते हैं कि जिनमें होने वाली क्रियाओं से ही गर्द निकलती रहती है और यदि उसे यंत्रों द्वारा कम करने का प्रयत्न न किया जावे तो उस से मजदूरों को बहुत हानि पहुँचती है। उदाहरण के लिये यदि किसी कपास के पेंच या सूती कपड़े के मिल में जाना हो तो जहां रुई को साफ करने, धुनने और अन्य क्रियायें होती हैं, वहाँ रुई के बहुत बारीक रेशे और धूल सारे वायुमण्डल में भरे रहते हैं। इसी तरह कागज, चमड़ा, लकड़ी तथा अन्य कारखानों में भी ऐसी बहुत सी क्रियायें होती हैं कि जिनसे बहुत अधिक धूल और गंदगी उत्पन्न होती है। यदि मिल मालिक ऐसे स्थानों पर धूल और गंदगी सोख लेने वाले यंत्र लगा दें या बिजली के पंखों से हवा में तेजी उत्पन्न कर दें तो इस से हानि कम हो सकती है और मजदूरों को सुविधा हो सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कारखाना धूल और गंदगी को सोखने वाले यंत्र तथा बिजली के पंखे लगावे। इस से एक लाभ तो यह होगा कि मजदूर क्षयरोग इत्यादि रोगों से बचेंगे, उनका स्वास्थ्य नहीं गिरेगा और मजदूरों की कार्य-शक्ति बढ़ेगी, मिल की उत्पत्ति में वृद्धि होगी और मजदूर को सुख पहुँचेगा। खेद की बात है कि मिल मालिक इस ओर बहुत कम ध्यान देते हैं और मजदूर सभायें भी जो मजदूरी बढ़वाना ही अपना कर्तव्य मानती हैं, इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देतीं। रुई, जूट, ऊन तथा अन्य धन्धों में जहां धूल और गंदगी उत्पन्न होती है, फैक्टरी कानून के अनुसार यदि कारखानों का इन्सपेक्टर आवश्यक समझे तो मिल मालिकों को आज्ञा दे सकता है कि वे धूल और गंदगी कम करने के लिए यन्त्र लगावें। किन्तु अधिकांश इन्स्पेक्टर अपने कर्तव्य की अव-हेलना करते हैं और मिल मैनेजर को इस सम्बन्ध में कोई आज्ञा नहीं

देते । आवश्यकता इस बात की है कि मजदूरों में कार्य करने वाले इस ओर ध्यान दें और कारखानों के अन्दर धूल और गंदगी को कम करने का आन्दोलन करें । यही नहीं कारखानों की साधारण स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए । दीवारें तथा फर्श को बराबर साफ किया जाना चाहिए और प्रति वर्ष उसकी चूने से पुताई होनी चाहिए । फैक्टरी कानून में यह बात आ जानी चाहिए कि प्रत्येक कारखाना प्रति वर्ष साफ किया जावे ।

सफाई

फैक्टरी कानून के अनुसार प्रत्येक कारखाने में मजदूरों की संख्या के अनुसार शौचगृह होना चाहिए । फिर भी कारखानों में शौचगृहों की बहुत कमी होती है; और जो भी शौचगृह होते हैं उनकी व्यवस्था बहुत ही खराब होती है । वे इतने गंदे रहते हैं कि गांव से आने वाला मज-दूर उन गंदे शौचगृहों का उपयोग करना पसंद नहीं करता । मिल मालिक सदैव यह कहते हैं कि मजदूर, शौचगृह इत्यादि सुविधाओं का उपयोग नहीं करते । सच तो यह है कि वे इतने गन्दे होते हैं कि उनका उपयोग गांव से आने वाला मजदूर नहीं कर सकता । आवश्य-कता इस बात की है कि जहां पानी की सुविधा हो वहां प्रत्येक मिल "सैप्टिक टैंक" बनावे । बंगाल की जूट मिलों ने इसका प्रयोग किया है और मजदूर उनका खूब उपयोग करते हैं । जहां यह सम्भव न हो वहां भी यथेष्ट स्वच्छ शौचगृह होना चाहिए और उनकी उचित व्यवस्था होनी चाहिए ।

गरमी

भारतवर्ष गरम देश है । गरमी में और बरसात में यहां इतनी भीषण गरमी पड़ती है कि मनुष्य मेहनत से घबड़ाता है । उसको बहुत थकान प्रतीत होती है । फिर कारखानों की तो कुछ न पूछिये । वहां तो बेहद

गरमी रहती है और दम घुटता है। यहां तक कि गरमियों में फैक्टरी के बाहर हवा कम गरम होती है और अन्दर अधिक गरम होती है। मिल मालिक कारखाने के अन्दर गरमी कम करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं करते। यदि कारखानों के अन्दर गरमी कम रहे तो मजदूर के कष्टों में कमी हो सकती है। यही नहीं कोई-कोई कारखाने ऐसे बने होते हैं कि जाड़ों में वहां यथेष्ट धूप भी नहीं आती। फैक्टरी कानून के अनुसार जिन कारखानों (कपड़े के कारखानों) में पानी की भाप का उपयोग कपड़ा बुनने में होता है, वहां तो कानून मिल मालिक को कारखानों की गरमी कम करने के लिए विवश कर सकता है। अन्य कारखानों में कानून मिल मालिकों को कारखाने के तापक्रम (गरमी) को कम करने के लिए विवश नहीं कर सकता। सूती कपड़े के कारखानों में जहां भाप से सूत को नम किया जाता है वहां भी यदि फैक्टरी इन्स्पेक्टर समझे कि भाप से गरमी इतनी अधिक हो जाती है कि मजदूर को उस से घोर कष्ट होता है और उसके स्वास्थ्य पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा, तब वह फैक्टरी मैनेजर को आज्ञा दे सकता है कि वह कारखाने को ठंडा रखने वाले यन्त्रों को लगावे या अन्य उपाय से कारखाने को ठंडा रक्खे। यदि छत को चूने से पोता जावे, छत पर नलों द्वारा बराबर पानी बरसाया जावे और अन्दर बिजली के पंखों की सुविधा हो तो गरमियों में फैक्टरी के अन्दर काम करना उतना कष्टसाध्य प्रतीत न हो; किन्तु अधिकांश कारखानों में इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। फैक्टरियों के अन्दर ऐसी भीषण गरमी होती है कि मजदूर पसीने से शिथिल हो जाता है और जिन कारखानों में भाप का प्रयोग होता है वहां तो मजदूर बेहोश तक हो जाते हैं। बहुत थोड़े व्यय से कारखानों के अन्दर की गरमी को कम किया जा सकता है, किन्तु मिल मालिक मजदूरों की इस सुविधा की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। यदि मिल मालिक इस ओर तनिक ध्यान दें तो केवल मजदूरों को ही सुख और सुविधा न मिले; वरन् कारखानों की उत्पत्ति भी

बढ़ जावे; क्योंकि उस दशा में मजदूर मन लगा कर काम कर सकेंगे। किन्तु मिल मालिकों को तो अपने हित की बात भी समझ नहीं पड़ती। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि कानून बना कर मिल मालिकों को विवश किया जावे कि वे कारखाने को ठंडा रक्खें। कानून द्वारा फैक्टरी के अन्दर का तापक्रम अधिक से अधिक क्या हो यह निर्धारित कर दिया जावे और यदि फैक्टरी के अन्दर का तापक्रम उससे अधिक हो तो यह जुर्म माना जावे। तापक्रम निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रक्खा जावे कि जितनी गरमी मजदूर बिना कष्टके सहन कर सके और जो उनके स्वास्थ्य के लिए अहितकर न हो, उससे अधिक तापक्रम निर्धारित न किया जावे। जब तक इस प्रकार का कानून नहीं बन जाता, तब तक मजदूरों का यह कष्ट दूर नहीं हो सकता। जिन कारखानों में भाप का उपयोग होता है वहां तो कानून बना कर शीतकरण यंत्र (Cooling Plant) लगाने का प्रबन्ध होना ही चाहिए।

रक्षा

यह तो सर्वमान्य बात है कि जहां बिजली या भाप से यन्त्र चलते हैं, वहां काम करने में मजदूर को जोखिम रहती है। आवश्यकता इस बात की है कि मशीनों की ठीक तरह से घेराबन्दी (fencing) की जावे कि जिस से काम करने वाले के लिए खतरा कम हो। यही नहीं दो मशीनों के बीच में यथेष्ट स्थान होना चाहिए। अधिक घिच-पिच होने से भी दुर्घटनाएँ होने की सम्भावना रहती है। किन्तु खेद की बात है कि मिल मालिक अपने इस प्रथम कर्तव्य की ओर भी ध्यान नहीं देते। केवल खतरनाक मशीनों की ही कहीं कहीं घेराबन्दी देखने को मिलती है और दो मशीनों के बीच में बहुत कम स्थान रहता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि पिछले वर्षों में भारतीय कारखानों में होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। यह चिन्ता की बात है और इस ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। यद्यपि मिल मालिक और

फैक्टरी इन्स्पेक्टर इस वृद्धि का कारण यह बतलाते हैं कि पहले बहुतसी दुर्घटनाओं के बारे में ठीक ठीक पता नहीं चलता था, किन्तु अब अधिकांश दुर्घटनायें रेकार्ड पर ली जाती हैं। यह ठीक है कि पहले मिल मालिक अधिकांश दुर्घटनाओं का किसी को पता ही नहीं लगने देते थे; और न उनका कोई लेखा ही रखते थे। परन्तु अब उनका लेखा रखा जाता है। फिर भी आंकड़ों से यह सिद्ध होता है कि दुर्घटनाओं की संख्या और अनुपात में भी पहले से वृद्धि हुई है।

दुर्घटनाओं को कम करने के लिए यह नितांत आवश्यक है कि भारत में "रक्षा पहले" आन्दोलन चलाया जावे। जिस प्रकार जापान इत्यादि देशों में इस आन्दोलन के अन्तर्गत दुर्घटना के समय अपनी रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए, चोट लगने पर प्रारम्भिक चिकित्सा और सुश्रुषा कैसी करनी चाहिए यह सिखाया जाता है, इसी प्रकार भारतवर्ष में भी 'रक्षा पहले' दिवस या सप्ताह मनाकर कारखानों के मजदूरों को दुर्घटनाओं से बचने की शिक्षा देनी चाहिए। यह एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिस पर मजदूर सभाओं को विशेष ध्यान देना चाहिए। वे मिल मालिकों पर यह दबाव डालें कि मजदूरों को यह शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। खेद है कि मजदूरों के संगठन इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

कानून के अनुसार प्रत्येक कारखाने में प्रारंभिक चिकित्सा का सामान रहना आवश्यक है। किन्तु केवल इतना ही आवश्यक नहीं है, आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक कारखाने में कुछ लोग ऐसे हों, जो कि प्रारंभिक चिकित्सा कर सकें। जिस कारखाने में २५० मजदूरों से अधिक हों, वहां तो एक कम्पाउन्डर और जहां ५०० से अधिक हों, वहां एक डाक्टर सदैव कारखाने में रहे जिससे कि आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता ली जा सके।

इमारतें

कारखाने की इमारत भी मजदूरों के लिए एक विशेष खतरे का कारण

बन सकती है। कारण यह है कि जहां यंत्र, भाप और बिजली से चलते हैं, वहां इमारतों पर बहुत भार पड़ता है और फैक्टरियों में कई मंजिल होने के कारण इमारत के गिर जाने की संभावना बनी रहती है। इस लिये आवश्यकता इस बात की है कि कारखानों की इमारतें बहुत मजबूत और टिकाऊ हों। इमारतों के केवल मजबूत और सुदृढ़ होने से ही काम नहीं चलेगा। इमारतें ऐसी होनी चाहिये कि जिनमें धूप, हवा और रोशनी का हर मौसम में खूब प्रवेश हो सके, जिसमें मजदूर को आराम मिले और उसके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़े। अभी तक इमारतों के सम्बन्ध में कानून ने मजदूरों की रक्षा का पूरा प्रबन्ध नहीं किया है। फैक्टरी कानून के अनुसार फैक्टरी इन्स्पेक्टर को यह अधिकार है कि यदि उसकी सम्मति में फैक्टरी का कोई भाग जर्जर और खतरनाक हो गया हो तो वह मालिक को आज्ञा दे कि वह उसको गिरवा दे, या मरम्मत करवावे। फैक्टरी इन्स्पेक्टर इमारतों सम्बन्धी कोई ज्ञान तो रखते नहीं, अतएव वे इस ओर अधिक ध्यान नहीं देते और न मिल मालिकों पर ही उनकी बात का प्रभाव पड़ता है।

आवश्यकता इस बात की है कि इमारतों की जांच प्रतिवर्ष विशेष इन्जीनियरों से करवाई जावे, तभी यह कार्य अच्छी तरह से हो सकता है। फैक्टरी इन्स्पेक्टरों को भी यह अधिकार रहे और मजदूर नेता भी इस सम्बन्ध में फैक्टरी इन्स्पेक्टरों और इन्जीनियरों को समय समय पर लिखा करें। केवल इमारत के कमजोर होने से ही मजदूरों को खतरा नहीं है, यदि उसमें हवा, धूप या रोशनी की कमी हो, तब भी वह मजदूरों के स्वास्थ्य के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

वार्षिक जांच के अतिरिक्त जब कारखाना स्थापित हो और इमारत बने, उस समय प्रांतीय सरकार को उस पर नियंत्रण रखना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि कारखानों के मालिकों को फैक्टरी की इमारत का नक्शा पहले स्वीकृत करवा लेना चाहिये, तब इमारत बनवानी चाहिए। इसके लिये सरकार एक विशेष कर्मचारी नियुक्त करे,

जो यह देखे कि इमारत मजदूरों के आराम, स्वास्थ्य और सुरक्षा की दृष्टि से ठीक है। इस समय तो कानून में केवल इतना विधान है कि जब इमारत बन जावे तो कारखाना चलने से पहले मिल मालिक को फैक्टरी इन्स्पेक्टर से एक सर्टिफिकेट ले लेना पड़ता है कि इमारत कारखाने के लिये ठीक है। वस्तुतः आज भी भारतीय कारखानों की इमारतें बहुत ही रद्दी और अस्वस्थकर होती हैं।

भारतीय मिल मालिक मजदूरों की सुख सुविधा की ओर से ऐसा उदासीन रहता है कि जबतक उस पर कानून का दबाव न डाला जावे वह मजदूरों के लिए कुछ करना ही नहीं चाहता।

भोजन

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि भारतीय मजदूर वस्तुतः ग्रामीण होता है। वह प्रातःकाल कारखाने के भोंपू के बजते ही मैले कपड़े में रात्रि की रोटी बांध कर फैक्टरी के फाटक की ओर दौड़ता है; और अपने काम पर जुट जाता है। दोपहर को जब छुट्टी होती है तब वह अपनी रोटी खाता है। कहीं कहीं तो उसे रोटी खाने के लिए आराम की जगह भी नहीं मिलती। वह मशीन के पास ही बैठ कर रोटी खाता है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक मिल के कम्पाउण्ड में बरसात के दिनों के लिए टीन या सीमेंट के शैड [बरामदे] हों, और गरमियों के लिए सायेदार वृक्षों की पंक्ति लगाई जावे, जहां बैठकर मजदूर भोजन कर सके। किन्तु कानून मिल मालिक को यह सुविधा प्रदान करने के लिए विवश नहीं करता। इसी कारण मिल मालिक इस ओर ध्यान नहीं देते।

भोजन के संबंध में एक बात ध्यान देने योग्य है, मजदूर जो रोटी ले जाता है वह रात्रि की बनी होती है, और वह दूसरे दिन दोपहर को बासी रोटी खाता है। वर्षों तक लगातार यही क्रम चलते रहने से उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। इस ओर अभी तक किसी का ध्यान नहीं

गया है। जो कारखाने बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्रों में नहीं हैं, और जहां मजदूर पास ही रहता है, वहां तो यह सम्भव है कि मजदूर की पत्नी या घर का कोई व्यक्ति दोपहर को भोजन दे जावे। अन्यथा अधिकांश कारखानों के मजदूर बासी रोटी ही खाते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि दोपहर की छुट्टी इतनी लम्बी हो कि यदि मजदूर चाहे तो रोटी बना ले। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हिन्दू मजदूरों में जाति-पाँति की झंझटों के कारण मिल-मालिकों को उन्हें स्थान देने में कुछ असुविधा हो सकती है; परन्तु यह है आवश्यक। यही नहीं, प्रत्येक कारखाने में एक सस्ता भोजनगृह भी होना चाहिए कि जहां उचित मूल्य पर रोटी, दाल, भात इत्यादि मिल सके। मिल इस प्रकार के भोजनगृहों को चलावे। भोजन की उचित व्यवस्था होना अत्यन्त आवश्यक है।

जल

भोजन के उपरान्त जल भी मजदूर के लिए नितान्त आवश्यक है। फैक्टरी एक्ट के अनुसार मिल मालिकों को पीने के लिए यथेष्ट जल देना चाहिए। कानून होते हुए भी अधिकांश मिलों में मजदूरों को स्वच्छ, मीठा और ठंडा जल नहीं मिलता। यदि पानी का प्रबन्ध भी किया जाता है तो वहां इतनी भीड़ होती है कि बहुत सा समय व्यर्थ नष्ट हो जाता है। होना यह चाहिए कि बहुत सी नल की टोंटियां एक विशाल सीमेंट या लोहे के जल-कुण्ड में लगा दी जावें, और उसमें कुएँ का शीतल, स्वच्छ जल बिजली के पंप से गिरता रहे। इससे पानी धूप से गरम भी नहीं होगा, और प्रत्येक मजदूर को पीने के लिए जल मिल जावेगा।

पीने के लिए जल की व्यवस्था तो कानून के अनुसार आवश्यक है इसलिए कारखानों में उसका तो कुछ प्रबन्ध होता भी है, परन्तु नहाने और वस्त्र धोने के लिए तो मिलों में जल की कोई व्यवस्था ही नहीं

होती। यह तो मानी हुई बात है कि जब मजदूर प्रातःकाल कारखाने आता है, और सायंकाल घर पहुँचता है, तो वह स्नान तो घर पर कर ही नहीं सकता। यदि कोई करना भी चाहे, तो बड़े-बड़े शहरों में, जहां मजदूरों की बस्तियां होती हैं, वहां सार्वजनिक पंप इतने कम होते हैं, और जल लेने वालों की इतनी अधिक भीड़ रहती है कि काम के दिनों में तो क्या छुट्टी के दिन भी वहां कपड़ा धोना और नहाना कठिन हो जाता है। शरीर और वस्त्रों को भी साफ न कर सकने का परिणाम भी मजदूर के स्वास्थ्य के लिए बुरा होता है।

आवश्यकता इस बात की है कि कानून बनाकर मिल-मालिकों को मजदूरों के लिए स्नान गृहों की व्यवस्था करने पर विवश किया जावे। प्रत्येक मिल में मजदूरों की संख्या के अनुसार स्नान गृह हों और कारखाना उन्हें प्रति मास कपड़ा धोने के लिए साबुन मुफ्त दे। इससे यह लाभ होगा कि मजदूर गंदे नहीं रहेंगे।

शौचगृह

फैक्टरी एक्ट के अनुसार प्रत्येक मिल में शौचगृहों की व्यवस्था होना आवश्यक है। किन्तु शौचगृह इतने गंदे और उनको साफ रखने का प्रबन्ध इतना खराब होता है कि गांव से आया हुआ मजदूर उनका बहुत कम उपयोग करता है। अतएव इस बात की आवश्यकता है कि शौचगृह अच्छे हों, और उनकी सफाई का उचित प्रबन्ध हो। मजदूर-सभाओं और मजदूरों में कार्य करने वालों का भी यह कर्त्तव्य है कि वे मिल-मालिकों का ध्यान इन त्रुटियों की ओर दिलाया करें। यदि वे इस ओर सतर्क रहें, तो यह छोटे-मोटे सुधार तो अनायास ही हो सकते हैं। किन्तु मजदूरों में कार्य करने वालों का ध्यान मजदूरों की इन दैनिक असुविधाओं की ओर तनिक भी नहीं जाता। वे मजदूरी बढ़वाने के लिये प्रयत्न करना और आवश्यकता पड़ने पर हड़ताल करवाना ही एक मात्र अपना कर्त्तव्य समझते हैं। ये सब सुविधाएँ तभी प्राप्त हो

सकती हैं जब कि मजदूरों में कार्य करने वाले इस ओर अधिक ध्यान दें।

शिशुगृह

किसी किसी फैक्टरी में जहां अधिक संख्या में स्त्री मजदूरिनें काम करती हैं मिल मालिकों ने शिशुगृह स्थापित किये हैं, और उनमें शिक्षित दाइयों का प्रबन्ध किया गया है। बच्चों को दूध मिलने की व्यवस्था भी है। किन्तु बहुत से कारखानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। मजदूर स्त्रियां अपने बच्चों को अपने साथ ही रखती हैं, मशीन के पास ही वे अपने बच्चों को लिटा देती हैं। ऐसा करने से बच्चों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है। मशीनों का शोर, धूल और गंदगी, सभी का नवजात शिशु पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अतएव बच्चों का वहां रक्खा जाना किसी भी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। इस प्रथा को शीघ्र ही बन्द करना होगा। परन्तु भारतीय स्त्रियां अपने बच्चों को किसी की देख-रेख में छोड़ना पसंद नहीं करतीं। फिर जात-बिरादरी की भी झंझट उपस्थित होती है। यह कुछ ऐसी कठिनाइयां हैं, जिनके कारण शिशुगृह अधिक सफल नहीं होते। आवश्यकता इस बात की है कि मजदूर स्त्रियों को समझाया जावे, अच्छे स्वभाव की नर्सें नियुक्त की जावें, और स्त्रियों को दिन में दो-चार बार अपने बच्चों को देख आने की सुविधा दी जावे। मजदूर सभाओं के सहयोग से मिल-मालिक इन शिशुगृहों की उपयोगिता का प्रचार करें। कानून के द्वारा उन फैक्टरियों में जहां एक निश्चित संख्या से अधिक मजदूर स्त्रियां काम करती हों शिशुगृह की स्थापना अनिवार्य कर दी जावे।

पांचवा परिच्छेद

मजदूर सम्बन्धी कानन

"मजदूर कानून पर प्रभाव" डालने वाली शक्तियाँ

मज़दूरों के सम्बन्ध में बहुत से कानून पास हो गये हैं। सच तो यह है कि प्रथम योरोपीय महायुद्ध (१९१४—१८) के उपरान्त मज़दूर सम्बन्धी कानून तेजी से बनाये गए। इसका मुख्य कारण यह था कि भारतमें मज़दूरों का संगठन इसी समय हुआ, मजदूरों में वर्ग चैतन्य उदय हुआ। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थापना से भी भारत में मजदूर सम्बन्धी कानूनों को प्रोत्साहन मिला। अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलनों में जब भारतीय मज़दूरों, व्यवसायियों, तथा सरकार के प्रतिनिधि अन्य देशों की तुलना में भारतीय मज़दूरों की दयनीय अवस्था की तुलना करते तो उन्हें स्वीकार करना पड़ता था कि भारतीय मज़दूरों की अवस्था में सुधार होने की आवश्यकता है। १९३१ में शाही मज़दूर कमीशन ने भी बहुत सी शिफारिशें कीं और सरकार को उक्त कमीशन की सम्मति के अनुसार कुछ कानून बनाने पड़े। इसके अतिरिक्त कांग्रेस जो देश की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था है, उसने सदैव मज़दूरों के प्रश्न को आगे रक्खा। कांग्रेस के सदस्य व्यवस्थापिका सभाओं और उनके बाहर मज़दूरों के हितों का सदैव समर्थन करते रहे। इसके अतिरिक्त कतिपय मिल मालिकों की भी समझ में यह बात आ गई कि उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि मज़दूरों की दशा में कुछ सुधार हो। यही सब कारण थे कि १९२० और १९३६ के बीच मज़दूर हित के कानून बने। इसके बाद १९३७ में जब कि सर्व प्रथम प्रान्तों में उत्तरदायी मन्त्रि मण्डल स्थापित हुए और आठ प्रान्तों में कांग्रेस का शासन स्थापित हुआ तो उन्होंने तेज़ी से मज़दूर हित के

कानून बनाने का प्रयत्न किया। बम्बई, मध्यप्रान्त, कानपुर, तथा बिहार में लेबर कमेटियां बिठाई गईं और उन्होंने क्रान्तिकारी सुधारों की सिफारिश की। यद्यपि कांग्रेस मन्त्रि मण्डलों ने १९३९ में त्याग-पत्र दे दिया, इस कारण वे मज़दूर हित के सभी कानून, जो वे चाहते थे, नहीं बना सके। परन्तु फिर भी बहुत से कानून बनाये गए।

प्रान्तों में उत्तरदायी शासन की व्यवस्था हो जाने का फल यह हुआ कि ब्रिटिश भारत में पहले ही देशी राज्यों से अधिक मज़दूरों को सुविधायें मिली थीं, अब तो यह अन्तर बहुत अधिक बढ़ गया। समस्त भारत के लिए जहां तक सम्भव हो एकसी मज़दूर सम्बन्धी नीति काम में लाई जावे, इस उद्देश से भारत सरकार ने लेबर मिनिस्टरों (प्रान्तों और देशी राज्यों के) का सम्मेलन बुलाना आरम्भ किया। इसका प्रभाव यह पड़ा कि कुछ देशी राज्यों में इस दिशा में उन्नति हुई। १९४२ में एक सम्मेलन की नींव डाली गई। जिसकी स्थायी समिति में मज़दूरों, पूंजीपतियों, प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि हैं। यह सम्मेलन मज़दूरों से सम्बन्धित सभी प्रश्नों पर विचार करता है और अपनी सम्मति प्रगट करता है। आशा है कि भविष्य में यह और अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

दूसरे युद्ध के उपरान्त देश में फिर राजनैतिक हलचल जोरों पर है, जो भी कुछ भी हो, परन्तु यह निश्चित है कि अब उत्तरदायी शासन फिर स्थापित होगा और मज़दूर सम्बन्धी कानून तेजी से बनाये और लागू किये जावेंगे।

मज़दूरों में कार्य करने वालों को उन सभी कानूनों की पूरी जानकारी होनी चाहिए कि जिनका सम्बन्ध मज़दूरों से है। हम यहां मुख्य-मुख्य कानूनों का विवरण देते हैं।

फैक्टरी कानून

१९३४ का फैक्टरी कानून अन्तिम फैक्टरी कानून है, और इस समय

वही समस्त भारत में प्रचलित है। इस कानून की मुख्य बातें नीचे दी जाती हैं:—

(१) यह एक्ट उन स्थानों को फैक्टरी घोषित करता है और लागू होता है जहां २० या उससे अधिक आदमी काम करते हों और यांत्रिक शक्ति (बिजली, भाप, गैस,) का उपयोग होता हो। इस एक्ट के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे किसी ऐसे स्थान को भी फैक्टरी घोषित कर सकती हैं जहाँ १० या उससे अधिक आदमी काम करते हों और यांत्रिक शक्ति का उपयोग होता हो या न होता हो। बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने इस छूट का लाभ उठाया है और ऐसे स्थानों को जहां १० आदमी काम करते हैं उन्हे फैक्टरी घोषित कर दिया है।

(२) फैक्टरी एक्ट के अनुसार वर्ष भर चलने वाली फैक्टरियों और मौसमी फैक्टरियों में अन्तर किया गया है। फैक्टरी एक्ट के अनुसार जो फैक्टरी वर्ष में १८० दिन से अधिक चले वह वर्ष भर चलने वाली मानी जावेगी।

वर्ष भर चलने वाली और मौसमी फैक्टरियों के मजदूरों के काम के घंटों में भिन्नता रक्खी गई है। कपास के और जूट के पेंच, मूंगफली के पेंच, चाय, काफी, लाख, नील, रबर, शक्कर, गुड़, इत्यादि के कारखाने मौसमी फैक्टरियां मानी जाती हैं।

(३) वर्ष भर चलने वाली फैक्टरी में प्रौढ़ स्त्री, पुरुष एक दिन में १० घंटे और एक सप्ताह में ५४ घंटे से अधिक काम नहीं कर सकते। उन कारखानों में जहां काम लगातार होता है, प्रौढ़ व्यक्ति एक दिन में १० घंटे से अधिक और सप्ताह में ५६ घंटे से अधिक काम नहीं कर सकता।

मौसमी कारखानों में प्रौढ़ पुरुष एक दिन में ११ घंटे और सप्ताह में ६० घंटे से अधिक काम नहीं कर सकता। और स्त्रियां एक दिन में १० घंटे और सप्ताह में ६० घंटे से अधिक काम नहीं कर सकतीं।

स्त्रियों को रात्रि में काम करने की मनाही है। केवल मछली के धंधे में वे रात्रि में काम कर सकती हैं। कोई स्त्री कानून के अनुसार ७ बजे सायंकाल तथा ६ बजे प्रातः काल के बीच में फैक्टरी में काम नहीं कर सकती। प्रान्तीय सरकार विशेष आज्ञा द्वारा इसमें कुछ परिवर्तन कर सकती हैं और ७--३० बजे सायंकाल तथा ५ बजे प्रातःकाल के बीच के समय में स्त्रियों को फैक्टरियों में काम करने की मनाही कर सकती है।

किसी भी दिन स्त्री या पुरुष मजदूरों को कारखाने में विश्राम (दोपहर की छुट्टी) को मिलाकर १३ घंटे से अधिक नहीं रहना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में काम के घंटों और विश्राम का समय १३ घंटे से अधिक समय में नहीं फैलाया जासकता।

प्रत्येक प्रौढ़ मजदूर को अनिवार्य रूप से बीच में विश्राम की छुट्टी मिलनी चाहिए। कोई भी मजदूर ६ घंटे, ५ घंटे और ८ घंटे बिना क्रमशः १ घंटा, ½ घंटा और आध आध घंटे की दो विश्राम की छुट्टी पाये काम नहीं कर सकता।

(४) १२ वर्ष की कम की आयु के बच्चे फैक्टरियों में काम नहीं कर सकते और कानून के अनुसार १२ और १५ वर्ष की आयु वाले बच्चे माने जाते हैं।

कानून के अनुसार १५ और १७ वर्ष की आयु वालों को वयस्क नाम से एक अलग श्रेणी में रक्खा गया है।

कोई भी १२ वर्ष से ऊपर का बालक मजदूर बिना डाक्टरी सर्टिफिकेट के प्राप्त किये फैक्टरी में काम नहीं कर सकता। डाक्टर इस बात का प्रमाण पत्र देता है कि उसका स्वास्थ्य फैक्टरी में काम करने के योग्य है और प्रत्येक ऐसा बालक मजदूर फैक्टरी में काम करते समय इस सार्टिफिकेट का चिन्ह एक टोकिन अपने पास रखता है।

यह तो ऊपर ही कहा जा चुका है कि १५ और १७ वर्ष की आयु वालों को वयस्क माना गया है, जब तक वे डाक्टर से इस आशय का

प्रमाण पत्र प्राप्त नहीं कर लेते कि वह प्रौढ़ मजदूर के समान कार्य करने के योग्य है, उन्हें बालक मजदूर ही माना जाता है और वे सब कानून जो बालक मजदूरों को लागू होते हैं, उन्हें भी लागू होते हैं।

बालक मजदूर दिनमें ५ घंटे से अधिक कार्य नहीं कर सकते। उनके काम के घंटे ७½ घंटों से अधिक समय में नहीं रक्खे जा सकते अर्थात् वे फैक्टरी में ७½ घंटे से अधिक नहीं ठहराये जा सकते।

बालक मजदूरों को भी रात्रि में काम करने की मनाही है। ७ बजे सायंकाल से ६ बजे प्रातःकाल के बीज में कोई बालक मजदूर काम नहीं कर सकता। प्रान्तीय सरकार इसमें थोड़ा परिवर्तन कर सकती है, अर्थात् वह घोषणा कर सकती है कि कोई बालक मजदूर (विशेष फैक्टरियों में) ७-३० बजे सायंकाल और ५ बजे प्रातः काल के बीच में काम नहीं करेगा।

बालक मजदूरों का एक ही दिन में दो फैक्टरियों में काम करना जुर्म है, और यदि कोई बालक मजदूर एक ही दिन में दो कारखानों में काम करता पाया जाता है, तो उसके अभिभावक को दण्ड दिया जाता है। भारतीय मां-बाप लालच-वश बालकों को डाक्टर के पास कुछ समय के अन्तर से दो बार भेज कर दो प्रमाण पत्र ले लेते हैं और एक दिन में दो कारखानों में उनसे काम करवाते हैं। इस प्रकार वह पांच घटे के स्थान पर १० घंटे काम करता है। इस कुप्रथा को रोकने के लिए यह विधान रक्खा गया है।

(५) फैक्टरियों के सब मजदूरों (पुरुष, स्त्री, बालक) को रविवार को छुट्टी मिलनी चाहिए। कुछ दशाओं में प्रौढ़ मजदूरों को इस विधान से छूट मिल सकती है। परन्तु फिर भी किसी प्रौढ़ मजदूर को लगातार दस दिन स अधिक बिना एक दिन की छुट्टी के काम करने की मनाई है।

बालक मजदूरों को इस संबंध में कोई छूट नहीं मिल सकती। उन्हें साप्ताहिक छुट्टी अवश्य ही मिलनी चाहिए।

यदि प्रान्तीय सरकार से विशेष आज्ञा प्राप्त करके वर्ष भर चलने वाली फैक्टरियों में ५४ या ५६ घंटे से अधिक ६० घंटे तक सप्ताह में काम कराया जावे तो साधारण मजदूरों से सवाई मजदूरी देनी होगी।

मौसमी या गैरमौसमी फैक्टरियों में यदि मज़दूरों से ६० घंटे से अधिक (विशेष आज्ञा प्राप्त करके) काम कराया जावेगा तो साधारण मज़दूरी से ड्योढ़ी मज़दूरी देनी होगी।

(६) कानून के अनुसार प्रत्येक फैक्टरी में मज़दूरों की सुरक्षा का प्रबन्ध होना आवश्यक है। अर्थात् खतरनाक यंत्रों की घेराबन्दी, फर्स्ट एड का सामान, कमरे के किवाड़ों का बाहर की ओर खुलना इत्यादि। प्रत्येक फैक्टरी में सफाई, यथेष्ट वायु, आवश्यक ठंडक और यथेष्ट रोशनी का प्रबन्ध करना अनिवार्य है।

कानून के अनुसार प्रत्येक फैक्टरी को पीने के लिये यथेष्ठ जल की व्यवस्था करना चाहिए, सफाई का पूरा प्रबन्ध रखना चाहिये, और नहाने तथा कपड़े धोने के लिये जल का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। खतरनाक यंत्रों की घेराबंदी आवश्यक है। फैक्टरी इन्सपेक्टर यदि आवश्यक समझे तो फैक्टरी मैनेजर को उसे यंत्रों से मज़दूरों की रक्षा और इमारत कारखाने के लिए ठीक है इसका संतोष करवाने के लिये कह सकता है। फैक्टरी मैनेजर को किसी भी दुर्घटना (जिससे कि मज़दूरों को चोट लगे और वह बेकार हो जावे) की सूचना ४८ घंटे में फैक्टरी इन्सपेक्टर को दे देनी चाहिए।

कानून प्रान्तीय सरकारों को इस बात की छूट देता है कि यदि वे चाहें तो खतरनाक कामों के सम्बन्ध में विशेष नियम बनावें, बालकों वयस्कों तथा स्त्रियों को जोखिम के कामों को करने से मनाही कर दें; जो बालक कानून के अनुसार फैक्टरी में काम नहीं कर सकते, उनको फैक्टरी की इमारत में आने की मनाही कर दें और कारखानों में भाप के प्रयोग पर नियंत्रण रखें।

इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को यह भी अधिकार दे

दिये गए हैं कि वे जिन फैक्टरियों में १५० मज़दूरों से अधिक काम करते हों, उन्हें विश्राम करने लिए सायादार स्थान बनाने पर विवश करें, और जिन फैक्टरियों में ५० स्त्रियों से अधिक काम करती हैं, उन्हें शिशु गृहों की व्यवस्था करने की आज्ञा दें। जहां ६ वर्ष से कम के बच्चों की देख-भाल हो और प्रत्येक फैक्टरी को फर्स्ट एड के औजारों और दवाईयों को रखने पर विवश करें।

यदि इस कानून की किसी फैक्टरी में अवहेलना की जावे तो कानून के अनुसार ५०० रु तक जुर्माना किया जा सकता है और बार-बार कानून के विरुद्ध कार्य करने पर अधिक कड़ा दण्ड दिया जाता है।

इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारें फैक्टरियों के निरीक्षण का प्रबन्ध अपने निरीक्षकों को नियुक्त करके कराती हैं। प्रान्तीय सरकारें ही फैक्टरी इन्सपेक्टरों की नियुक्ति करती हैं और डाक्टरों की भी नियुक्ति प्रान्तीय सरकारें ही करती हैं जो मजदूर बालकों को सर्टिफिकेट देते हैं।

बालक बंधक कानून १९३३

(The children pledging of Labour Act 1933)

यह एक्ट एक विशेष कुरीति को रोकने के लिए पास किया गया है। शाही कमीशन की जांच के समय यह ज्ञात हुआ कि बहुत से माता-पिता अपने बालकों के श्रम को मालिकों के पास बंधक रख देते हैं। इस कानून के अनुसार इस प्रकार का कोई भी सौदा चाहे वह लिखित हो या जबानी हो गैर कानूनी होगा। जो अभिभावक जान बूझ कर अपने बालक के श्रम को बंधक रक्खेगा उस पर ५० रुपये तक जुर्माना हो सकता है। जो मालिक या व्यक्ति जान बूझ कर इस प्रकार बालक के श्रम को बंधक रक्खेगा उस पर २०० रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

बालकों को नौकर रखने का कानून (१९३८)

इस कानून के अनुसार रेलों और बन्दरगाहों में सामान लादने

श्रौर उतारने में लगे हुए बालक मजदूरों की कम से कम श्रायु १५ वर्ष की होनी चाहिए। इस कानून के श्रनुसार सवारियों, डाक श्रौर माल के श्राने जाने के सम्बन्ध में रेल या बन्दरगाह पर कोई भी बालक तब तक काम नहीं कर सकता जब तक उसकी श्रायु १५ वर्ष की न हो गई हो। यदि इन कार्यों में कोई व्यक्ति १५ वर्ष के कम श्रायु के बालक को रक्खेगा तो उसको ५०० रुपए तक दण्ड दिया जा सकता है।

ालकों को नौकर रखने का संशोधित कानून १९३८

इस कानून का उद्देश्य नीचे लिखे कार्यों में काम करने वाले बालकों की कम से कम श्रायु को बढ़ा कर १२ वर्ष कर देना है। इस कानून के श्रनुसार कोई बालक जो पूरे १२ वर्ष का न हो चुका हो नीचे लिखे काम पर नहीं रखा जा सकता।

(१) बीड़ी बनाना, (२) दरी श्रौर गलीचा बनाना, (३) सीमेंट के बोरे भरना या सीमेंट की श्रन्य क्रियायें, (४) कपड़े पर छपाई करना, कपड़े की धुलाई श्रौर रंगाई करना (५) दियासलाई, श्रातिशबाजी तथा श्रन्य विस्फोटक पदार्थ बनाना, (६) श्रबरख को काटना श्रौर उसे श्रलहदा करना, (७) लाख तैयार करना (८) साबुन बनाना, (९) चमड़ा कमाना, श्रौर (१०) ऊन को साफ करना।

१९४० का संशोधित फैक्टरी कानून

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि १९३४ के फैक्टरी कानून के श्रनुसार प्रान्तीय सरकारों को इस बात की छूट दे दी गई थी कि यदि वे चाहें तो उन छोटी फैक्टरियों में जहां १० या उससे श्रधिक श्रादमी काम करते हों श्रौर जहां भाप या बिजली से काम होता हो ऐसी छोटी फैक्टरियों में प्रान्तीय सरकारें बालकों श्रौर वयस्कों के स्वास्थ्य, सुरक्षा, काम के घंटे, श्रौर काम करने की परिस्थितियों सम्बन्धी १९३४ एक्ट की धाराश्रों को लागू कर सकती हैं। परन्तु श्रब कानून

द्वारा प्रान्तीय सरकारें इस प्रकार की छोटी फैक्टरियों में उन धाराओं को लागू करने के लिए विवश कर दी गई हैं। साथ ही इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को यह भी अधिकार दे दिया गया है कि यदि वे चाहें तो किसी ऐसे स्थान को भी फैक्टरी घोषित कर दें जहां १० व्यक्तियों से भी कम काम करने वाले हों।

१९३४ का फैक्टरी कानून उन्हीं स्थानों के लिए अधिकतर लागू होता है जहां २० व्यक्ति काम करते हों और यांत्रिक शक्ति का उपयोग होता हो। परन्तु उस एक्ट की धारा ५(१) के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को जो अधिकार दिया गया था कि वे ऐसे स्थानों को भी इस एक्ट के अन्तर्गत फैक्टरी घोषित कर सकते हैं कि जहां १० या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हों और यांत्रिक शक्ति का उपयोग चाहे होता हो या न होता हो। बहुत सी प्रान्तीय सरकारों ने इस अधिकार का उपयोग किया है।

इसका परिणाम यह हुआ कि छोटे छोटे वर्कशापों में काम करने वाले मजदूरों को भी कानून का संरक्षण प्राप्त हो गया। परन्तु फिर भी भारतवर्ष में जो छोटे छोटे पेशे और धंधे हैं और जिनमें देश की एक बहुत बड़ी जन संख्या लगी हुई है, वह अभी तक कानून का संरक्षण प्राप्त नहीं कर सकी। इनमें मुख्य पेशे यह हैं :— (१) दूकानों के नौकर और कर्मचारी, व्यापारिक फर्मों में काम करने वाले, इमारतों को बनाने वाले राज, मजदूर, और बन्दरगाहों में माल लादने और उतारने वाले मजदूर। अभी कुछ दिन पहले कुछ प्रांतीय सरकारों ने इस ओर ध्यान दिया है, और इन पेशों और धन्धों में काम के घन्टों को नियत करने का प्रयत्न किया है। मध्यप्रान्त की सरकार ने छोटी, अनियंत्रित वर्कशापों के सम्बन्ध में एक कानून पास करके काम के घंटों को नियत करने का प्रशंसनीय कार्य किया और बम्बई सरकार ने व्यापारिक फर्मों तथा दूकानों में काम करने के घन्टों को निश्चित करने में पहला कदम उठाया, जिसका अनुकरण पंजाब, बंगाल, सिंध, आसाम, संयुक्त प्रांत की

सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार ने भी किया।

मध्यप्रान्त अनियंत्रित फैक्टरी कानून (१९३७)

यह एक्ट उन कारखानों और स्थानों में लागू होता है, जिनमें १९३४ का फैक्टरी कानून लागू नहीं होता और जहां ५० या उससे अधिक व्यक्ति काम करते और जहां नीचे लिखे धन्धे होते हैं :— (१) बीड़ी बनाना (२) लाख तैयार करना (३) चमड़ा कमाना। सरकार को यह भी अधिकार है कि वह किसी स्थान में जहां २५ मजदूरों से अधिक कार्य करते हों और जहां इन धन्धों के अलावा दूसरे धन्धे होते हों इस कानून को लागू करे। किन्तु कानून को ऐसे स्थानों में लागू करने से पहले सरकार को इस आशय की घोषणा करना होगी।

इस कानून के अनुसार पुरुषों के काम के घंटे १० निर्धारित किये गये हैं। ५ घन्टे काम कर चुकने के उपरान्त आध घन्टे का विश्राम जरूरी है और सप्ताह में एक दिन छुट्टी आवश्यक है।

इस एक्ट के अनुसार १० और १४ वर्ष की आयु के बीच के बालकों को उसी दशा में अनियन्त्रित फैक्टरियों में काम करने की आज्ञा मिल सकती है, जब उनको शारीरिक स्वस्थता का प्रमाण पत्र डाक्टर ने दे दिया हो और काम के समय वे उस आशय का टोकिन (बिल्ला) रक्खें। ऐसे बालकों के लिए ७ घन्टे का दिन, आधे घन्टे का विश्राम और सप्ताह में एक छुट्टी कानून द्वारा निश्चित कर दी गई है। बालकों के लिए रात्रि में काम करने की मनाई है। बालक केवल ८ बजे प्रातःकाल से १२ बजे दो पहर तक और १ बजे मध्यान्ह से लेकर ५ बजे तक काम कर सकते हैं।

स्त्रियों के लिए कानून में ९ घन्टे काम, आध घन्टे का विश्राम, और सप्ताह में एक दिन छुट्टी का निर्धारित किया गया है। स्त्रियों के लिए भी रात्रि में काम करने की मनाही है।

१९३४ के एक्ट के अनुसार ही इस एक्ट में भी सफ़ाई, हवा, रोशनी,

शौचगृह और पेशाबखानों, पीने के पानी और इमारतों की मज़बूती की व्यवस्था का प्रबन्ध किया गया है। कानून के अन्तर्गत सरकार को इन अनियन्त्रित कारखानों का निरीक्षण करने के लिए इन्सपेक्टरों और बालकों को स्वस्थ्य होने का प्रमाण पत्र देने के लिए डाक्टरों की नियुक्ति करने का अधिकार प्राप्त है। यदि कोई कारखाने का मालिक इस कानून की अवहेलना करे तो उस पर २०० रु. तक जुर्माना हो सकता है।

दुकानों में काम करने वालों से सम्बन्धित कानून

यह तो पहिले ही कहा जा चुका है कि सर्व प्रथम बम्बई सरकार ने इस ओर कदम बढ़ाया और फिर अन्य प्रान्तों ने उसका अनुकरण किया। अस्तु, इस सम्बन्ध में बहुत से प्रान्तीय एक्ट बन गए हैं, हम यहाँ उनकी एक तालिका देते हैं।

बम्बई शाप एक्ट १६३६ :—

यह कानून दूकानों, व्यापारिक फर्मों, रैस्टॉरेंट, होटल, तथा थिएटर सिनेमा तथा अन्य मनोरंजन के स्थानों में लागू होता है। इसके अनुसार दूकानों के लिए प्रतिदिन ६॥ घंटे, व्यापारिक फर्मों के लिए महीने में २०८ घंटे और रैस्टॉरेंट तथा मनोरंजन गृहों में १० घंटे प्रतिदिन नियत किये गए हैं। सप्ताह में सब कर्मचारियों को एक छुट्टी मिलनी चाहिए। यदि निश्चित घंटों से अधिक काम लिया जावे तो कर्मचारियों को सवाई मजदूरी देनी होगी। कानून के अनुसार एक निश्चित आयु से कम के बालकों को इन स्थानों में काम करने की मनाही है। दूकानों के खुलने और बन्द होने का समय निर्धारित कर दिया गया है। एक्ट तरुण पुरुषों के लिए काम के घंटे प्रतिदिन ८ और सप्ताह में ४८ निर्धारित करता है और वे ६ बजे प्रातः काल से ७ बजे सायंकाल के बीच में ही काम कर सकते हैं।

पंजाब व्यापारी कर्मचारी एक्ट १९४०

बम्बई के समान ही यह दूकानों, फर्मों तथा मनोरंजन गृहों में लागू होता है। कर्मचारी प्रतिदिन अधिक से अधिक १० घंटे और सप्ताह में अधिक से अधिक ५४ घंटे काम कर सकते हैं। कर्मचारियों से गर्मियों में ७ बजे प्रातः काल से १० बजे रात्रि के बीच में और जाड़ों में ८-३० प्रातः काल से ९ बजे रात्रि तक काम लिया जा सकता है। सप्ताह में एक छुट्टी आवश्यक है। यदि निर्धारित घंटों से अधिक काम कराया जावे तो दुगनी मजदूरी देनी होती है। १४ वर्ष से कम आयु वालों को नौकर रखने की मनाही है। बंद वाले दिन सब दूकानों का बंद होना अनिवार्य है। पंद्रहवें दिन मजदूरी दी जानी चाहिए। एक रुपये में एक पैसे से अधिक जुर्माना नहीं किया जा सकता। निकालने के लिए एक महीने का नोटिस या एक मास का वेतन देना आवश्यक है। यदि किसी कर्मचारी ने वर्ष भर लगातार काम किया हो तो १४ दिन की सवेतन छुट्टी और यदि ६ महिने काम किया हो तो ७ दिन की सवेतन छुट्टी मिलनी चाहिए। एक दिन में एक घंटे का विश्राम मिलना चाहिए।

केन्द्रीय सरकार का साप्ताहिक छुट्टी का बिल

यह कानून दूकानों व्यापारिक फर्मों, रैस्टॉरैंट तथा थियेटरों में लागू होता है। इसके अनुसार सप्ताह में एक दिन छुट्टी मिलना आवश्यक है। किन्तु प्रान्तीय सरकार चाहे तो किसी को इस कानून से मुक्त कर सकती है।

संयुक्त प्रान्तीय दूकान सम्बंधी बिल

इस बिल का आशय यह है कि केवल दूकानों में कर्मचारियों को ९ घंटे से अधिक काम न करना पड़े। सप्ताह में एक दिन छुट्टी हो। १४ वर्ष से कम की आयु के बालकों को नौकर नहीं रक्खा जा सकता। निकालने के लिये एक मास का नोटिस देना अनिवार्य होगा। वेतन

पंद्रहवें दिन देना होगा।

आसाम के बिल में भी लगभग यही बातें रक्खी गई थी; किन्तु अभी तक यह बिल कानून नहीं बन पाये।

सिंध का कानून तो एक प्रकार से बम्बई कानून की नकल मात्र है। अब तो अधिकांश प्रान्तों में इस प्रकार का कानून बन गया है।

खानों में काम करने वालों के सम्बन्ध में कानून

भारतीय खानों में काम करने के घंटे तथा अन्य बातों का नियंत्रण भारतीय खान (संशोधित) एक्ट १९३५ के अनुसार होता है, उसकी मुख्य धारा नीचे लिखी है:—

(१) वे सभी स्थान जिन्हें किसी खनिज पदार्थ के प्राप्त करने के लिये खोदा जावे, इस कानून के अनुसार 'खान' हैं और उसमें यह कानून लागू होता है।

(२) कोई प्रौढ़ पुरुष भूमि के ऊपर एक दिन में १० घंटे से अधिक और सप्ताह में ५४ घंटे से अधिक काम नहीं कर सकता। और यदि वह खान के अन्दर काम करता हो तो ९ घंटे से अधिक काम नहीं कर सकता। खान के अन्दर काम के घंटे किसी एक व्यक्ति के लिये पृथक नहीं होते। जब टुकड़ी का प्रथम व्यक्ति खान में घुसता है, काम शुरू हो गया माना जाता है और जब अन्तिम व्यक्ति बाहर निकलता है, तब काम समाप्त हुआ माना जाता है। यह समय ९ घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए। सच तो यह है कि आने-जाने में जो समय लगता है, उसको निकालने पर ८ घंटा ही कार्य होता है।

स्त्रियों के लिए खानों में काम करने के घंटे पुरुषों के बराबर ही हैं, किन्तु ७ मार्च १९२९ को जो नियम बनाया गया, उसके अनुसार स्त्रियों को खानों के अन्दर काम करने की मनाही करदी गई। क्योंकि उस समय खानों के अन्दर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक थी; इस कारण नियम के अनुसार १ जुलाई १९३९ तक क्रमशः

सभी स्त्रियों को खानों से बाहर निकल जाने की व्यवस्था की गई। किन्तु १६३६ के कई वर्ष पूर्व ही भारतीय खानों के अन्दर स्त्रियों से काम लेना बंद कर दिया गया था। परन्तु युद्ध के समय कोयले की कमी के कारण भारत सरकार ने अस्थायी रूप से स्त्रियों को खानों के अन्दर काम करने की फिर आज्ञा दे दी, जिसका देश तथा विदेशों में घोर विरोध हुआ। अब शीघ्र ही यह आज्ञा वापस ले ली जावेगी।

१५ वर्षों से कम की आयु के बालक को खान में काम करने की मनाही है। १५ से १७ वर्ष की आयु के तरुण तब तक खान में काम नहीं कर सकते, जब तक कि उनके पास शारीरिक स्वास्थ्य का प्रमाण पत्र न हो। और उस प्रमाण पत्र का सूचक बिल्ला उसके पास न हो।

(३) खान के मैनेजर को उन सब दुर्घटनाओं का एक रजिस्टर रखना आवश्यक है, जिनसे किसी व्यक्ति को ऐसी चोट लगे कि वह ४८ घंटे के लिए बेकार हो जावे और दुर्घटना के फलस्वरूप मृत्यु या गहरी चोट लग जावे तो उसकी सूचना चीफ इन्सपेक्टर को देना आवश्यक है।

(४) मैनेजर को खान में यथेष्ट पीने के लिए जल तथा शौच, पेशाबघर इत्यादि का समुचित प्रबंध करना चाहिए। जिन खानों को केन्द्रीय सरकार आज्ञा दे, उन्हें फर्स्ट-एड की सामग्री तथा अन्य दवायें इत्यादि रखना आवश्यक है।

(५) इस एक्ट का शासन केन्द्रीय सरकार करती है, जो खानों का चीफ इन्सपेक्टर नियुक्त करती है और उसके आधीन और बहुत से निरीक्षक होते हैं। केन्द्रीय सरकार कोर्ट भी नियुक्त कर सकती है, जो कि खानों में होने वाली दुर्घटनाओं की जांच करती है, और उस जांच की रिपोर्ट प्रकाशित करती है।

एक्ट के अनुसार केन्द्रीय सरकार माइनिंग बोर्ड या माइनिंग कमेटी नियुक्त करती है जो कि खानों सम्बंधी सभी बातों पर अपना मत प्रगट करती है। माइनिंग बोर्ड पर दो प्रतिनिधि मजदूरों के भी होते हैं,

जिन्हें केन्द्रीय सरकार खान में काम करने वाले मजदूरों की ट्रेड यूनियन के परामर्श से नियुक्त करती है।

इस कानून के विरुद्ध कार्य करने पर ५०० रुपये तक जुर्माना हो सकता है।

बागों में कार्य करने वाले मजदूरों से सम्बंधित कानून

मजदूरों की भर्ती वाले परिच्छेद में हम लिख चुके हैं कि आसाम के चाय के बागों में १८५९ के कानून (Workman's breach of contract act) के अनुसार मजदूर एक बार भर्ती होकर नियत अवधि तक काम करने के लिये विवश था। वह बाग की मजदूरी करना नहीं छोड़ सकता था। यदि वह भाग जावे तो बाग के मालिकों को उसे कैद करने और सजा देने का अधिकार प्राप्त था। यह घृणित कानून कहीं १९२५ में जाकर रद्द हुआ। मदरास प्लांटर्स एक्ट १९०३ और कुर्ग लेबर एक्ट में भी ऐसी घृणित धारायें थीं; किन्तु यह कानून भी क्रमशः १९२७ और १९२६ में रद्द कर दिये गए। १९०१ में आसाम प्रवास एक्ट बना जिसके अन्तर्गत प्रन्तीय सरकार को यह अधिकार दिया गया था कि वह चाय के बागों के सरदारों को जिन्होंने सरकार से मजदूर भर्ती करने का लायसैंस नहीं लिया है, अपने क्षेत्र में भर्ती न करने दें। १९०८ में एक नया कानून बना, जिसके अनुसार चाय के बागों में बिना लायसैंस प्राप्त ठेकेदारों के द्वारा मजदूरों को भर्ती करने की मनाही करदी गई और मजदूरों को कैद करने का अधिकार छीन लिया गया। १९१५ में आसाम मजदूर प्रवास (संशोधित) कानून पास हुआ, जिसके द्वारा आसाम में शर्त बंद कुली प्रथा बंद करदी गई और आसाम लेबर बोर्ड की स्थापना हुई। यही बोर्ड अब चाय के बागों के लिए मजदूर भर्ती के काम की देख भाल करता है। आजकल चाय के बागों के लिए मजदूर भर्ती तथा चाय के बागों में काम की व्यवस्था का नियंत्रण "चाय के बागों का प्रवास" कानून १९३२ के अनुसार होता है। इस

एक्ट की मुख्य बातें नीचे लिखी हैं :-

(१) केन्द्रीय सरकार को प्रवासी मजदूरों के एक कंट्रोलर को नियुक्त करने का अधिकार है और सरकार उसके तथा उसके आधीन कर्मचारियों के व्यय के लिए मजदूरों की भर्ती पर फीस लगा सकती है ।

(२) केन्द्रीय सरकार किसी भी क्षेत्र को "नियंत्रित प्रवास क्षेत्र" घोषित कर सकती है । इन नियंत्रित क्षेत्रों से मजदूरों की भर्ती किसी चाय के बाग के लिए बिना लायसैंस प्राप्त एजेन्टों के और कोई नहीं कर सकता । एजेन्ट को मजदूर के भोजन और रहने की डिपो पर उचित व्यवस्था करनी होगी और जब वह मजदूर डिपो से चाय के बाग़ को भेजा जावेगा तो मार्ग में भी उसके लिए भोजन की उचित व्यवस्था करनी होगी ।

(३) केन्द्रीय सरकार किसी भी क्षेत्र को सीमित भर्ती क्षेत्र घोषित कर सकती है । इस क्षेत्र में कोई भी व्यक्ति जो लायसैंस प्राप्त भर्ती करने वाला न हो या चाय के बाग का सरदार, जिसके पास चाय के बाग के मालिक का प्रमाण पत्र न हो, मजदूरों की भर्ती नहीं कर सकता । जो भी व्यक्ति इस कानून के विरुद्ध चाय के बागों (आसाम) में काम करने जाता है अथवा वह व्यक्ति जो कि किसी मजदूर को आसाम के चाय के बागों में जाने के लिए सहायता करता है, उसको ६ महीने की कैद या ५०० रु० जुर्माना या दोनों सजायें दी जा सकती हैं ।

(४) प्रत्येक व्यक्ति जो कि आसाम के बागों में काम करने जाता है, तीन वर्ष बाग में काम कर चुकने के उपरान्त चाय के बाग़ के खर्चे पर अपने घर वापस लौट आने का हक़दार है । यदि कोई मजदूर मर जावे तो उसके परिवार का भी यही हक होगा । यदि मजदूर का स्वास्थ्य बाग़ में अच्छा न रहता हो अथवा अन्य कारणों से उसका वहां रहना शक्य न हो तो वह ३ वर्ष पूरे होने से पूर्व ही बाग़ के खर्चे पर लौटने का अधिकारी है ।

(५) कोई बालक जो १६ वर्ष से कम आयु का है, भर्ती नहीं

किया जा सकता, जब तक कि वह अपनी माता के साथ न हो।

(६) प्रवासी मजदूरों का कंट्रोलर तथा उसके आधीन कर्मचारी इस बात की देख भाल करेंगे कि कानून के अनुसार भर्ती का काम हो रहा है या नहीं और वह प्रवासी मजदूरों के हितों की रक्षा करता है। जब मजदूर घर से चाय के बागों को जाता, चाय के बागों में रहता है, और अपने घर वापस लौटता है, तब कंट्रोलर उसके हितों की देख भाल और रक्षा करता है।

गमनागम के साधनों में लगे हुए मजदूरों से सम्बधित कानून

अभी तक कोई एक ऐसा कानून नहीं बना कि जो रेलवे, बंदरगाहों और सड़क, मोटर पर काम करने वालों की रक्षा करे, किन्तु रेलवे और बंदरगाहों पर काम करने वालों के सम्बंध में कुछ फुटकर कानून बने हैं:—

भारतीय रेलवे (संशोधित) एक्ट १९३०

रेलवे वर्क शापों में काम करने वाले मजदूरों के लिए १९३४ का फैक्टरी कानून लागू होता है। इस कानून का उद्देश्य उन श्रमजीवियों के हितों की रक्षा करना है, जो रेलवे लाइन पर स्थायी रूप से काम करते हैं। इस कानून की मुख्य धारायें नीचे लिखी हैं :—

(१) जिन व्यक्तियों का काम बीच बीच में रुक नहीं जाता है, वे सप्ताह में ६० घंटे से अधिक काम नहीं कर सकते।

(२) उन श्रमजीवियों का जिनका काम बीच-बीच में बंद हो जाता है, वे २४ घंटे एक सप्ताह में काम कर सकते हैं।

(३) यदि विशेष आवश्कता आ पड़े तो निर्धारित घंटों से अधिक भी काम लिया जा सकता है और निर्धारित घंटों से अधिक जितने घंटे काम लिया जावेगा, उनके लिए सवाई मजदूरी देनी होगी।

(४) जिन कर्मचारियों का कार्य मुख्यतः बीच-बीच में बंद हो जाने

वाला नहीं है, उन्हें सप्ताह में एक दिन की अवश्य छुट्टी मिलनी चाहिए।

भारतीय रेलवे कर्मचारियों के काम के घंटे संबंधी नियम (१९३१)

इस एक्ट द्वारा कतिपय रेलवे कर्मचारियों के काम के घन्टे और विश्राम की अवधि निर्धारित कर दी गई है। इस एक्ट के अन्तर्गत वे लोग नहीं आते, जो रेल गाड़ियों पर काम करते हैं (रनिंग स्टाफ) वाच वार्ड (देखभाल) तथा मैनेजर, सुपरवाइज़र इत्यादि। वे लोग फैक्टरी एक्ट के अन्तर्गत आते हैं। अब रेलवे में भी ८ घंटे प्रति दिन काम करने का नियम बन गया है।

अभी तक बन्दरगाहों में काम करने वालों के काम के घन्टे निर्धारित नहीं हुए हैं। इस सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बना। १९३१ के पोर्ट एक्ट के अनुसार कोई बालक जो कि १५ वर्ष से कम की आयु का हो, बन्दरगाह में काम नहीं कर सकता। किन्तु १९३८ के (Employment of children Act) बालकों को नौकर रखने सम्बन्धी कानून के अनुसार १५ वर्ष की आयु से कम का कोई बालक बन्दरगाहों में काम नहीं कर सकता।

डाक में काम करने वालों से सम्बंधित कानून १९३४

इस एक्ट का उद्देश्य डाक में काम करने वालों की सुरक्षा का प्रबंध करता है। इस एक्ट में डाकों पर आने जाने के रास्तों का ठीक रखना, माल को उठाने वाले यंत्रों को ठीक ठाक रखने, प्रारम्भिक चिकित्सा की सामग्री रखने की व्यवस्था की गई है।

जहाजों पर काम करने वालों से सम्बन्धित कानून

कोई भी बालक जिसकी आयु १४ वर्ष से कम है, जहाज पर साधारणतया काम नहीं कर सकता। हां, यदि वे अपने समीप के रिश्तेदार या पिता के चार्ज में काम करें तो १४ वर्ष से कम के बालकों को काम करने की आज्ञा मिल सकती है। १८ वर्ष से कम की आयु का तरुण

(Trimmer) या (Stoker) साधारणतया काम नहीं कर सकता। विशेष दशाओं में ही ऐसा करने की आज्ञा मिल सकती है १८ वर्ष से कम की आयु का व्यक्ति जहाज़ पर बिना डाक्टरी सर्टिफिकेट के कि वह शारीरिक दृष्टि से काम करने के योग्य है, काम नहीं कर सकता। भारतीय सरकार ने १६३१ के नोटिफिकेशन के अनुसार (ट्रिमरों) और स्टोकरों के काम के घन्टे भी नियुक्त कर दिये हैं।

श्रमजीवी क्षति पूर्ति कानून (संशोधित) १६३३

यह कानून उन श्रमजीवियों के लिए लागू होता है कि जो शारीरिक श्रम करते हैं और नीचे लिखे स्थानों में काम करते हैं:—(१) फैक्टरियाँ जहां १० आदमी काम करते हों और यांत्रिक शक्ति का उपयोग होता हो, और वे फैक्टरियां जहां यांत्रिक शक्ति का तो उपयोग न होता हो, किन्तु ५० व्यक्ति काम करते हों (२) खानें (३) बाग (सिनकोना, रबर, चाय, कहवा) जिनमें २५ से अधिक व्यक्ति काम करते हों। (४) जहाजी काम में, (५) जहाजों पर माल लादने और उतारने में (६) जहाज बनाने में (७) मकान बनाने में (यदि एक मंजिल से अधिक ऊँचा हो) (८) सड़कों के बनाने में (६) यांत्रिक गाड़ियों को चलाने में। (१०) विस्फोटक पदार्थों को बनाने या उनका उपयोग करने में। (११) गैस या बिजली तैयार करने में (१२) सिनेमा फिल्मों को तैयार करने और उनको दिखलाने में (१३) हाथी तथा अन्य जंगली जानवरों को रखने में।

इन कार्यों में चोट लग जाने या मर जाने को ही केवल दुर्घटना नहीं माना जावेगा; किन्तु कुछ पेशों के रोगों से बीमार पड़ने या मरने को भी दुर्घटना माना जावेगा और उसके लिए मालिक मज़दूर की क्षति पूर्ति करेगा। वे रोग नीचे लिखे हैं।

(१) ऐनथ्रैक्स (२) सीसा (Lead) फासफोरस, पारा और Benzene का जहर (३) क्रोम (Ulceration) (४) Compre-

ssed air-illness.

क्षति पूर्ति का हर्जाना केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिया जाता है, जिनका मासिक वेतन ३०० रु. से अधिक न हो, साथ ही जो व्यक्ति क्लार्क का काम करते हैं, उन्हें भी क्षति पूर्ति का हर्जाना नहीं मिल सकता। यदि काम करते समय और उसके फलस्वरूप किसी व्यक्ति को चोट लग जावे, अथवा दुर्घटना से उसकी मृत्यु हो जावे तो वह इस कानून के अन्तर्गत क्षति पूर्ति का हक़दार होगा। बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों में इस कानून के अन्तर्गत मामलों को तय करने का काम कमिश्नर करते हैं, जो इसी कार्य के लिये नियुक्त किये जाते हैं। किन्तु अन्य स्थानों पर जज ख़फीफा इस कानून के अन्तर्गत सारे मामलों को तय करता है।

किसी व्यक्ति को कितना रुपया हर्जाने के रूप में मिलेगा, यह उसके मासिक वेतन पर निर्भर है। दुर्घटना के फलस्वरूप मज़दूर को जब चोट लगती है तो उसके नीचे लिखे परिणाम हो सकते हैं:— [१] आंशिक असमर्थता [२] पूर्ण असमर्थता [३] मृत्यु। इसके अतिरिक्त धन्धों में काम करने वालों को कुछ रोग लग जाते हैं, जो उन धन्धों के विशेष रोग स्वीकार किये गए हैं। आंशिक असमर्थता, अस्थायी अर्थात् थोड़े दिनों के लिए भी हो सकती है और स्थायी अर्थात् हमेशा के लिए भी हो सकती है। इसी प्रकार पूर्ण असमर्थता भी कुछ समय के लिए अर्थात् अस्थायी अथवा सदैव के लिए अर्थात् स्थायी हो सकती है।

यदि काम करने वाला व्यक्ति चोट से केवल ७ दिन तक ही असमर्थ रहे तो उसे कोई हर्जाना नहीं मिल सकता। जब दुर्घटना से ७ दिन से अधिक के लिए असमर्थता हो तो मज़दूर को कानून में दिये हुए अनुसार हर्जाना मिलता है। कानून में हर्जाने की जो रक़म निर्धारित की गई है, वह वेतन के अनुसार है। दुर्घटना होने पर चोट खाने या मरने वाले को नीचे लिखे अनुसार हर्जाने की रकम दी जावेगी:—

चोट खाने वाले मज़दूर का मासिक वेतन या मज़दूरी		प्रौढ़ की मृत्यु होने पर	स्थायी पूर्ण असमर्थता होने पर [प्रौढ़ की]	प्रौढ़ की अस्थायी असमर्थता होने पर पखवारे [१५ दिन] में दी जाने वाली रकम
इससे अधिक	लेकिन इससे अधिक नहीं			
रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये – आना
०शून्य	१०	५००	७००	उसकी मासिक मजदूरी का आधा
१०	१५	५५०	७७०	५—०
१५	१८	६००	८४०	६—०
१८	२१	६३०	८८२	७—०
२१	२४	७२०	१००८	८—०
२४	२७	८१०	११३४	८—८
२७	३०	६००	१२६०	६—०
३०	३५	१०५०	१४७०	६—८
३५	४०	१२००	१६८०	१०—०
४०	४५	१३५०	१८६०	११—४
४५	५०	१५००	२१००	१२—८
५०	६०	१८००	२५२०	१५ - ०
६०	७०	२१००	२६४०	१७—८
७०	८०	२४००	३३६०	२०—०
८०	१००	३०००	४२००	२५—०
१००	२००	३५००	४६००	३०—०
२००		४०००	५६००	३०—०

ऊपर दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां तक प्रौढ़ स्त्री पुरुषों का सम्बन्ध है मृत्यु होने पर वेतन के अनुसार कम से कम ५०० और अधिक से अधिक ४००० रु. और स्थायी पूर्ण असमर्थता

पर कम से कम ७०० रुपये और अधिक से अधिक ४६०० रु. हर्जाना मिल सकता है। प्रौढ़ों के अस्थायी असमर्थ होने पर प्रति पखवारे अर्थात १५ दिन के बाद एक रकम दी जाती है, जो १० रु. तक मासिक वेतन पाने वाले के लिए उसके मासिक वेतन की आधी (अर्थात उसको पूरा मासिक वेतन हर्जाने में मिलता है) और तदुपरांत ५ रु. से ३० रु. तक है। अस्थायी असमर्थता होने पर ५ वर्षों तक यह पखवारे की रक़म मिलती रहेगी। यदि कोई व्यक्ति ५ वर्षों तक भी ठीक न हो तो उसकी असमर्थता स्थायी मान ली जावेगी। यदि ५ वर्षों से पूर्व ही अस्थायी असमर्थता स्थायी हो जावे तो मज़दूर को अस्थायी असमर्थता होने पर जो एक मुश्त रकम मिलती है, उसमें से जितनी रक़म उसे अस्थायी असमर्थता के काल में प्रति पखवारे मिल चुकी है; वह कम कर दी जायगी। प्रौढ़ों की पूर्ण स्थायी असमर्थता होने पर जितनी एक मुश्त रक़म मज़दूर को मिलनी चाहिए, वह तो ऊपर दी हुई तालिका में है किन्तु प्रौढ़ों की "स्थायी आंशिक असमर्थता" होने पर कितनी रकम दी जावेगी यह हिसाब लगा कर मालूम की जा सकती है। स्थायी आंशिक असमर्थता से मज़दूर की कार्य क्षमता जितनी घट जावे, उसी अनुपात में उसे स्थायी पूर्ण असमर्थता होने पर मिलने वाली रक़म का हिस्सा मिल जावेगा। उदाहरण के लिए किसी मज़दूर का जिसे ४० रु. मासिक मज़दूरी मिलती है, बांया हाथ कट जाता है तो वह स्थायी रूप से आंशिक असमर्थ हो गया। कानून के अनुसार बांया हाथ कटने पर उसकी ६०% प्रतिशत कार्य क्षमता नष्ट हो गई। पूर्ण स्थायी असमर्थता होने पर उसे २१०० रु. क्षति पूर्ति के मिलते। अस्तु, बांया हाथ कट जाने पर उसे २१०० रु. का ६०% प्रतिशत अर्थात १२६० रु. मिलेंगे। कौन सा अंग भंग हो हो जाने पर कितनी कार्य क्षमता नष्ट होती है, उसकी भी एक तालिका एक्ट में दी हुई है जिसे हम आगे चल कर देंगे।

यदि अल्पवयस्क (१२ वर्ष और १५ वर्ष के बीच की आयु वाला) स्थायी रूप से पूर्ण असमर्थ हो जावे तो उसे एक मुश्त १२००रु.

मिलेंगे। फिर चाहे उसे जो कुछ भी मजदूरी मिलती हो। यदि अल्प वयस्क की मृत्यु हो जावे तो उसके माता पिता या अभिभावकों को केवल २०० रु. एक मुश्त मिलेंगे।

अस्थायी असमर्थता होने पर फिर चाहे वह आंशिक या पूर्ण हो, ऊपर दी हुई तालिका में जो पखवारे की रकम नियत है, वह प्रौढ मज़दूरों को वेतन के अनुसार मिलेगी। अल्पवयस्क जब अस्थायी रूप से असमर्थ हो तो उसको प्रति मास अपनी मासिक मज़दूरी की आधी रकम हर्जाने में मिलेगी। किन्तु यह मासिक हर्जाने की रकम ३० रु. प्रति मास से अधिक नहीं हो सकती।

नीचे दी हुई तालिका में किसी अंग के भंग होने पर जो स्थायी आंशिक असमर्थता होती है, उससे होने वाली कार्य क्षमता की हानि का ब्यौरा दिया हुआ है।

चोट	कार्य क्षमता की हानि प्रतिशत में
कोन्ही पर या कोन्ही से ऊपर दायें हाथ का नष्ट हो जाना	७०प्रतिशत
,, ,, ,, ,, बांयें ,, ,, ,,	६०प्रतिशत
कोन्ही से नीचे दायें हाथ का नष्ट हो जाना	६० ,,
कोन्ही के नीचे से बांयें हाथ का नष्ट हो जाना	५० ,,
घुटने पर से या घुटने से ऊपर टांग का नष्ट हो जाना	६० ,,
घुटने से नीचे टांग का नष्ट हो जाना	५० ,,
स्थायी रूप से पूर्ण बहिरा हो जाना	५० ,,
एक आँख नष्ट हो जाने पर	३० ,,
हाथ का अंगुठा नष्ट हो जाने पर	२५ ,,
एक पैर की सब अंगुलियां नष्ट हो जाने पर	२० ,,
अंगूठाका एक पोरा [हड्डी का टुकड़ा] नष्ट हो जाने पर	१० ,,
पैर का अंगूठा नष्ट हो जाने पर	१० ,,
हाथ के अंगूठे के पास वाली अंगुली के नष्ट हो जाने पर	१० ,,

किसी अंगुली के नष्ट हो जाने पर .... ५ प्रतिशत

किन दशाओं में मालिक हर्जाना देने को बाध्य न होगा

(१) जब कि चोट से पूर्ण या आंशिक रूप से मजदूर ७ दिन से अधिक के लिए असमर्थ न हो।

(२) चोट उस समय लगी हो, जब कि मजदूर शराब या अन्य किसी नशीली वस्तु के प्रभाव में हो। अथवा मजदूर जानबूझ कर उन नियमों को तोड़े या अवहेलना करे कि जो विशेषकर उसकी सुरक्षा के लिए बनाये गये हों। अथवा कोई सुरक्षा यंत्र लगा हो उसको जानबूझ कर हटा दे। यदि वह यह जानता था कि यह यंत्र उसकी मशीन से रक्षा करने के लिये था तो वह क्षति पूर्ति के हर्जाने का दावा नहीं कर सकता।

(३) यदि मजदूर अपने काम को छोड़कर दूसरे मजदूर के काम पर जावे।

परन्तु यदि नशे की अवस्था में अथवा जानबूझ कर सुरक्षा के नियमों इत्यादि की अवहेलना करने पर चोट से मृत्यु हो जावे तो मालिक को हर्जाना देना होगा।

यह तो पहले ही बतलाया जा चुका है कि इस एक्ट का शासन कमिश्नर करते हैं, जिन्हें प्रांतीय सरकार इस काम के लिए नियुक्त करती है। मृत्यु की सूचना पाने पर कमिश्नर ३० दिन के अन्दर मालिक से इस आशय का बयान देने को कह सकता है कि जिससे यह ज्ञात हो कि वह हर्जाने की रकम देना स्वीकार करता है, या नहीं करता है। यदि मालिक अपनी जिम्मेदारी स्वीकार करता है तो वह हर्जाने की रकम कमिश्नर के पास जमा कर देता है। कमिश्नर को मृतक मजदूर के परिवार वालों को उसके मृतक संस्कार के लिए २५ रु. पेशगी देने का अधिकार है। यदि मालिक हर्जाना देने की जिम्मेदारी लेना अस्वीकार करे तो कमिश्नर को यह अधिकार है कि वह मृतक व्यक्ति के आश्रितों को

यह सूचना दे कि वे हर्जाने का दावा करें। कमिश्नर को सारे मामले को सुनने और उसका फैसला देने का भी अधिकार है।

मालिक और मजदूर यदि कोई दुर्घटना होने पर दी जाने वाली रकम के सम्बन्ध में आपस में व्यक्तिगत रूप से समझौता कर लें तो वह गैर कानूनी होगा, जब तक कि उसकी रजिस्ट्री कमिश्नर के यहां न हो जावे। कमिश्नर को यह अधिकार है कि इस प्रकार के समझौते की रजिस्ट्री कर ले। यदि वह इस बात से संतुष्ट हो जावे कि वह धोखे या दबाव से नहीं हुआ है। मृत्यु होने पर प्रत्येक मालिक को उसकी सूचना कमिश्नर को देनी होती है।

१९३७ में कानून में जो संशोधन हुआ है, उसके अनुसार बड़े बड़े गोदामों में माल को लादने, ढोने और उतारने में यदि कोई चोट लगे या मृत्यु हो जावे तो भी यह कानून लागू होता है।

१९३९ के संशोधन के अनुसार यदि मज़दूर मालिक को नोटिस देना भूल जावे या निर्धारित समय के अन्दर दावा न करे तो इससे उसके हर्जाने का दावा करने का हक नष्ट नहीं हो जाता। हां, उस दशा में कमिश्नर को यह संतोष हो जावे कि मजदूर ने प्रार्थना पत्र इस विश्वास में दिया था कि उसकी चोट ऐसी है कि उसे कानून के अनुसार हर्जाना मिलना चाहिये था और वह प्रार्थना पत्र अस्वीकार हो गया; तब वह बिना नोटिस दिये ही उस दावे को सुन सकता है। किन्तु मजदूर या मजदूर कार्यकर्ताओं के लिये ठीक यही है कि वे हर्जाने का नोटिस मालिक को अवश्य दे दें।

मज़दूरी अदायगी एक्ट (१९३६)

इन कानून का मुख्य उद्देश्य यह है कि मज़दूरों को उनका वेतन समय पर बांटा जावे, उनके वेतन में से मनमानी कटौती न की जा सके, एक निश्चित रकम से अधिक जुर्माना न किया जा सके। कानून की मुख्य धारायें नीचे लिखी हुई है :—

(१) यह कानून फैक्टरियों और रेलों में लागू होता है और वे सब मज़दूर और कर्मचारी इसके अन्तर्गत आ जाते हैं जो २०० रु. मासिक से कम पाते हैं। जिन फैक्टरियों तथा रेलों में एक हज़ार व्यक्तियों से कम काम करते हैं और जिनमें एक हज़ार से अधिक काम करते हैं, उन्हें अपने कर्मचारियों को वेतन का समय व्यतीत होने पर क्रमशः ७ दिन और १० दिन के अन्दर सबों का वेतन चुका देना चाहिए। जिस व्यक्ति को नौकरी से हटा दिया गया हो, उसको निकाले जाने के दूसरे दिन तक उसका वेतन अवश्य मिल जाना चाहिए। वेतन या मजदूरी छुट्टी के दिन नहीं बांटी जा सकती। काम के ही दिन बांटी जानी चाहिए। और वेतन का समय एक महिने से किसी दशा में अधिक नहीं हो सकता। वेतन नक़द रुपयों में ही चुकाया जाना चाहिए। वस्तुओं में वेतन देने की मनाही है।

(२) कानून द्वारा जो कटौती स्वीकृत है, उसके अतिरिक्त वेतन में से और अधिक कटौती नहीं हो सकती। यदि मालिक और कोई कटौती करे तो वह गैर क़ानूनी समझी जावेगी। जो कटौतियां कानून द्वारा स्वीकृत हैं वे नीचे लिखी हैं:—

जुर्माना, गैरहाज़िरी, मकान का किराया, आय-कर, प्रावीडैंट फन्ड की किश्त, अदालती रुपया जो देना हो, मालिक ने जो रुपया पेशगी दे दिया हो, सहकारी समिति का कर्ज, और अन्य कोई सुविधा जो कि मालिक द्वारा मज़दूर को पहुँचाई जावे।

(३) कानून द्वारा जुर्माने का इस प्रकार नियंत्रण किया गया है:—

(अ) बालकों पर जुर्माना करने की मनाही कर दी गई है।

(ब) जुर्माने की रकम किश्तों में या जुर्माना करने के ६० दिन बाद वसूल नहीं की जा सकती।

(क) किसी भी महीने में मज़दूर के वेतन (जो उसने प्राप्त किया हो) में से आध आना प्रति रुपया से अधिक जुर्माना नहीं किया जा सकता।

(ख) जुर्माने की वसूली से जो रकम इकट्ठी हो, वह मज़दूरों के हित के किसी काम पर ही व्यय की जा सकती है। जिसकी स्वीकृति मालिकों को सरकार से लेना आवश्यक है।

(ग) मालिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे इस प्रकार की सूचनायें नोटिस बोर्ड पर लगा दें कि किन दोषों के लिए जुर्माना होगा। जिन भूलों का उस नोटिस में कोई उल्लेख न हो, उनके लिए जुर्माना करना गैर कानूनी है।

(घ) जब मालिक जुर्माना करे तो मज़दूर को यह अवसर मिलना चाहिए कि वह जुर्माने के विरुद्ध अपनी सफाई दे सके। और जो भी जुर्माना किया जाय वह वेतन बांटने वाला एक रजिस्टर में दर्ज करे।

(४) इस कानून की अवहेलना होने पर दण्ड का विधान है कि जो मालिक देरी से वेतन बांटेंगे उन पर ५०० रु. तक जुर्माना हो सकता है। और गैर कानूनी जुर्माना करने पर मालिक को जुर्माने का दस गुना दण्ड देना होगा। जो मज़दूर मालिक के विरुद्ध झूठी शिकायत करेगा उस पर ५० रु. तक दण्ड दिया जा सकता है।

यदि मज़दूर काम करते समय शराब के नशे में हो, या उसने जान-बूझ कर उन सुरक्षा के नियमों की अवहेलना की हो, जो कि दुर्घटनाओं से मज़दूरों को बचाने के लिए बनाये गए हैं तो चोट लगने पर वह मज़दूर हर्जाना पाने का दावा नहीं कर सकता।

(५) जहां तक फैक्टरियों का सम्बन्ध है, फैक्टरी इन्सपेक्टर इसका शासन करते हैं। रेलों में लगे हुए कर्मचारियों तथा मज़दूरों के लिए प्रान्तीय सरकार पृथक् इन्स्पैक्टर नियुक्त कर सकती है।

हड़तालों तथा औद्योगिक शान्ति बनाये रखने से सम्बन्धित कानून

प्रथम योरोपीय महायुद्ध (१९१८) के उपरान्त भारतीय कारखानों में हड़तालों की बाढ़ सी आगई। प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र में लम्बी-लम्बी हड़तालें हुईं और उनसे धन्धों को बहुत हानि पहुँची। अतएव औद्योगिक

शान्ति बनाये रखने के लिए १६२६ में हड़ताल कानून (Trade Disputes Act) बनाया गया।

हड़ताल कानून १६२६

इस कानून का मुख्य उद्देश्य ऐसे साधन उत्पन्न करना है, जिनसे औद्योगिक झगड़े शान्तिपूर्वक बिना हड़ताल के निबट जावें, और बिजली, पानी, रेलवे, इत्यादि जन-उपयोगी कारखानों या धन्धों में यकायक हड़ताल करना जुर्म बना दिया जावे। तथा राजनैतिक हड़तालें गैरकानूनी कर दी जावे। कानून की मुख्य धारायें नीचे लिखी हैं:--

इस कानून के द्वारा केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि यदि कहीं हड़ताल हो रही हो या हड़ताल होने की आशंका हो तो उस झगड़े को तय करने के लिए सरकार "समझौता-बोर्ड" या जांच अदालत नियुक्त करे। सरकार बोर्ड या अदालत की रिपोर्ट को प्रकाशित कर सकती है।

(२) जन उपयोगी धन्धों जैसे रेलवे, जहाज़ तथा नावों, ट्रामगाड़ी डाक, तार, तथा टेलीफोन, शक्ति, रोशनी, तथा जल के कारखानों तथा स्वास्थ्य और सफाई के काम में लगे हुए मज़दूरों के द्वारा बिना १४ दिन का नोटिस दिये हड़ताल करना गैर कानूनी है। साथ ही मालिक भी बिना १४ दिन का पेशगी नोटिस दिये द्वारावरोध (Lock out) नहीं कर सकते। यदि इस कानून की मज़दूर अवहेलना करें तो उन्हें एक महीने की सज़ा या ५० रु. जुर्माना या दोनों ही किया जा सकता है। यदि मालिक इस कानून की अवहेलना करें तो उस पर १००० रु. जुर्माना या एक मास का कारावास या दोनों ही किये जा सकते हैं।

(३) जो हड़तालें राजनैतिक या साधारण हों और औद्योगिक झगड़े से सम्बन्ध न रखती हों और जिनका उद्देश्य समाज को घोर कष्ट पहुँचाना हो, वे गैर कानूनी घोषित करदी गई हैं। इस प्रकार की हड़तालों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करने वालों को ३ महीने का

कारावास या २०० रु. का जुर्माना या दोनों ही किया जा सकता है। जो मज़दूर इस प्रकार की गैर कानूनी हड़तालों में भाग लेने से इन्कार करेंगे कानून ने उनके साधारण मज़दूर सभाओं के अधिकारों को सुरक्षित कर दिया है। अर्थात मज़दूर सभायें ऐसे मज़दूरों को अपनी सदस्यता से हटा नहीं सकतीं।

(४) इस एक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को समझौता अधिकारी (Conciliation officer) नियुक्त करने का अधिकार दे दिया गया है। यह अधिकारी मालिक और मज़दूरों के बीच में समझौता कराने का प्रयत्न करते हैं।

बम्बई हड़ताल कानून (१९३८)

बम्बई की कांग्रेसी सरकार ने १९३८ में हड़तालों सम्बंधी एक क्रान्तिकारी कानून बनाया। जिसका मुख्य उद्देश्य मालिक और मजदूरों के बीच समझौता कराने के लिए साधन उपस्थित करना, प्रान्त के बड़े और संगठित धंधों में मजदूरों को नौकर रखने में मनमानी न होने देना, और बिना नोटिस दिये हुए हड़ताल या द्वारावरोध करने की मनाही करना है। इस कानून का यही मुख्य उद्देश्य है कि जब तक समझौता करने के सारे प्रयत्न विफल न हो जावें, तब तक हड़ताल न होने दी जावे। १९२९ के हड़ताल कानून में जनोपयोगी धंधों में जो नोटिस देने की कैद लगाई गई थी, बम्बई कानून में प्रत्येक धंधे के लिये लगा दी गई है। इसकी मुख्य धारायें नीचे लिखी हैं :-

(१) इस कानून के द्वारा औद्योगिक झगड़ों को तय करने के लिये तथा मिल मालिक और मज़दूरों के बीच समझौता करवाने के लिए बहुत समुचित प्रबंध किया गया है।

प्रान्तीय सरकार का लेबर आफिसर मुख्य समझौता कराने वाला (पंच) है। किन्तु सरकार किसी विशेष झगड़े का निपटारा करने के लिये विशेष समझौता कराने वालों की नियुक्ति कर सकती है। यदि समझौता कराने

वालों से झगड़ा न निपटे और वे असफल हो जावें तो सरकार समझौता बोर्ड स्थापित कर सकती है। एक्ट के अन्दर इस बात की भी सुविधा कर दी गई है, कि यदि दोनों पक्ष राजी हों और अपनी स्वीकृति लिखकर दे दें तो उनका झगड़ा तय करने के लिये किसी ऐसे व्यक्ति को नियुक्त कर दिया जावे, जिसे कि दोनों पक्ष चाहें। कुछ दशाओं में झगड़ा औद्योगिक पंचायत अदालतों के सामने भी भेजा जा सकता है। इस प्रकार एक्ट के अन्तर्गत औद्योगिक झगड़ों को निपटाने के लिये मुख्य समझौता कराने वाला (लेबर आफिसर) विशेष समझौता कराने वाले, समझौता बोर्ड, स्वयं निर्वाचित पंच, औद्योगिक पंचायत अदालत इत्यादि समझौता कराने के साधन उपलब्ध कर दिये गये हैं।

(२) प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार है कि वह लेबर आफिसर की नियुक्ति करे, जो कि मजदूरों के हितों की रक्षा करे और यदि उनका और मालिकों का कोई झगड़ा हो, तो यदि मजदूर अपना प्रतिनिधि न भेज सकें तो उस दशा में उनका प्रतिनिधित्व करे।

(३) एक्ट के अन्तर्गत उन प्रश्नों को दो भागों में विभक्त कर दिया गया है, जिनको लेकर मालिक और मजदूरों में झगड़ा होता है। वे इस प्रकार हैं। पहले भाग में निम्नलिखित प्रश्नों को रक्खा गया है :-

(अ) मजदूरों का वर्गीकरण-उदाहरण के लिए स्थायी, अस्थायी, अपरैंटिस, प्रोबेशनर, और बदली मजदूर।

(ब) मजदूरों के काम के घंटे, छुट्टियां, तनख़ाह का दिन और मजदूरी की रेट इत्यादि की सूचना देने का ढंग।

(क) शिफ्ट में काम करने का आयोजन।

(ख) हाजरी और देरी से आने के सम्बंध में नियम।

(ग) छुट्टियां, छुट्टी देने लेने के नियम, शर्तें, छुट्टियां कौन मंजूर करेगा इत्यादि।

(घ) कारखाने में खोज का उत्तरदायित्व, और फाटकों से घुसने के सम्बंध में नियम।

(ङ) अस्थायी रूप से कारखाने बंद हो जाने पर मालिकों और मजदूरों के अधिकार और दायित्व।

(च) नौकरी का समाप्त होना। मालिक तथा मजदूरों का एक दूसरे को नोटिस देना।

(छ) अवांच्छनीय चरित्र के लिए मुअत्तिल करने तथा नौकरी से हटाने के सम्बंध में नियम।

(ज) मजदूरों के साथ मालिक अथवा उसके कर्मचारियों के दुर्व्यवहार से उनकी रक्षा करने के उपाय।

दूसरे भाग में निम्नलिखित प्रश्नों का समावेश है।

(अ) स्थायी अथवा अर्ध स्थायी रूप से मजदूरों की संख्या में कमी करना।

(ब) किसी विभाग में अथवा विभागों में स्थायी अथवा अर्ध-स्थायी रूप से मजदूरों की संख्या को बढ़ाने की मांग।

(क) किसी कर्मचारी को नौकरी से हटाना जो कि इस कानून के अन्तर्गत बने हुए स्टैंडिंग आर्डर के विरुद्ध हो।

(ख) रेशनैलाइजेशन तथा अन्य उन्नत तरीकों का कारखाने में उपयोग करना।

(ग) शिफ्ट सिस्टम में परिवर्तन करना, उसको बंद करना इत्यादि जो कि स्टैंडिंग आर्डर के अनुसार न हो।

(घ) मज़दूर सभाओं को स्वीकार करना या स्वीकृति को वापस लेना।

(ङ) कोई पुरानी सुविधा जो कि मजदूरों को प्राप्त हो, उसको वापस लेना या किसी पुरानी परम्परा में परिवर्तन करना।

(च) अनुशासन सम्बंधी नये नियमों का प्रचलन करना और प्रचलित नियमों में परिवर्तन करना।

(छ) मज़दूरी और सप्ताह के काम के कुल घंटों को निर्धारित करना।

इस कानून के प्रचलित होने के दो महीने के अन्दर मिल मालिक को प्रथम भाग के सभी प्रश्नों के सम्बंध में नियम बनाकर लेबर कमिश्नर

के पास भेजना आवश्यक है। लेबर कमिश्नर को उन नियमों पर विचार करने और मजदूरों इत्यादि सभी पक्षों से राय करके तय करने का अधिकार है। जब उन नियमों के सम्बंध में अन्तिम समझौता हो जावे तब वे रजिस्ट्रार के पास रजिस्ट्री के लिए भेज दिये जाते हैं। भाग १ के सम्बन्ध में इन नियमों को स्टैंडिंग आर्डर कहते हैं। स्टैंडिंग आर्डरों के सम्बन्ध में यदि मजदूरों को कोई आपत्ति हो तो उन नियमों के प्रचलित होने के १५ दिनों के अन्दर उन्हें अपनी आपत्ति लेबर कमिश्नर के पास भेजनी चाहिए। लेबर कमिश्नर के फैसले के विरुद्ध स्टैंडिंग आर्डरों के सम्बंध में औद्योगिक अदालत या पंचायत में अपील की जा सकती है। लेकिन एक बार नियमों के अन्तिम रूप से तय हो जाने पर ६ महीने तक उनमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। यदि मालिक या मजदूरों में से कोई पक्ष उन नियमों में परिवर्तन कराना चाहे तो उसे दूसरे पक्ष तथा लेबर कमिश्नर, लेबर आफिसर, अथवा विशेष समझौता कराने वालों को नोटिस देना होगा। यदि १५ दिन के अन्दर दोनो पक्षों में कोई समझौता हो जाता है तो उस समझौते की एक प्रति लेबर कमिश्नर, लेबर आफिसर तथा रजिस्ट्रार को रजिस्ट्रेशन के लिए भेजी जानी चाहिए। यदि दोनों पक्षों में कोई समझौता न हो सके तो नोटिस देने वाला पक्ष नोटिस देने के २१ दिन के अन्दर लेबर कमिश्नर को सारे मामले का ब्योरा (लिखित) भेजेगा। जब झगड़े के सम्बन्ध में लिखित ब्योरा आजावेगा तो प्रान्तीय सरकार उस झगड़े की महत्ता के अनुसार उसे तय करने के लिए मुख्य समझौता कराने वाले, विशेष समझौता कराने वाले, अथवा समझौता बोर्ड के पास भेजेगी। समझौता कराने वालों को उस मामले की जांच करके दो महीने के अन्दर और अधिक से अधिक ४ महीने के अन्दर अपनी रिपोर्ट भेजनी चाहिए। यदि समझौता हो जावे तो समझौता कराने वालों को समझौते की रजिस्ट्री करवा देना चाहिए और यदि समझौता न हो सके तो उन्हें उस मामले की पूरी रिपोर्ट (कि समझौता क्यों नहीं हुआ) प्रान्तीय सरकार को भेजना चाहिए। प्रान्तीय

सरकार उस रिपोर्ट को जनता की जानकारी के लिए प्रकाशित कर देगी।

(४) स्टैंडिंग आर्डर के सम्बंध में अन्तिम निर्णय या समझौता होने से पूर्व अथवा समझौता हो जाने पर ६ महीने व्यतीत हो जाने के पूर्व, अथवा हड़ताल करने से पहले आवश्यक नोटिस न देने पर अथवा समझौते की व्यवस्था जो कि कानून द्वारा बनाई गई है उसके पूरा हुए बिना ही यदि मजदूर हड़ताल करदें तो वह गैर कानूनी होगी।

इसी भांति बिना स्टैंडिंग आर्डर के सम्बन्ध में समझौता हुए अथवा समझौता होने पर एक वर्ष व्यतीत हो जाने के पूर्व अथवा बिना पूर्व सूचना दिये कोई परिवर्तन करने पर अथवा समझौते की व्यवस्था को पूरा हुए बिना यदि मिल मालिक द्वारावरोध (कारखाना बंद कर दें) करें तो वह गैर कानूनी होगा।

(५) एक्ट के अनुसार जो ट्रेड यूनियन (मजदूर सभायें) सरकार से स्वीकृत हैं वे औद्योगिक झगड़ों में मजदूरों का प्रतिनिधित्व कर सकती हैं। इन ट्रेड यूनियनों को तीन समूहों में बांटा गया है।

(अ) वे ट्रेड-यूनियनें जिनके सदस्यों की संख्या उस धंधे में लगे हुए मजदूरों की पांच प्रतिशत से कम नहीं है, रजिस्ट्रार को प्रार्थना-पत्र भेज सकती हैं और वे क्वालीफाइड ट्रेड यूनियन घोषित कर दी जावेंगी।

(ब) वे ट्रेड यूनियनें जिनके सदस्यों की संख्या उस धंधे में लगे हुए मजदूरों की पांच प्रतिशत से कम नहीं है और जिसको उस धंधे के २५ प्रतिशत मालिकों या ट्रेड यूनियनों ने स्वीकार कर लिया हो, प्रार्थना पत्र दे सकती हैं और वे "रजिस्टर्ड ट्रेड" यूनियन घोषित कर दी जावेंगी।

(क) एक यूनियन जो 'रजिस्टर्ड यूनियन' है और समस्त मजदूरों की २५ प्रतिशत संख्या पिछले ६ महीने में उसकी सदस्य रही है वह 'प्रतिनिधि यूनियन' 'Representative Union,' घोषित कर दी जा सकती है।

रजिस्ट्रार को यह अधिकार है कि वह किसी यूनियन को रजिस्टर

करना अस्वीकार करदे यदि उसे यह विश्वास हो जावे कि रजिस्ट्री का प्रार्थना पत्र मजदूरों के हित में नहीं वरन मालिकों के हित में है। यह विधान इस लिए बनाया गया है कि मिल मालिकों द्वारा प्रोत्साहित "कंपनी यूनियनों" की स्थापना न हो सके। इन तीनों प्रकार की ट्रेड यूनियनों को यह अधिकार दिया गया है कि वे उन औद्योगिक झगड़ों में जिनमें कि उनके यथेष्ट सदस्यों का सम्बन्ध हो अपने प्रतिनिधि भेजें। एक्ट के अनुसार मालिक इन ट्रेड यूनियनों के प्रतिनिधियों से झगड़े के सम्बन्ध में बात चीत करने के लिए बाध्य हैं। यद्यपि एक्ट मिल मालिकों को प्रत्यक्ष रूप से इन ट्रेड यूनियनों को स्वीकार करने के लिए विवश नहीं करता परन्तु अप्रत्यक्ष रूप से मिल मालिकों को एक्ट ने ट्रेड यूनियनों को स्वीकार करने के लिए विवश कर दिया है।

(६) एक्ट के अन्दर इस बात का भी प्रबन्ध कर दिया गया है कि मिल मालिक किसी मज़दूर या कर्मचारी को ट्रेड यूनियन के कार्य में भाग लेने के कारण किसी बहाने हानि नहीं पहुँचा सकते। कोई मालिक किसी व्यक्ति को ट्रेड यूनियन में काम करने के कारण निकाल नहीं सकता और न उसकी अवनति ही कर सकता है।

इस कानून की अवहेलना करने पर कानून के अन्दर कठोर दण्ड की व्यवस्था है।

इस कानून में १९४१ में एक महत्वपूर्ण संशोधन कर दिया गया है। कुछ धन्धों में झगड़ा उठ खड़ा होने पर "पंचायत" अनिवार्य कर दी गई है और प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार दे दिया है कि यदि किसी औद्योगिक झगड़े से जनता को घोर कष्ट हो या धन्धे को बहुत हानि हो तो वह उस झगड़े को पंचायत या औद्योगिक अदालत के सुपुर्द कर दे।

भारतीय ट्रेड यूनियन एक्ट १९२६

१९२६ में बकिंगघम मिल्स में हड़ताल कराने पर उक्त मिल के

मालिकों ने मदरास लेबर यूनियन के पदाधिकारियों के विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया था और अदालत ने उनके विरुद्ध डिगरी दे दी थी। तब से ही ट्रेड यूनियन को कानूनी संरक्षण दिलवाने के लिए प्रयत्न किया गया और १६२६ में उक्त कानून बना। इस कानून का उद्देश्य ट्रेड यूनियनों को कानूनी दर्जा देना और उन्हें हड़तालों के सम्बन्ध में फौज़दारी तथा माल के जुर्म से मुक्त कर देना है। उसकी मुख्य धारायें नीचे लिखी हैं।

(१) मज़दूरों की कोई भी संस्था ट्रेड यूनियनों के रजिस्ट्रार को रजिस्ट्री करने के लिए प्रार्थना-पत्र भेज सकती है और यदि रजिस्ट्रार को इस बात का संतोष हो जावे कि वह संस्था ट्रेड यूनियन का कार्य करने के लिए बनाई गई है तो वह उसकी रजिस्ट्री करने के उपरान्त उसे एक रजिस्ट्री का प्रमाण पत्र दे देगा।

(२) ट्रेड यूनियन के साधारण कोष में से रूपया केवल ट्रेड यूनियन के वास्तविक कार्यों के लिए ही व्यय किया जा सकता है। अन्य कार्यों के लिए साधारण कोष में से धन व्यय नहीं किया जा सकता।

(३) ट्रेड यूनियन राजनीतिक कार्यों के लिए एक विशेष राजनीतिक कोष स्थापित कर सकती है और अपने सदस्यों से उसके लिए चंदा ले सकती है। किन्तु यदि कोई सदस्य उस राजनीतिक कोष में चंदा न देना चाहे तो उसको ट्रेड यूनियन की सदस्यता से हटाया नही जा सकता।

(४) जो ट्रेड यूनियन रजिस्टर्ड हैं उनके विरुद्ध हड़ताल के सम्बन्ध में कोई मुकदमा नहीं चलाया जा सकता।

(५) कम से कम ट्रेड यूनियन के आधे पदाधिकारी स्वयं मजदूर होने चाहिये जो कि उस धंधे में कार्य करते हों जिसका सम्बन्ध ट्रेड यूनियन से है। यह व्यवस्था इस लिए की गई है कि जिससे बाहर के व्यक्ति ट्रेड यूनियन को न हथिया लें।

(६) प्रत्येक ट्रेड यूनियन को अपना हिसाब रजिस्ट्रार के पास प्रतिवर्ष भेजना पड़ता है। उन्हें पदाधिकारियों में यदि कोई परिवर्तन हो

अथवा नियमों में कोई परिवर्तन हो तो उसकी सूचना भी देनी होती है।

इस एक्ट के बन जाने से ट्रेड यूनियनों का कानूनी दर्जा बहुत ऊँचा हो गया है। बम्बई हड़ताल कानून ने तो ट्रेड यूनियनों को और भी अधिक महत्व प्रदान कर दिया है। बम्बई हड़ताल कानून ट्रेड यूनियनों के स्वाभाविक विकास में बहुत सहायक सिद्ध हो रहा है।

मज़दूरों की सुख सुविधा सम्बन्धी कानून

फैक्टरी एक्ट में सफाई, स्वास्थ्य, सुरक्षा इत्यादि के सम्बन्ध में जो विधान कर दिया गया है, तथा जो मजदूरों की सुख-सुविधा के कार्य स्वतंत्र रूप से मिल मालिक अपने कारखानों में करते हैं, उनको छोड़कर मजदूरों की सुख सुविधा के सम्बन्ध में यदि कोई क़ानून है तो वह मजदूर स्त्रियों के बच्चा उत्पन्न होने के समय उन्हें सवेतन छुट्टी देने के सम्बन्ध में है। १९२९ में सर्व प्रथम बम्बई में मैटरनिटी बेनीफिट एक्ट बना (जो १९३४ में संशोधित हुआ) इसके उपरान्त क्रमशः मध्यप्रांत (१९३०) मद्रास (१९३५) देहली (१९३६) संयुक्तप्रांत (१९३८) बंगाल (१९३९) आसाम (१९४०) केन्द्रीय सरकार का कोयले की खानों सम्बन्धी एक्ट (Mines Maternity Benefit Act 1941) बनाये गये। केन्द्रीय सरकार का खानों सम्बन्धी मातृत्व लाभ एक्ट अभी केवल कोयले की खानों में लागू है।

इन कानूनों की मुख्य मुख्य बातें लगभग एकसी हैं। इन कानूनों के अनुसार प्रत्येक मालिक को स्त्री मजदूर को जिसने फैक्टरी या खान में लगातार एक निश्चित समय तक काम कर लिया है (अधिकतर प्रांतों में यह अवधि ९ महिने की है) बच्चा होने से पहले और बाद को एक निश्चित अवधि (४ सप्ताह पहले और ४ सप्ताह बाद को) की छुट्टी देनी होगी और छुट्टी के समय कुछ अलाउन्स देना होगा। कितनी अवधि तक लगातार काम करने पर स्त्री मजदूर छुट्टी अलाउन्स की हक़दार हो जावेगी, छुट्टी बच्चा होने से पहले और बाद कुल मिलाकर

कितने सप्ताह की होगी और छुट्टी के समय में कितना अलाउन्स मिलेगा, यह भिन्न भिन्न एक्टों में भिन्न है, परन्तु मूल सिद्धांत सभी में एक ही है। नीचे भिन्न भिन्न प्रांतों के कानूनों का ब्योरा दिया जाता है।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में मातृत्व लाभ कानून

नाम प्रांत	अवधि जिसमें लगातार काम करने पर स्त्री मज़दूर अलाउंस और छुट्टी की अधिकारी हो जाती है	मातृत्व लाभ पाने का अधिक से अधिक समय	मातृत्व लाभ की दर
	महीने	सप्ताह	
१ बम्बई ...	६	८	८ आना प्रति दिन या औसत दैनिक मजदूरी जो भी कम हो
२ सिंध ...	६	८	
३ मध्यप्रांत बरार ...	६	८	ऊपर के अनुसार
४ अजमेर मेरवाड़ा ...	१२	६	,, ,,
५ आसाम ...	६	८	,, ,,
६ मद्रास ...	६	७	८ आना प्रतिदिन
७ देहली ...	६	८	ऊपर के अनुसार
८ संयुक्तप्रांत	६	८	८ आना प्रतिदिन या औसत दैनिक मजदूरी जो भी अधिक हो।
९ बंगाल ...	६	८	ऊपर के अनुसार

मद्रास और बंगाल मातृत्व लाभ कानूनों में एक विशेषता यह है कि उनमें इस बात का भी समावेश कर दिया गया है कि यदि मालिक स्त्री मजदूर को मातृत्व लाभ के देने से बचने के लिए नौकरी से हटा दे तो उसको दण्ड दिया जावे। मद्रास कानून में यह विधान किया गया है कि मालिक बच्चा होने के ३ महीने पहले स्त्री मजदूर को नौकरी से हटाने

का बिना समुचित कारण के नोटिस देता है तो उससे स्त्री मज़दूर मातृत्व लाभ से वंचित नहीं हो सकती। उसी तरह बंगाल कानून में यह विधान है कि यदि मालिक बच्चा पैदा होने के ६ महीने पूर्व स्त्री मज़दूर को नौकरी से हटाने का बिना समुचित कारण के नोटिस देता है तो उससे स्त्री मजदूर को मातृत्व लाभ से वंचित नहीं किया जा सकता।

मजदूरों सम्बंधी फुटकर कानून

ऊपर दिये हुए कानूनों के अतिरिक्त केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों ने मजदूरों के लिये रहने के मकानों की सुविधा प्रदान करने तथा उन्हें कर्जदारी से बचाने के लिए कुछ कानून बनाये हैं। उनमें से मुख्य कानून नीचे लिखे हैं:—

(1) Land Acquisition Act 1933

इस कानून के अनुसार कोई भी कारखाना या कारबार जिसमें १०० से अधिक मनुष्य काम करते हों, वह उन मजदूरों को रहने के लिये मकान बनवाने तथा अन्य सुविधाये प्रदान करने के लिए जमीन उचित मूल्य पर कानून द्वारा प्राप्त कर सकता है। इस सम्बंध में यह ध्यान रखने की बात है कि बड़े बड़े औद्योगिक केन्द्रों में जो मिल मालिक मजदूरों के लिए मकान बनवाना भी चाहते थे, उन्हें जमीन ही प्राप्त नहीं होती थी। उसी कठिनाई को दूर करने लिए यह कानून बनाया गया है।

(2) Amendment of the Civil Procedure Code Act 1937

इस कानून का उद्देश्य छोटे वेतन के कर्मचारियों के वेतन की कुर्की को रोकना और उन मजदूरों को ऋण के सम्बंध में कुछ संरक्षण प्रदान करना है। इस कानून के अनुसार किसी भी वर्कमैन का वेतन १०० रु. मासिक से अधिक न हो, कुर्क (attach) नहीं कराया जासकता। सरकारी नौकरों, लोकल बोर्ड के कर्मचारियों तथा रेलवे कर्मचारियों के सम्बंध में यह विधान है कि जो १०० रु. से अधिक भी पाते है उन्हे भी

संरक्षण प्रदान किया गया है। अर्थात जो १०० रु मासिक से अधिक पाते हैं उनके पहले १०० रु तथा शेष वेतन का आधा कुर्की से मुक्त होता है। इसके अतिरिक्त कानून में इस बात का भी विधान है कि एक डिगरी के अन्तर्गत मजदूर के वेतन की कुर्की कुल मिलाकर २४ महीने से अधिक नहीं हो सकती और कुर्की की अधिकतम अवधि ३६ महीने से अधिक की नहीं हो सकती ।

दूसरे शब्दों में यह कानून उन काम करने वालों के वेतन की कुर्की की अवधि को सीमित कर देता है जिनका वेतन अधिक नही है ।

मध्यप्रान्तीय मजदूर ऋण मोचन सम्बंधी कानून (१९३६)

मध्यप्रान्त के कानून का मुख्य उद्देश उन मजदूरों के ऋण को घटाना है, जिनका वेतन ५० रु. मासिक से अधिक नहीं है। कोई भी मजदूर जिसका वेतन ५० रु मासिक से अधिक नहीं हैं, यदि उसकी सम्पत्ति (assets) और तीन महीने के वेतन से ऋण अधिक हो तो वह उस कानून को लागू करने के लिए प्रार्थना पत्र दे सकता हैं । तदुपरान्त अदालत उसके ऋण की जांच करेगी और उसके ऋण को घटा कर इतना कम कर देगी जितना कि वह देने की क्षमता रखता है। ऋण को घटाने में सूद के सम्बंध में दामदुपट का नियम व्यवहार में लाया जावेगा। मजदूर की ऋण चुकाने की क्षमता क्या होगी, उसका निर्णय उसकी मजदूरी तथा उसके आश्रितों की संख्या को ध्यान में रख कर निश्चित की जायगी। जो रकम कि उसको चुकानी होगी कुल रकम को $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{3}$ तक हो सकती है और ३६ महीनों से अधिक चुकाने का समय निर्धारित नहीं किया जा सकता ।

बंगाल मजदूर संरक्षण कानून १९३४

इस कानून का उद्देश्य यह है कि मजदूरों को उनके महाजन मारपीट और धमका न सकें। यह कलकत्ता शहर में लागू है । इस कानून के

अन्तर्गत इस बात का विधान है कि यदि कोई व्यक्ति किसी फैक्टरी, खान, रेलवे स्टेशन, या बंदरगाह में इस उद्देश्य से घूमता हो कि वह अपना रुपया मजदूरों से वसूल करेगा तो उसको ६ महीने तक की सजा हो सकती है। यह कानून १९४० में संशोधित हो गया है। अब और भी कड़ाई के साथ महाजन का उस स्थान का घेरना वर्जित कर दिया गया है, जहां कि मजदूर को उसका वेतन मिलता है। साथ ही रेल, डाक, तार, बिजली इत्यादि जन-उपयोगी धंधों और समुद्री जहाजों पर काम करने वालों को भी इस कानून के अन्तर्गत संरक्षण प्रदान कर दिया गया है।

पंजाब कर्जदारी कानून (१९३४)

पंजाब कानून में एक ऋणी व्यक्ति (judgment debtor) जिसके ऋण के सम्बंध में न्यायालय ने फैसला दे दिया है, ऋण को चुकाने में असमर्थ होने पर कैद नहीं किया जा सकता। वह केवल उसी दशा में कैद किया जा सकता है कि जब वह उस ऋण को जो कि उसकी चुकाने की क्षमता के अन्दर है, अपनी उस सम्पत्ति को बेचकर चुकाने से इनकार करता है जो कि कुर्क हो सकती है।

केन्द्रीय सिविल प्रोसीजोर एक्ट संशोधन कानून १९३६

इस कानून के अंतर्गत ऋणी व्यक्ति को उस समय तक कैद नहीं किया जा सकता, जब तक यह प्रमाणित न हो कि वह अपने स्थान को छोड़ कर अदालत के क्षेत्र के बाहर जाना चाहता है, अथवा वह बेईमानी से अपनी सम्पत्ति को किसी दूसरे के नाम करता है; जब कि ऋणी व्यक्ति उस सम्पत्ति को बेच कर ऋण को चुकाने की क्षमता रखता है, जो कि कुर्क की जा सकती है, जिससे कि अदालत का फैसला कार्य रूप में परिणित न हो सके।

केंद्रीय कानून केवल उद्योग धंधों में काम करने वाले मजदूरों के ही लिये लागू नहीं है, वरन उन सभी कर्जदारों के लिए लागू होता है जिनका न्यायालय से फैसला हो चुका है।

देशी राज्यों के मजदूर कानून

ब्रिटिश भारत में मजदूर सम्बन्धी कानून के बनने से देशी राज्यों पर भी प्रभाव पड़ा और कुछ देशी राज्यों ने मजदूर कानून बनाये हैं। अधिकांश देशी राज्यों में आज भी मजदूर कानून नहीं है। ध्यान में रखने की बात यह है कि ब्रिटिश भारत में जब से राष्ट्रीय आंदोलन प्रबल हुआ और उसके फलस्वरूप मज़दूरों में भी वर्ग चैतन्य का उदय हुआ, तब से क्रमशः पूंजीपति अपनी पूंजी ब्रिटिश भारत में न लगा कर देशी राज्यों में लगा रहे हैं। देशी राज्यों में आय कर तथा अन्य कर नहीं है। मजदूर कानून या तो है ही नहीं और यदि है भी तो उनका कठोरता से पालन नहीं होता। देशी राज्यों में मजदूर आंदोलन नाम मात्र को भी नहीं है और यदि कहीं मजदूर संगठन हैं भी तो वे अशक्त हैं क्योंकि नरेश मजदूरों के संगठन को कभी भी सहन नहीं करते। पूंजीपति बहुधा नरेश को प्रति वर्ष कुछ रकम देते हैं या कम्पनियों में उनको हिस्से दे देते हैं। राज्य के मंत्री इत्यादि उनके डायरेक्टरों में होते हैं। ऐसी दशा में यदि राज्य में मजदूर एक्ट हों भी तो उनका ठीक से कभी पालन नहीं होता। यही सब कारण हैं कि पिछले बीस वर्षों में देशी राज्यों में बड़ी तेजी से फैक्टरियां स्थापित हुई हैं और आज भी हो रही हैं। उनमें कुछ देशी राज्यों ने ब्रिटिश भारत के कानूनों के आधार पर मजदूर कानून बनाये हैं:—उनमें मुख्य राज्य नीचे लिखे हैं:—मैसूर, बड़ौदा, हैदराबाद, इंदौर, त्रावनकोर और कोचीन। इनमें अधिकांश रियासतों के कानूनों में ६० घंटे काम की आज्ञा दी हुई है।

१९३० में भारत सरकार ने देशी राज्यों के सम्बन्ध में एक जांच करवाई थी। उस समय कुल ४८ राज्यों में फैक्टरियां, बाग, खानें, या रेलवे या बंदरगाह थे किन्तु केवल २२ में नाम मात्र के मजदूर कानून बने हुए थे। १९३० के उपरान्त देशी राज्यों में बहुत तेजी से कारखानों की स्थापना हुई है। अबतो छोटे से छोटे राज्यों में भी जोरों से फैक्टरियों

की स्थापना का काम चल रहा है और लगभग सभी राज्यों में जहां रेल कारखाने खुलते जा रहे हैं। यद्यपि इन वर्षों में मजदूर कानून भी बहुत से राज्यों में बने हैं परन्तु फिर भी अधिकांश देशी राज्यों में कोई मजदूर कानून नहीं हैं। जहां मजदूर कानून हैं भी वे ब्रिटिश भारत के कानूनों की तुलना में बहुत ही पीछे हैं। फिर उन कानूनों का भी ठीक तरह से पालन नहीं होता। अस्तु यह स्पष्ट है कि देशी राज्यों में मजदूरों की दशा और भी दयनीय है।

उपसंहार

द्वितीय महायुद्ध (१८३८-४५) में कुछ कारखानों में जहां युद्धोपयोगी वस्तुओं का निर्माण होता था अस्थायी रूप से काम के घंटों को बढ़ा कर ६० प्रति सप्ताह कर दिया गया था, कोयले की खानों में स्त्रियों को पृथ्वी के अन्दर काम करने की आज्ञा देदी गई किन्तु युद्ध जनित संकट टलते ही, यह अस्थायी छूट फिर वापस ले ली गई।

यही नहीं युद्ध के उपरान्त जहां देश की औद्योगिक उन्नति की अनेक योजनायें उपस्थित की जारही हैं वहां मजदूर कानूनों में भी आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने की चेष्टा की जारही है। १९४५ के नवम्बर दिसम्बर मास में भारत सरकार के तत्कालीन मजदूर सदस्य डाक्टर अम्बेडकर की अध्यक्षता में जो सरकार, मिल मालिकों तथा मजदूरों के प्रतिनिधियों का त्रिदलीय सम्मेलन हुआ था, उसमें काम के घंटों को ५४ से घटा कर ४८ करने, न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने, तथा अन्य कानून बनाने की बात तय हुई थी। अस्तु यह आशा है कि नवीन फैक्टरी एक्ट में काम के घंटे घटा कर ४८ कर दिये जावेंगे तथा न्यूनतम मजदूरी कानून अवश्य बन जावेगा।

अस्तु जहां तक बाहर से देखने से ज्ञात होता है, भारतीय मजदूर-कानून अन्य देशों की तुलना में पीछे नहीं हैं। परन्तु केवल कानून बन जाने से ही मजदूरों को पूरा संरक्षण मिल जावे यह आवश्यक नहीं है।

कानूनों को पाबंदी कैसी होती है, इस पर मजदूरों की दशा बहुत कुछ निर्भर रहती है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि भारत में मजदूर-कानूनों की पाबंदी कठोरता के साथ नहीं होती। पहले तो भारतीय मजदूर-पूर्ण रूप से संगठित नहीं हैं, इस कारण फैक्टरियों के अन्दर कानूनों की अवहेलना रोकने का साधन ही निर्बल है। दूसरे, सरकार द्वारा मनोनीत फैक्टरी इन्स्पेक्टर इतने कम हैं कि वे फैक्टरियों का भली-भांति निरीक्षण नहीं कर पाते। वर्ष में एक बार या दो बार निरीक्षण होने से कानून की ठीक पाबंदी होना कठिन है। जो कारखाने छोटी-छोटी जगहों और कस्बों में हैं, वहां फैक्टरी इन्स्पेक्टर मिल-मैनेजर का अतिथि होता है, उसकी सवारी का उपयोग करता है, फिर वह फैक्टरी का चलता-फिरता निरीक्षण करता है। देशीराज्यों में तो निरीक्षण केवल एक दिखावा मात्र होता है। तीसरे, यदि कोई गैर कानूनी बात पकड़ी भी गई तो भी बहुत हल्का दण्ड दिया जाता है। बहुधा तो चेतावनी देकर छोड़ दिया जाता है। लेबर-कमीशन तक को यह बात स्वीकार करनी पड़ी कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में कानूनों की पाबंदी एक-सी नहीं होती। बिहार, उड़ीसा और आसाम में अत्यधिक नरमी बरती जाती है। यही नहीं, अधिकांश प्रान्तों में बार-बार एक ही जुर्म करने पर भी नाम मात्र का जुर्माना होता है।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक स्थान में कुछ गैर-सरकारी फैक्टरी निरीक्षक नियुक्त किये जावें और उन्हें फैक्टरियों के निरीक्षण का अधिकार दिया जावे। साथ ही, कानून की अवहेलना होने पर कड़ाई से दण्ड दिया जाय। तभी मजदूरों को उचित संरक्षण मिल सकता है।

इस सम्बन्ध में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है कि आगे चल कर भिन्न-भिन्न प्रान्तों और देशीराज्यों में यदि मजदूर-कानूनों में अधिक भिन्नता हो गई तो वह कानून की प्रगति को रोक देगी। उदाहरण के लिए यदि एक प्रान्त को सरकार अधिक प्रगतिशील है और पड़ोसी देशी-राज्य अथवा प्रान्त के मजदूर-कानून पिछड़े हुए हैं तो प्रगतिशील प्रान्त की औद्योगिक उन्नति रुक सकती है। वहाँ की पूजी अन्य स्थानों पर

जाकर लगेगी। ऐसी दशा में दो प्रान्तों या देशी राज्यों के मजदूरों की दशा में बहुत भेद हो जावेगा, जो कि उचित न होगा।

एक और भी समस्या है, जिसकी ओर अभी तक किसी ने भी ध्यान नहीं दिया है। भारत में फैक्टरियों के अन्दर काम करने वालों की संख्या बहुत कम है। खेती के मजदूरों, छोटे-छोटे काम धंधों में कार्य करने वालों की संख्या बहुत ही अधिक है, किन्तु अभी तक उनको कोई कानूनी संरक्षण नहीं मिला है।

सन् १९४६ के कुछ नये कानून

काम के घंटे

१९४६ में मजदूरों से सम्बन्धित कई कानून पास हुए, उनमें सब से महत्वपूर्ण १९३४ के फैक्टरी एक्ट का संशोधन था। इस कानून के अनुसार कारखानों में काम के घंटों को ५४ प्रति सप्ताह से घटा कर ४८ कर दिया गया और मौसमी कारखानों में काम के घंटों को ६० से घटा कर ५० कर दिया। किन्तु प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया कि यदि वे चाहें तो किसी धंधे को इस नवीन कानून से मुक्त कर सकती हैं। अर्थात् यदि प्रान्तीय सरकार चाहे तो किसी धंधे विशेष को पूर्ववत् ५४ घंटे प्रति सप्ताह काम करने की अनुमति दे सकती है। इस कानून की एक अन्य धारा से ओवरटाइम (निर्धारित काम के घंटों से अधिक) काम लेने पर दुगने रेट से मजदूरी देने की व्यवस्था की गई है। अभी तक यदि ओवरटाइम काम लिया जावे तो केवल ड्योढ़ी दर से मजदूरी दी जाती थी। किन्तु अब ओवरटाइम काम करने पर मजदूर को दुगने रेट से मजदूरी देनी होगी। कानून का उद्देश्य यह है कि ओवरटाइम काम न लिया जावे। यह कानून १ अगस्त १९४६ से लगा दिया गया।

सवेतन छुट्टी

उससे पूर्व ही फैक्टरी एक्ट का १९४५ में संशोधन हो गया था,

जिसको १ जनवरी १९४६ में लागू किया गया। इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दिया गया कि वे मजदूरों को सवेतन छुट्टी देने के सम्बन्ध में नियम बनावें। इस कानून के अन्तर्गत प्रांतीय सरकारों ने नियम बनाकर प्रत्येक कारखाने में मजदूरों को वर्ष में १० दिन की छुट्टी देने का नियम बना दिया है। एक वर्ष में मजदूरों को १० दिन की सवेतन छुट्टी मिलती है, किन्तु जिस मजदूर ने कारखाने में एक वर्ष पूरा नहीं किया, उस मजदूर को यह अधिकार नहीं है अर्थात् उसे सवेतन छुट्टी नहीं मिल सकती। दूसरे शब्दों में नये मजदूर जब तक एक वर्ष पूरा न कर लें, तब तक वे दस दिन की सवेतन छुट्टी के हकदार नहीं होते। पुराने मजदूरों के सम्बन्ध में भी यह शर्त है कि यदि वे वर्ष में ९० दिन से अधिक गैरहाजिर होते हैं तो उनको १० दिन की वेतन सहित छुट्टी नहीं मिलती।

न्यूनतम मजदूरी बिल

भारत सरकार ने जनवरी १९४६ में न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने के उद्देश्य से एक बिल तैयार किया, जो कि मजदूर संघों तथा मिल-मालिक संघों के पास उनकी सम्मति के लिए भेजा गया है। इस बिल के अनुसार सभी उद्योग-धंधों, व्यापार तथा खेती में काम करने वालों की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जावेगी। कानून बन जाने के उपरान्त दो वर्ष के अन्दर प्रांतीय सरकारें प्रत्येक धंधे और खेती में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देंगी। न्यूनतम मजदूरी कितनी निर्धारित होगी, इसका निर्णय करने के पूर्व प्रांतीय सरकार कमेटियाँ बिठावेगी जिनमें मजदूरों तथा मिल-मालिकों के बराबर प्रतिनिधि होंगे। ऐसी आशा है कि शीघ्र ही भारत में न्यूनतम मजदूरी कानून बन जावेगा।

भारत सरकार की पंचवर्षीय योजना

१९४६ के अन्त में भारत-सरकार ने मजदूरों की दशा में सुधार करने की दृष्टि से एक पंचवर्षीय योजना तैयार की और उसको मिल

मालिकों तथा श्रमजीवी समस्याओं में रुचि रखने वालों के पास सम्मति के लिए भेजा। इस पंचवर्षीय योजना के तैयार करने में भारत सरकार को १६३१ के शाही लेबर कमीशन की मजदूरों के स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिये की गई सिफारिशों तथा 'रेज कमेटी' की रिपोर्ट से विशेष प्रेरणा मिली थी। १६४४ में भारत सरकार ने उद्योग-धंधों में लगे हुए मजदूरों की मजदूरी, उनकी नौकरी की शर्तें तथा रहने के मकानों की समस्या की जांच करने के लिए कमेटी बिठाई थी। इस कमेटी ने ३८ धंधों की जांच की और मजदूरों से सम्बन्धित बहुत ही उपयोगी और मूल्यवान सामग्री इकट्ठी की। कमेटी ने नीचे लिखे दोष पाये, जिनको दूर करना नितान्त आवश्यक है। १. अधिकांश धंधों में मजदूरी की दर बहुत नीची है। २. धंधों में नौकरी की शर्तों तथा मजदूरों की दर का कोई एक मापदण्ड [स्टैन्डर्ड] निर्धारित नहीं है। ३. मंहगाई के भत्ते का अलाउन्स भी एक समान सब जगह और सब धंधों में नहीं दिया जाता। ४. मजदूर भरती करने, उनकी उन्नति तथा उनकी बरखास्तगी की पद्धति बहुत ही दोषपूर्ण है, जिससे घूसखोरी को प्रोत्साहन मिलता है और मजदूरों का शोषण होता है। ५. जिस दशा में मजदूरों को कारखानों में काम करना पड़ता है, वह अत्यन्त अवांछनीय है और मजदूरों की कार्यक्षमता तथा उनके स्वास्थ्य को नष्ट करती है। इसका मुख्य कारण यह है कि फैक्टरी कानूनों की अवहेलना होती है और उनके अन्तर्गत कारखानों का ठीक निरीक्षण तथा देखभाल नहीं होती। ६. जब मजदूर बीमार होते हैं तो उनकी चिकित्सा का उचित प्रबंध नहीं है और न उनको बीमारी के भत्ते देने की ही व्यवस्था है। ७. रहने के मकानों की समस्या अत्यंत विकट है, मजदूरों को नारकीय जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़ता है।

कमेटी की उक्त रिपोर्ट ने भारत सरकार के ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित किया और उसने मजदूरों की दशा में सुधार करने के उद्देश्य से उक्त पंचवर्षीय योजना तैयार की।

इस पंचवर्षीय योजना में मजदूरों की सभी प्रमुख समस्याओं पर विचार किया गया है,—अर्थात् मजदूरी, काम के घंटे, फैक्टरियों में काम किस प्रकार होता है, वहां की दशा कैसी है, रहने के मकानों की समस्या, चिकित्सा, सामाजिक सुरक्षा (Social Security) सम्बन्धी उपाय, मजदूरों और मालिकों का सम्बन्ध इत्यादि। पंचवर्षीय योजना में केवल कारखानों में काम करने वाले मजदूरों के बारे में ही विचार नहीं किया गया है; वरन् खेती, बागों (चाय इत्यादि के) व्यापारिक फर्मों तथा इमारतें बनाने के काम में लगे हुए मजदूरों के बारे में भी विचार किया गया है। उक्त योजना में मजदूरों से सम्बन्धित सभी तथ्यों, आँकड़ों को इकट्ठा करने तथा प्रकाशित करने की व्यवस्था है। इस योजना के अन्तर्गत इन्डियन लेबर कान्फरेन्स, स्टैंडिंग लेबर कमेटियां और कोयले, जूट, सूतीवस्त्र चाय के बागों तथा इन्जिनियरिंग धंधों के लिए इन्डस्ट्रियल कमेटियां बिठाई जावेंगी। इन संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य मजदूर समस्याओं का अध्ययन करना और उनकी दशा को किस प्रकार सुधारा जा सकता है. इस सम्बन्ध में सुझाव उपस्थित करना है।

न्यूनतम मजदूरी बिल (१९४६)

१९४६ में जब मजदूर वर्ग अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा और मंहगाई के फलस्वरूप देश में हड़तालों का तांता-सा लग गया, तब भारत सरकार ने अपनी पूर्व घोषणा के अनुसार एक न्यूनतम मजदूरी बिल तैयार किया और उसको मिल मालिकों के संघों के पास भेजा। इस बिल के अन्तर्गत सभी उद्योग-धंधों, व्यापार तथा कृषि में भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था है। इस बिल में इस का विधान है कि भारत सरकार द्वारा न्यूनतम मज़दूरी कानून बना दिये जाने पर प्रान्तीय सरकारें धंधों तथा खेती में काम करने वाले मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दे। कितनी मजदूरी निर्धारित की जावे, इसका निर्णय करने को प्रान्तीय सरकारें कमेटियां बिठावेंगी, जिसमें आधे सदस्य

मिल-मालिकों के तथा आधे सदस्य मजदूरों के प्रतिनिधि होंगे।

यह बिल एसेम्बली में उपस्थित कर दिया गया है, किन्तु उस पर विचार नहीं हो सका है। आशा है कि शीघ्र ही भारत में सभी धंधों में न्यूनतम मजदूरी कानून लागू हो जावेगा।

हड़ताल सम्बन्धी बिल

यह तो पहले ही कह चुके हैं कि बम्बई में हड़ताल सम्बन्धी कानून १९३८ में बना था। १९४६ में कानून का संशोधन किया गया और वह केवल वस्त्र व्यवसाय में ही नहीं, वरन् सभी धन्धों में लागू कर दिया गया।

बाद को मध्यप्रान्त, संयुक्तप्रान्त और मद्रास की प्रान्तीय सरकारों ने बम्बई के सदृश हड़ताल सम्बन्धी कानून बनाने की इच्छा प्रगट की। मध्यप्रान्त ने तो एक कानून बना भी दिया। किन्तु भारत सरकार ने जब बम्बई के सदृश एक हड़ताल सम्बन्धी कानून बनाने की घोषणा की तो संयुक्तप्रान्त तथा मद्रास ने अपने बिल वापस ले लिए।

भारत सरकार का हड़ताल सम्बन्धी बिल (१९४६) बम्बई हड़ताल सम्बन्धी कानून पर आश्रित है। इस बिल पर एसेम्बली में यथेष्ट बहस होने के उपरान्त उसे सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया गया है और आशा है कि वह शीघ्र ही एक्ट के रूप में आ जावेगा।

इस कानून के अनुसार दो नवीन संस्थाओं की स्थापना की जावेगी। इन संस्थाओं का कार्य हड़तालों को रोकना और मिल-मालिकों तथा मजदूरों के झगड़ों को निपटाना है। पहली संस्था 'वर्क्स कमेटी' होगी, जिसमें मजदूरों और मिल-मालिकों के प्रतिनिधि होंगे। दूसरी संस्था का नाम 'औद्योगिक ट्रिब्यूनल' है। इसके सदस्यों की योग्यता हाई-कोर्ट के जजों की योग्यता के समान होगी। इस कानून के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी झगड़े को ट्रिब्यूनल के पास फैसले के लिए भेज दे अथवा पंच नियुक्त कर दे और उनके फैसले को दोनों पक्षों पर लागू कर दे। 'वर्क्स कमेटियों' का कर्तव्य यह होगा

कि जो भी कोई नवीन परिवर्तन कारखाने में होगा अथवा यदि मज़दूरों की कोई मांग होगी तो सबसे पहले वह 'वर्क्स कमेटी' के सामने उपस्थित की जावेगी। यदि वहां कोई समझौता न हो सकेगा तो फिर सरकार उस झगड़े को पंच के सुपुर्द कर देगी अथवा ट्रिब्यूनल को फैसले के लिये दे देगी, तब तक दोनों पक्ष क्रमशः द्वारावरोध अथवा हड़ताल नहीं कर सकेंगे।

मजदूर संघों की स्वीकृति सम्बन्धी बिल (Trade Union Recognition Bill)

१६४६ में भारत सरकार ने ट्रेड यूनियनों की स्वीकृति के संबंध में एक बिल एसेम्बली में उपस्थित किया था। जब बिल पर बहस हो रही थी तो कुछ सदस्यों ने जातिगत ट्रेड यूनियनों को स्वीकृति के प्रश्न को भी उठाया। परन्तु अधिकांश धारा-सभा के सदस्यों का मत था कि जातिगत मजदूर संघ मजदूरों के हितों के विरुद्ध होंगे। अस्तु, हिन्दू अथवा मुस्लिम मजदूर संघों को स्वीकार न किया जावे। यह बिल सिलेक्ट कमेटी को विचार के लिए दे दिया गया है और आशा है कि शीघ्र ही कानून बन जावेगा।

कैन्टीन बिल

भारत सरकार ने एक बिल इस आशय का केन्द्रीय धारा-सभा में उपस्थित किया है कि जिस कारखाने में २५० मजदूरों से अधिक काम करते हों, वहां कैन्टीन अवश्य स्थापित किये जावें। साथ ही, इस बिल के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को यह भी अधिकार दे दिया गया है कि वे कैन्टीन किस प्रकार के हों, उस सम्बन्ध में भी नियम बना दें।

मजदूर राजकीय बीमा कानून (Workmen's State Insurance Act 1946)

१६४६ में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कानून बनाया गया, जिसके लिए

तीन वर्षों से तैयारियां हो रही थीं । मजदूरों के स्वास्थ्य के बीमे के सम्बन्ध में जो योजना थी, उसको कार्यरूप में परिणत करने के लिए यह एक्ट पास किया गया है । मजदूरों के इस 'स्वास्थ्य बीमा एक्ट' के अन्तर्गत सभी स्थायी अर्थात् वर्ष भर चलने वाली फैक्टरियों में काम करने वाले कर्मचारी—फिर चाहे वे शारीरिक परिश्रम करते हों अथवा नहीं, चाहे वे स्थायी मजदूर हों अथवा थोड़े दिनों के लिए रक्खे गये हों—बीमा के लाभ के अधिकारी हैं । मौसमी कारखानों को इस कानून से मुक्त कर दिया गया है । इस बीमा कानून के अन्तर्गत यदि कोई मजदूर बीमार हो जावे, मजदूर-स्त्री के बच्चा उत्पन्न हो और काम करते समय मजदूर को चोट लग जावे तो मजदूर को कुछ अलाउन्स दिया जावेगा । जिन मजदूरों का स्वास्थ्य बीमा हो गया है, उनके बीमार पड़ने पर सरकार द्वारा स्थापित विशेष अस्पतालों में उनकी चिकित्सा कराई जावेगी । एक वर्क्समैन इन्श्योरन्स कोर्ट स्थापित की जावेगी, जो कि बीमा सम्बन्धी दावों का फैसला करेगी । इसका प्रबन्ध एक कारपोरेशन के सुपुर्द किया जावेगा, जिसका निर्माण केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा द्वारा होगा । कारपोरेशन का कार्य एक केन्द्रीय बोर्ड करेगा और स्वास्थ्य-कोष (Health Fund) उसके अधिकार में रहेगा । यह केन्द्रीय बोर्ड उन मजदूरों को, जिनके दावों को स्वीकार कर लिया जावेगा, इस स्वास्थ्य-कोष में से निर्धारित अलाउन्स देगा । इस कार्य के लिए एक कोष (फंड) स्थापित होगा, जिसमें मिल-मालिक और मजदूर दोनों ही धन देंगे । जिन मजदूरों को दस आना प्रति दिन से कम मिलता है, उनको इस कोष में कुछ देना न होगा । इस कानून के अनुसार यद्यपि केन्द्रीय बोर्ड प्रान्तीय सरकारों और केन्द्रीय सरकार से दान स्वीकार कर सकेगा, किन्तु सरकार भी नियमित रूप से इस कोष में अपना हिस्सा देगी, ऐसा कोई विधान नहीं है ।

फैक्टरी कानून का संशोधन और परिवर्धन

अभी कुछ दिन हुए भारत सरकार ने वर्तमान फैक्टरी एक्ट में संशोधन और परिवर्द्धन करने के उद्देश्य से जनता की सूचनार्थ एक नया फैक्टरी बिल प्रकाशित किया है, जो शीघ्र ही कानून बनकर भारतीय कारखानों पर लागू होगा। भविष्य में भारतीय कारखानों का नियंत्रण इसी कानून के अन्तर्गत होता रहेगा, इस कारण उसके संबंध में भारतीय मजदूरों की समस्याओं का अध्ययन करने वाले पाठकों तथा मजदूर कार्यकर्त्ताओं को पूरी जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है। इसी उद्देश्य से हम उसकी मुख्य धाराओं का यहां विवेचन करेंगे। यह कानून संभवतः एक एप्रिल १९४८ से लागू होगा, जो १९३४ के पुराने कानून को रद्द कर देगा। नये फैक्टरी कानून में नीचे लिखे विशेष परिवर्तन किये गये हैं।

पहला परिवर्तन तो फैक्टरी की भाषा में ही किया गया है। अभी तक फैक्टरी वह स्थान माना जाता था कि जिसमें यांत्रिक शक्ति का उपयोग किया जावे और जहां २० या उससे अधिक व्यक्ति काम करते हों। इस नये कानून के अनुसार उन स्थानों को भी अब फैक्टरी घोषित कर दिया जावेगा जहां यांत्रिक शक्ति का उपयोग न होता हो किन्तु २० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते हों। इसका दूसरे शब्दों में यह अर्थ हुआ कि बहुत से कारबार फैक्टरियों की श्रेणी में आ जावेंगे और उनके मजदूरों को फैक्टरी कानून का संरक्षण प्राप्त हो जावेगा।

अभी तक अनियंत्रित धन्धों (unregulated industries) में फैक्टरी एक्ट की स्वास्थ्य, काम के घंटे, रोशनी, हवा के सम्बन्ध में जो धारायें लागू नहीं होती थीं, वे भी लागू होंगी; क्योंकि अनियंत्रित कारखानों तथा काम के स्थानों की दशा अत्यन्त दयनीय है। इसके

अतिरिक्त नये फैक्टरी कानून में मौसमी और स्थायी कारखानों के भेद को समाप्त कर दिया गया है। अब मौसमी कारखानों तथा स्थायी कारखानों में काम के घंटों इत्यादि में कोई अन्तर न रहेगा।

नये फैक्टरी कानून में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह है कि प्रौढ़ पुरुष की न्यनतम आयु १७ वर्ष से बढ़ा कर १८ वर्ष कर दी गई है और बालक मज़दूरों की आयु १२ वर्ष से बढ़ा कर १३ कर दी गई है। इसका अर्थ यह हुआ कि १८ वर्ष की आयु से कम का व्यक्ति प्रौढ़ नहीं माना जावेगा और उसे पूरे ८ घंटे काम नहीं करने दिया जावेगा और १३ वर्ष की आयु से कम का बालक कारखानों में काम न कर सकेगा। बालक मजदूरों के काम के घंटों को नये फैक्टरी कानून में ५ से घटा कर ४½ कर दिया गया है। प्रांतीय सरकारों को यह भी अधिकार दे दिया गया है कि खतरनाक धन्धों के लिए यदि वे चाहें तो बालक मजदूरों की न्यूनतम आयु को १३ वर्ष से भी अधिक कर दें।

सब से अधिक परिवर्तन वर्तमान एक्ट के उस अध्याय में किया गया है, जिसका सम्बन्ध मजदूरों के स्वास्थ्य और सुरक्षा से था। नये एक्ट में एक अध्याय के स्थान पर तीन अध्याय हैं,—१. स्वास्थ्य, २. सुरक्षा, ३. मजदूरों का हितवर्धन। अभी तक कानून में कारखानों की सफाई, हवा, रोशनी, तापक्रम, खतरनाक गंदी धूल, चिनगारियों, लपटों और तेज चमक से मजदूरों की रक्षा करने के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट विधान नहीं था। जो कुछ भी थोड़ा संरक्षण मजदूरों को दिया गया था, वह बहुत कुछ फैक्टरी इन्सपेक्टरों की इच्छा पर छोड़ दिया गया था। इसका परिणाम यह होता था कि कारखानों में अत्यधिक तापक्रम, लपटें तथा चमक और गंदी धूल के कारण मजदूरों के स्वास्थ्य को अपार हानि होती थी। इसके अतिरिक्त आंखों की रक्षा, फर्स्ट एड, विश्राम गृह, शिशु पालन गृह, नहाने-धोने की सुविधाओं तथा मजदूरों की सुरक्षा के सम्बन्ध में भी वर्तमान कानून में समुचित विधान नहीं था। अब इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के

सम्बन्ध में जो भी उपधारायें हैं, उनको बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया है। इस सब के लिए निश्चित मानदंड निर्धारित कर दिये हैं, जिन्हें प्रत्येक कारखाने को करना ही होगा। अब फैक्टरी इन्सपेक्टर के हाथ में यह बात नहीं दी गई है कि यदि आवश्यक समझे तो मिल मैनेजर को आज्ञा दे कि अमुक सुविधा मजदूरों को दी जावे।

इस बिल में कारखानों की इमारतों के सम्बन्ध में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। वायु, रोशनी इत्यादि का समुचित प्रबन्ध तभी हो सकता है, जब कि कारखानों की इमारतें ठीक प्रकार से बनी हों। अतएव इस बिल के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को अधिकार दे दिये गये हैं कि वे इमारतों के सम्बन्ध में नियम बनावें और उन्हें लागू करें। इस बिल के अनुसार प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह इस प्रकार का नियम बनादे कि किसी भी नये कारखाने की इमारत बिना प्रांतीय सरकार की आज्ञा के नहीं बनाई जावेगी और न वर्तमान इमारतों में कोई वृद्धि बिना प्रान्तीय सरकार की आज्ञा के की जावेगी। प्रान्तीय सरकार कारखानों की इमारतों के नक्शे तैयार करायेगी और उनका प्लान किस प्रकार का हो यह भी निर्धारित करेगी। प्रत्येक कारखाने को प्रांतीय सरकार से लायसैंस लेना होगा। लायसैंस के प्रार्थना-पत्र के साथ इमारत का प्लान तथा नक्शा इत्यादि भेजना होगा। इसका परिणाम यह होगा कि इमारतों के ऊटपटांग बने होने से कारखानों में जो वायु तथा रोशनी की कमी रहती है और मजदूरों के लिए खतरा रहता है, वह बहुत कुछ दूर हो जावेगा।

बिल में सवेतन छुट्टियों के बारे में भी परिवर्तन हुआ है। मजदूर सुविधा को दृष्टि में रखते हुए सवेतन छुट्टियां (वर्ष में १० दिन की) वर्ष में एक साथ न लेकर दो बार में ले सकेगा, साथ ही, वर्ष में २०दिन बिना अधिकारियों की आज्ञा प्राप्त किये अनुपस्थित रहने पर भी वह निकाला नहीं जा सकेगा।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस एक्ट के बन जाने से मजदूरों के

स्वास्थ्य, सुरक्षा और हित में वृद्धि होगी। यह कानून वर्तमान फैक्टरी एक्ट से अच्छा है; परन्तु इसमें एक कमी है। जब तक फैक्टरियों के निरीक्षण का उचित प्रबन्ध न हो, तब तक कानून से विशेष लाभ नहीं होगा। इसके लिये आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र में अवैतनिक फैक्टरी निरीक्षक भी रक्खे जावें, जो सम्माननीय व्यक्ति हों और मजदूरों के शुभचिंतक हों।

ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट १९४७

१९४७ में भारत सरकार ने ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट बनाकर मिल मज़दूर तथा मिल मालिकों के संघर्ष को कम करने का प्रयत्न किया है। इस कानून का उद्देश्य यही है कि कारखानों में हड़ताल तथा द्वारावरोध को जहां तक हो कम किया जावे, जिससे उत्पादन पर बुरा प्रभाव न पड़े और उद्योग-धन्धों में शान्ति रहे।

इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकार किसी भी कारखाने के मजदूरों तथा मालिकों के झगड़े को निबटाने के लिये एक समझौता कराने वाला अधिकारी नियुक्त कर सकती है। यदि वह अधिकारी समझौता कराने में असफल रहे तो सरकार उस झगड़े की पूरी जांच करने के लिये तथा निर्णय देने के लिये एक एडजुडिकेशन बोर्ड बिठा सकती है। बोर्ड की जानकारी के लिये तथ्यों को संग्रहीत करने के लिए एक औद्योगिक अदालत भी बिठाई जा सकती है। बोर्ड के निर्णय को किसी-किसी दशा में सरकार दोनों पक्षों पर भी लागू कर सकती है; उन्हें उस फैसले को मानना ही होगा। जिस समय समझौता आफिसर समझौता कराने का प्रयत्न कर रहा हो अथवा बोर्ड मामले की जाँच कर रहा हो, उस समय हड़ताल करना गैर कानूनी होगा। जो जनहित के धंधे हैं अथवा जो मूलभूत धंधे हैं, उनमें हड़ताल करने से पूर्व सरकार को सूचना देनी होगी। इस प्रकार धंधों में हड़तालों पर अधिक प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं।

इस कानून के द्वारा मज़दूरों के हड़ताल करने के मौलिक अधिकार

पर कुठाराघात हुआ है, यही इसका सबसे बड़ा दोष है। यद्यपि सरकार का रुख मजदूरों की ओर सहानुभूतिपूर्ण है और इस कानून के अन्तर्गत जो फैसले किए गए हैं, उनमें मजदूरों के हितों का ध्यान भी रक्खा गया है। फिर भी, मजदूरों को उनके इस अधिकार से वंचित किए जाने का समर्थन नहीं किया जा सकता।

न्यूनतम मजदूरी कानून

फरवरी १९४८ में भारतीय पार्लियामेन्ट ने न्यूनतम मजदूरी बिल स्वीकार कर लिया और अब वह शीघ्र ही कानून के रूप में देश में लागू होगा। देश के आर्थिक इतिहास में मजदूरों को नियमित रूप से न्यूनतम मज़दूरी दिलाने का यह पहला प्रयास है। मज़दूरों की दशा को देखते हुए यह प्रयास अत्यन्त प्रशंसनीय कहा जावेगा, यदि इस कानून के अन्तर्गत उचित नियम बनें और उनका कड़ाई से पालन किया गया। किन्तु यदि न्यूनतम मज़दूरी का अर्थ लिया गया कि एक प्रौढ़ को उतनी मजदूरी दी जावे कि वह किसी प्रकार अपना पेट मात्र भर सके अर्थात् वह केवल अपने शरीर की रक्षा मात्र कर सके तो इससे अधिक लाभ न होगा। न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करते समय सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि एक प्रौढ़ की मजदूरी कम से कम इतनी हो कि जो उसकी कुशलता को बढ़ाने में सहायक हो और उसके परिवार के पालन-पोषण के लिए यथेष्ट हो।

स्वीकृत बिल के मुख्य अंग नीचे लिखे हैं:—

प्रान्तीय सरकार तथा केन्द्रीय सरकार को उन उद्योग धंधों में, जिनकी बिल में सूची दी हुई है, न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार होगा। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए सरकार सलाहकार समिति तथा उप-समिति नियुक्त करेगी। केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों के न्यूनतम मज़दूरी सम्बन्धी कार्यों को सम्बद्धित करने के लिए केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड स्थापित करेगी। न्यूनतम मज़दूरी से कम मज़दूरी मिलने के दावों का निर्णय करने के लिए आयोजन

किया जावेगा ।

प्रमुख धन्धों के अतिरिक्त नीचे लिखे धन्धों में भी न्यूनतम मज़दूरी कानून लागू होगा:—ऊनी गलीचे, अथवा कम्बल बनाने के कारखाने, चावल, आटा और दालों की मिलें, बीड़ी बनाने का धन्धा, मोटर बसों पर काम करने वाले, सड़क और मकानों का कार्य करने वाले, चर्मालय तथा चमड़े की वस्तुएँ बनाने का उद्योग, तेल पेरने की मिलें, लाख और अभ्रक का उद्योग, खेत-मज़दूर अर्थात् खेती में काम करने वाले, तथा गौशालाओं इत्यादि में काम करने वाले श्रमिक। प्रान्तीय सरकारों को उल्लिखित उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योगों को भी सूची में सम्मिलित कर लेने का अधिकार दे दिया गया है ।

इस कानून के बन जाने से लगभग १० करोड़ श्रमिकों पर प्रभाव पड़ेगा। इस कानून के अन्तर्गत लगभग ७ करोड़ कृषि श्रमिकों के जीवन स्तर में परिवर्तन होने की सम्भावना है। इसमें कोई संदेह नहीं कि खेती में लगे हुए मज़दूरों तथा छोटे-मोटे फुटकर धन्धों में लगे हुए मज़दूरों को संरक्षण प्रदान करने के कारण इस कानून का बहुत व्यापक प्रभाव होगा। परन्तु यह सब तभी होगा जब कि न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करते समय उदार दृष्टिकोण रक्खा जावे और जो भी मज़दूरी निर्धारित की जावे, उसको कड़ाई से लागू किया जावे ।

पूंजीपतियों ने अभी से इसका, विरोध करना आरम्भ कर दिया है और वे कहने लगे हैं कि इससे धन्धों का उत्पादन-व्यय बढ़ जावेगा, देश में धन्धों की अवनति होने लगेगी, उद्योग धंधे इस भार को सहन नहीं कर सकेंगे और वे बन्द हो जावेंगे। इससे उत्पादन में कमी आवेगी और देश में उत्पादन-संकट उपस्थित हो जावेगा इसका उत्तर माननीय श्रम-मंत्री ने अच्छे शब्दों में दिया है। "जो उद्योग धन्धे अपने मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी नहीं दे सकते, वे वास्तव में श्रमिकों के शोषण पर चलते हैं और राष्ट्र के हित में उन्हें बन्द ही हो जाना चाहिए। यदि राष्ट्र को किसी ऐसे धन्धे की आवश्यकता है तो सरकार उसको आर्थिक

सहायता देगी।" इससे सरकार की दृढ़ता प्रगट होती है। आशा है कि सरकार भविष्य में इसी दृढ़ता से उस नियम को लागू करेगी।

यहां यह कह देना आवश्यक है कि पूंजीपतियों का विरोध सत्य के आधार पर नहीं है। यदि मज़दूरों को मज़दूरी अधिक मिलेगी तो उनका जीवन-स्तर ऊँचा होगा और उनकी कुशलता में वृद्धि होगी। इसका परिणाम यह होगा कि उत्पादन-व्यय नहीं बढ़ेगा। बहुत से अन्य देशों में न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने का यही परिणाम हुआ है। किन्तु इस बात की आवश्यकता है कि खेत मज़दूरों और फुटकर छोटे-मोटे धन्धों में लगे हुए मजदूरों को भी संगठित कर दिया जावे, नहीं तो असंगठित होने की दशा में उन्हें न्यूनतम मज़दूरी कानून का पूरा लाभ नहीं मिल सकेगा। इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि देशी राज्यों में भी यह कानून लगाया जावे। देशी राज्यों में मज़दूरों की दशा प्रान्तों के मज़दूरों से भी गई बीती है।

छठा—परिच्छेद

मजदूरों के रहने के मकान

मज़दूरों के लिए रहने के मकानों की समस्या भारतवर्ष के लिए कोई नई नहीं है। प्रत्येक औद्योगिक देश में यह समस्या उठ खड़ी हुई है। पिछले पचास वर्षों में लगातार ग्राम निवासी जन समूह बड़े-बड़े औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रों की ओर बहता रहा है। यही कारण है कि बम्बई, कलकत्ता, मदरास, करांची, कानपुर, लाहौर, दिल्ली, नागपुर, जबलपुर, मदुरा, जमशेदपुर आदि बड़ी तेजी से बढ़ते गये और देखते-देखते इन केन्द्रों की जनसंख्या कई गुनी हो गई। इन बड़े-बड़े नगरों में मजदूरों के रहने के लिए मकानों की समस्या ने भयंकर रूप धारण कर लिया है। जगह की कमी के कारण भूमि का मूल्य कल्पनातीत बढ़ गया है और

इसी कारण इन नगरों में बेहद भीड़ हो गई है। वस्तुस्थिति यह है कि वहां रहने के लिए मकान नहीं मिलते। एक कठिनाई यह भी है कि अभी तक उद्योग धंधों की स्थापना बिना किसी सोच विचार और योजना के हुई है। कहां नये कारखाने स्थापित किये जाने चाहिये, इसका ध्यान किये बिना ही बड़े-बड़े केन्द्रों के मध्य में कारखाने स्थापित किये जाते रहे हैं। इसका परिणाम यह होता है कि केन्द्रों के मध्य में जहां कि वैसे ही बहुत भीड़ होती है, बहुत बड़ी संख्या में मज़दूर रहना चाहते हैं और मकानों की कमी विकराल रूप धारण कर लेती है। कलकत्ता, बम्बई, कानपुर, नागपुर, अहमदाबाद इत्यादि बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों को देखिये। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कारखानों के बनाने में किसी को इस बात के ध्यान रखने की आवश्यकता ही नहीं थी कि कारखाना ऐसे स्थान पर बनाया जावे, जहां काफी जगह हो। यही कारण है कि इन धन्धों की स्थापना से बड़े-बड़े केन्द्रों में अत्यधिक भीड़ गंदगी और बीमारियां उत्पन्न होती हैं। जहां धन्धों की स्थापना से इन केन्द्रों की समृद्धि, वैभव, वाणिज्य और व्यापार में आश्चर्य जनक उन्नति हुई है, वहां इन धन्धों के कारण औद्योगिक केन्द्रों में दैन्य, गंदगी बीमारी और भीड़ का बाहुल्य हो गया है। हां, जो कारखाने छोटे-छोटे स्थानों पर स्थापित हुए हैं, उदाहरण के लिए शक्कर, रुई के पेंच, जूट के पेंच इत्यादि, वहां मकानों की समस्या ऐसी विकट नहीं है।

भीड़

भारतवर्ष में इस सम्बन्ध में सरकारी जांच अभी तक कोई नहीं हुई है, इस कारण मकान में भीड़ का ठीक-ठीक अनुमान करना कठिन है परन्तु जो भी फुटकर जांच हुई है और उनसे जो कुछ ज्ञात हुआ है, वह हृदय को कँपा देने वाला है। पिछली जनगणना के अनुसार बम्बई में ७० प्रतिशत मकानों में केवल एक कोठरी है। १९२१-२२ में लेबर आफिस ने कुछ पारिवारिक बजट तैयार किये थे, उस जांच के अनुसार बम्बई में ९७ प्रतिशत मज़दूर एक कोठरी के मकानों में

रहते थे और प्रत्येक कोठरी में ६ से ९ तक जीव रहते थे। करांची में तो सारा मजदूर वर्ग ही एक कोठरी में ६ से ९ व्यक्ति प्रति कोठरी के हिसाब से रहता है। अहमदाबाद में ७२ प्रतिशत मजदूर एक कोठरी में रहते हैं। शाही मजदूर कमीशन का कहना था कि भारत के अन्य औद्यौगिक केन्द्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार के आंकड़े प्राप्त नहीं हैं; परन्तु जो कुछ कमीशन ने देखा उससे उसका कहना था कि कलकत्ता, कानपुर, मद्रास इत्यादि सभी बड़े औद्योगिक केन्द्रों में लगभग सभी मजदूर एक कोठरी के मकानों में रहते हैं। रहने के स्थान की इस कमी का मजदूरों के स्वास्थ्य पर भयंकर प्रभाव पड़ता है। सच तो यह है कि यह केन्द्र बीमारियों के स्थायी अड्डे बन गए हैं और मजदूरों को इन स्थानों में नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। जिन लोगों ने इन स्थानों को नहीं देखा है, वे तो उनकी भयंकरता की कल्पना भी नहीं कर सकते। टाट के पर्दे या टीन डाल दी जाती है, जिससे कि हवा और रोशनी घरों में प्रवेश ही न कर सके। हमारे मजदूर के रहने के स्थानों का यह एक साधारण चित्र है। सच तो यह है कि जिस प्रकार के मकानों में भारतीय मजदूर रहता है, वे मनुष्य के लिए क्या, पशुओं के लिए भी उपयुक्त नहीं हैं। अब हम भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रों के सम्बन्ध में कुछ विस्तार पूर्वक लिखेंगे।

बम्बई

बम्बई में अधिकांश मजदूर "चालों" में रहते हैं। चाल एक लम्बी कोठरियों की पंक्ति को कहते हैं, जिसके सामने पतला बरामदा होता है। यह दो-तीन मंजिल की होती है और एक दूसरे से सटी हुई बनी होती है। मकानों की दो पंक्तियों के बीच में एक गज से अधिक जगह नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि नीचे की मंजिल तथा ऊपर की मंजिलों के बीच के कमरों में न तो हवा पहुँचती है और न रोशनी ही। इन चालों में अधिकांश में तो शौचगृह होते ही नहीं। दो चालों के

बीच में जो पतली सी गली होती है, उसमें ही टट्टियां होती हैं, वही शौचगृह का काम देती हैं। इतने अधिक व्यक्तियों के लिए शौचगृहों का उचित प्रबन्ध न होने के कारण और दूसरे उन संडासों की सफाई का प्रबन्ध ठीक न होने के कारण वहां बुरी दुर्गन्ध फैली रहती है। यदि पाठकों में से किसी को इन चालों में जाने का अवसर हो तो वह उस दुर्गन्ध को अधिक देर तक सहन नहीं कर सकता। दुर्गंध से बचने के कारण मज़दूर अपनी खिड़कियों को, जो उसी पतली गली में खुलती हैं जिसमें टट्टियां होती हैं, बन्द रखते हैं। इस कारण कोठरियों में हवा का प्रवेश नाममात्र को ही हो पाता है। केवल इतना ही सब कुछ नहीं है, इन मकानों का सारा कूड़ा भी इन्हीं पतली गलियों में फेंक दिया जाता है। मल-मूत्र और कचरे की सड़ांद भयानक दुर्गंध उत्पन्न करती है और सारे वायुमंडल को विषैला बना देती है।

अभी तक विद्वानों ने भारत के औद्योगिक केंद्रों में मकानों की कमी के कारण होने वाली भीड़ का और उनमें रहने वालों की मृत्यु का सम्बन्ध निर्धारित नहीं किया है। किन्तु श्री बरनट हर्स्ट महोदय ने बम्बई में जो खोज की थी, उससे उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि एक कोठरी के मकान में रहने वाले बच्चों की मृत्यु-संख्या (८७ प्रतिशत) सबसे अधिक है। दो कोठरियों के मकानों में रहने वालों की ३२ प्रतिशत, तीन कोठरियों के मकान में रहने वालों की मृत्यु-संख्या १६ प्रतिशत और अस्पतालों में रहने वालों की मृत्युसंख्या १६ प्रतिशत याने सबसे कम है। श्री बरनट हर्स्ट की खोज से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि मकानों में अत्यधिक भीड़ होने के कारण मज़दूरों के बच्चों की मृत्यु-संख्या में वृद्धि होती है। अस्तु, मकानों की समस्या इस दृष्टि से अत्यन्त महत्व की है। यदि मिल मालिक अपने स्वार्थ के कारण इस ओर ध्यान नहीं देते तो सरकार को इस ओर से उदासीन नहीं होना चाहिए।

कुछ उद्योगपति यह कहते नहीं थकते कि गांव में जिन मकानों में

मज़दूर रहता है, वह भी कुछ अधिक अच्छे नहीं होते; किन्तु वह ऐसा कहते समय यह भूल जाते हैं कि यद्यपि गांव के मकानों में हवा का पूरा प्रबन्ध नहीं होता और गांव को गलियां इत्यादि गंदी रहती हैं, फिर भी उनमें जो आंगन होता है, उसमें धूप-रोशनी और हवा यथेष्ट मात्रा में रहती है। फिर किसान खेतों के स्वास्थ्ययुक्त वातावरण में काम करता है। किंतु नगरों में मज़दूरों के रहने के स्थान अत्यन्त गंदे, सीलयुक्त और कूड़े-कचरे से भरे हुए हैं। वहां का सारा वायुमण्डल दुर्गन्धयुक्त और विषैला हो उठता है। रोग के तो वे स्थायी अड्डे बन जाते हैं। कई मंजिल और पास-पास सटे होने के कारण उनमें यथेष्ट धूप, रोशनी और हवा की गुँजाइश नहीं होती। एक कोठरी के मकानों में पर्दों के लिए खिड़की और दरवाजों पर के पर्दे का तो केवल अनुभव ही किया जा सकता है। उसका विवरण लेखनी की शक्ति के बाहर की बात है।

कुछ समय हुआ बम्बई सरकार ने एक लेडी डाक्टर को मज़दूर स्त्रियों के स्वास्थ्य के सम्बन्ध में जांच के लिए नियुक्त किया था। उसने जो विवरण अपनी रिपोर्ट में लिखा है वह हृदय को कंपा देने वाला है। एक मकान के सम्बंध में उसने लिखा है " मैं चाल की दूसरी मंजिल के एक कमरे में गई, जिसकी लम्बाई १५ फीट और चौड़ाई १२ फीट थी। उस कमरे में ६ परिवार रह रहे थे। उनका भोजन पकाने के लिए उस कमरे में ६ चूल्हे थे। उन परिवारों में स्त्री-पुरुष-बच्चे सभी मिलाकर ३० प्राणी थे और ये सब उसी एक कमरे में रहते थे। छत से डोरियाँ बांध कर, उनमें बांस बांध कर, उन पर टाट और कम्बल डाल दिये गये थे, जिससे कि प्रत्येक परिवार पृथक रह सके। उनमें से ३ स्त्रियां गर्भवती थीं और उनके शीघ्र ही बच्चा होने वाला था। वे सभी बम्बई में ही बच्चा उत्पन्न करने वाली थीं। जब मैंने नर्स से पूछा जो मेरे साथ थी कि वह किस प्रकार इस कमरे में बच्चा उत्पन्न करेगी, तो मुझे एक कोने में चार फीट लम्बी और ३ फीट चौड़ी जगह दिखलाई गई, जिसके चारों तरफ पर्दा कर दिया गया था। इन ६ चूल्हों से निकलने वाले धुयें और गन्दगी

का प्रभाव माता और बच्चों के स्वास्थ्य पर कैसा पड़ेगा, यह तो किसी से छिपा नहीं है। यह इस तरह का अकेला कमरा नहीं था। ऐसे बहुत से कमरे मेरे देखने में आये। बम्बई की चालों का नारकीय-जीवन वर्णन के बाहर है।

अधिकांश चालों की इमारतें जर्जर अवस्था में हैं। नीचे की मंजिल में बेहद सीलन होती है। कहीं-कहीं तो चाल की इमारत सड़क के धरातल से ही खड़ी कर दी गई है, उसकी कुर्सी होती ही नहीं। ऐसी अवस्था में वर्षा की ऋतु में जब बम्बई में मूसलधार वर्षा होती है, तब सड़क का पानी कमरों में आ जाता है और सीलन का तो कहना ही क्या ? इन चालों के अहाते में कूड़ा-कचरा और यहां तक कि मल के ढेर लगे रहते हैं, जो कि वर्षा के दिनों में सड़कर विषैले रोग के कीटाणुओं को जन्म देते हैं। प्रत्येक चाल में नल की थोड़ी सी ही टोटियां एक स्थान पर होती हैं। चाल के सभी रहने वाले, चाहे स्त्री हों या पुरुष, उन्हीं नलों पर नहाते और कपड़ा धोते हैं। नलों की कमी के कारण और बन्द स्नानागार न होने के कारण मज़दूरों को विशेषकर मज़दूर स्त्रियों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। घंटों प्रतीक्षा करने के उपरांत कहीं वे यथेष्ट जल पाती हैं।

उत्तम चालें

ऊपर जिन चालों के सम्बन्ध में कहा गया है, वे व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति होती हैं और वे लोग अधिक से अधिक किराया वसूल करना ही अपना प्रमुख कर्तव्य समझते हैं। कहीं-कहीं ऐसा भी होता है कि जाबर या सरदार किसी चाल को पट्टे पर ले लेता है और अपने अधीन मजदूरों को उसमें रखकर मनमाना लाभ उठाता है। उस दशा में उसका मजदूरों पर बेहद प्रभाव होता है। इन चालों के अतिरिक्त कुछ मिलों ने अपने मजदूरों के लिए रहने की सुविधा की है और कुछ चालें

बनवाई हैं। लगभग ३० मिलों ने अपने बीस प्रतिशत मजदूरों के लिए एक कमरे की चालें बनवाई हैं। इसमें संदेह नहीं कि यह चालें उन चालों से, जो व्यक्ति विशेष की सम्पत्ति होती हैं, बहुत अच्छी हैं; फिर भी उनमें स्थान की कमी है। मिल मालिक इन कमरों के लिए किराया लेते हैं। किन्तु अनुभव यह बतलाता है कि गांव से आया हुआ मजदूर जो मकान का किराया देना जानता ही नहीं, कुछ लोगों को रख लेता है और उनसे किराया वसूल करता है। साधारणतया कोई मिल ऐसे व्यक्ति को, जो कि उस मिल में काम नहीं करता, कमरा किराये पर नहीं देती; किन्तु उस मिल में काम करने वाला मजदूर जब अन्य किसी व्यक्ति को अपना भाई या भतीजा कह कर रख लेता है तो उसको हटाना कठिन हो जाता है और इन चालों में भी भीड़ हो जाती है।

मिलों के अतिरिक्त बम्बई पोर्ट ट्रस्ट ने तीन स्थानों पर अपने मज़दूरों के लिए चालें बनवाई हैं, जिनमें ट्रस्ट के ८००० मजदूरों में से ३००० मज़दूर रहते हैं। बम्बई इम्प्रवमैंट ट्रस्ट ने अपने सभी मज़दूरों के लिये रहने की सुविधा की है, परन्तु वहां भी टीन से छाई हुई बहुत घटिया कोठरियां हैं।

पिछले महायुद्ध के उपरान्त बम्बई में मज़दूरों के लिए मकानों की सुविधा उत्पन्न करने के लिये बम्बई सरकार ने एक विशेष डैवलपमेन्ट विभाग स्थापित किया और उस विभाग ने २०७ कंकरीट की नवीन चालें बनाई। इन चालों में १६००० एक कमरे वाले घर हैं। इन चालों में कमरे बड़े हैं, रोशनी और हवा की सुविधा है। साथ ही फ्लश, शौचगृह और बिजली का प्रबंध है। यद्यपि शौचगृह आवश्यकता को देखते हुए संख्या में कम हैं। प्रत्येक चाल में बिजली की रोशनी, पानी और दूकानों की सुविधा का प्रबंध है। इन चालों में स्कूल और औषधालयों का भी प्रबंध किया गया है। परन्तु आरंभ में इन चालों को मज़दूरों ने पसंद नहीं किया और बहुत सी चालें खाली पड़ी रहीं। इसका मुख्य कारण यह था कि यह चालें मिलों से दूर थीं और

आने-जाने के लिये कोई उचित प्रबंध नहीं था। यद्यपि धीरे-धीरे यह चालें आबाद हो गई।

बम्बई में मकानों की समस्या कितनी भयंकर हो उठी है, इसका अनुमान तो इसी से लगाया जा सकता है कि १९३८ के पूर्व भी वहां एक बहुत बड़ी संख्या फुटपाथों पर सोया करती थी। अधिकांश मज़दूरों के लिए एकान्त स्थान नहीं होता, एक-एक कमरे या कोठरी में दो-तीन और उससे भी अधिक गृहस्थियां रहती हैं। पुरुष अधिकांश बाहर ही रहते हैं। स्त्रियां ही उन कमरों में रहती हैं और वे सामान रखने तथा खाना पकाने के काम आते हैं।

कलकत्ते की बस्तियां

कलकत्ता और हवड़ा में मिल मज़दूर बस्तियों में रहते हैं। यह बस्तियां अधिकतर सरदार या अन्य व्यक्तियों की होती हैं। सरदार भूमि को पट्टे पर ले लेता है और जो मज़दूर रहने के लिए स्थान चाहते हैं, उसे बांस तथा फूस इत्यादि देकर स्थान बतला देता है और मज़दूर उसी स्थान पर एक कच्चा झोंपड़ा खड़ा कर लेता है। इन बस्तियों के मालिक इनसे खूब ही लाभ कमाते हैं। कलकत्ते की यह बस्तियां इतनी गंदी और खराब होती हैं कि जिनकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकता। एक लेखक ने ठीक ही कहा है कि "वे गंदे रोगग्रस्त बिल हैं, जहां मानवता सड़ती है।" इन झोपड़ों में न तो कोई खिड़की या रोशनदान ही होता है और न कोई चिमनी ही होती है। बस्ती के झोपड़ों को बनाते समय मिट्टी खोदने से जो पोखरे बन जाते हैं, उनमें इकट्ठा पानी साधारणतः काम में लाया जाता है और पीने के पानी की भी बहुत कमी होती है। सफाई का तो इन बस्तियों में नाम भी नहीं होता। इन बस्तियों में जाने के मार्ग दलदल और गंदगी से भरे रहते हैं और वर्षा में तो वे रोग-कीटाणुओं के अड्डे बन जाते हैं। बंगाल म्यूनिसिपल कानून के अन्तर्गत इन बस्तियों के मालिकों को उनके सुधार के लिए उत्तर

दायी ठहराया गया है। किन्तु आज तक कभी इन मालिकों के विरुद्ध कोई कानूनी कार्यवाही नहीं की गई। कारण यह कि इनके भाई-बंद ही म्युनिस्पैलटियों के कर्ताधर्ता होते हैं।

हावड़ा की स्थिति तो और भी भयंकर है। सच तो यह कि कलकत्ता और हावड़ा में स्थान की इतनी कमी है कि प्रत्येक इन्च भूमि का उपयोग मकान बनाने में किया गया है। इन बस्तियों की गलियां, जिनकी दोनों तरफ बस्तियां बनी हैं, ३ फीट से अधिक चौड़ी नहीं हैं और इन्हीं गलियों में बस्तियों की गंदी नाली बहती है। इन बस्तियों के रहने वाले अत्यंत नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं; फिर भी बस्ती के मालिक बेचारों से बहुत अधिक किराया लेते हैं। जूट-मिलों तथा अन्य धंधों में काम करने वाले मजदूरों का अधिकांश भाग ऐसी ही गंदी बस्तियों में रहता है।

मिलों द्वारा बनाई हुई कुली लाइनें

जूट-मिलों ने अपने मजदूरों के लिये कुछ कुली लाइनें बनवाई हैं। इन कुली लाइनों में छोटे-छोटे ४०,००० क्वार्टर हैं और एक लाख से ऊपर मजदूर रहते हैं। इन क्वार्टरों की लम्बाई १० फीट और चौड़ाई ८ फीट होती है और वे उन बस्तियों से कहीं अच्छे हैं। एक तो यह लाइनें पक्की होती हैं और पानी की सुविधा होती है। कुली लाइन क्वार्टरों की एक लाइन होती है। प्रत्येक क्वार्टर में एक कमरा और उसके सामने एक बरामदा होता है, जिसका उपयोग रोटी पकाने और स्नान के लिए किया जाता है। इन लाइनों के बीच में जो पतली-सी जगह होती है, उसको पक्का कर दिया गया है। सीमेंट की पक्की नालियां बना दी गई हैं, जो कि साफ रक्खी जा सकती हैं। इन लाइनों के क्वार्टरों में खिड़कियां होती हैं और किन्हीं-किन्हीं में तो छत में भी हवा के मार्ग होते हैं। अस्तु, रोशनी और वायु का इन क्वार्टरों में समुचित प्रवेश हो सकता है। शौचगृहों की समस्या को हल करने के लिए सेप्टिक टैंक बनवा दिये गए

हैं। किसी-किसी मिल ने इन लाइनों में अस्पताल भी स्थापित कर दिये हैं। हावड़ा और कलकत्ता की मिलों ने यह लाइनें बना कर मजदूरों को रहने की सुविधा प्रदान करने का प्रयत्न किया है। जल का प्रबन्ध करने के लिए कहीं-कहीं गहरे ट्यूब-वेल खोदे गये हैं और कहीं नदियों के पानी को शुद्ध करके मजदूरों को दिया जाता है। कुछ लाइनों में बिजली का भी प्रबंध किया गया है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि यह कुली लाइनें उन गंदी बस्तियों से कहीं अधिक अच्छी हैं। फिर भी जगह की कमी के कारण कमरे छोटे हैं और इन लाइनों के बीच में बहुत थोड़ी जगह छोड़ी गई है। एक लाइन दूसरी लाइन से सटा कर बनाई गई है। फिर अधिकांश मजदूरों को तो यह भी प्राप्त नहीं है। वे तो उन्हीं नरक जैसी बस्तियों में रहने पर विवश हैं।

मद्रास की चैरी

मद्रास के औद्योगिक केन्द्रों (मद्रास, मदुरा, तथा कोयम्बटूर इत्यादि) में मकानों की समस्या इतनी ही गम्भीर है। मद्रास शहर में २८,००० एक कोठरी के मकानों में १८०,००० मजदूर रहते हैं। मकानों की इतनी भयंकर कमी है कि सैकड़ों मजदूरों को मकान तक नहीं मिलते और वे सड़कों के किनारे अपना सामान रख कर पड़े रहते हैं या बंदरगाह के किनारे जो बड़े-बड़े माल गोदाम बने हुए हैं, उनके बरांडों में रहते हैं। मदुरा में तो स्थिति और भी भयावह है। न तो म्युनिस्पैलटी और न सूती कपड़े की मिलों ने ही मकानों की समस्या को हल करने का प्रयत्न किया है। केवल मदुरा मिल ने १७६ क्वार्टरों का एक छोटासा उपनिवेश स्थापित किया है, जिसमें कि उस मिल के मजदूर रहते हैं। कोयम्बटूर तथा तूतीकोरन में भी कोई मकानों का प्रबन्ध नहीं है।

मकानों की इस भयंकर कमी का परिणाम यह होता है कि निर्धन मजदूर खाली स्थानों पर अस्थायी झोंपड़े या कच्ची-पक्की कोठरियाँ खड़ी कर लेते हैं और जब उन ज़मीनों के मालिक जमीन का किराया बहुत

अधिक बढ़ा लेते हैं तो वे उठ कर दूसरी जमीनों पर चले जाते हैं। इन अस्थायी बस्तियों को ही चैरी कहते हैं। यह चैरियां अधिकांश में नगर के उस भाग में होती हैं, जो सबसे गंदा और उपेक्षित होता है। सड़क और पाइप न होने के कारण इन चैरियों में म्युनिस्पैलटी भी सफाई नहीं करती, क्योंकि चैरियां अस्थायी होती हैं; इस कारण न तो यहां नालियाँ होती हैं, सफाई और रोशनी का तो कहना ही क्या? म्युनिस्पैलटी भी इनकी ओर से उदासीन रहती है। गन्दगी का तो यहां एक-छत्र राज्य होता है और इन्हीं स्थानों में अधिकांश मजदूर रहते हैं। मजदूर स्त्रियों को पानी के लिये भी बहुत दूर जाना पड़ता है।

इन चैरियों में जो कोठरियां होती हैं, वे ६ फीट लम्बी और ८ फीट चौड़ी होती हैं। दीवालें कच्ची होती हैं और मिट्टी के तेल के पीपों की टीन से छाई जाती हैं। यह झोंपड़े एक दूसरे से सटे होते हैं। इन मकानों में गन्दगी के अतिरिक्त वर्षा और धूप से बचाव भी नहीं होता। पानी की कमी के कारण गन्दगी तो इतनी होती है कि उनके कच्चे रास्ते पर निकलना भी कठिन होता है। शौचगृहों का कोई प्रबन्ध नहीं होता इस कारण गन्दगी और भी भयंकर रूप धारण कर लेती है।

मद्रास की सफ़ाई सुधार सभा ने इस सम्बन्ध में जो जांच की है, उससे प्रतीत होता है कि सब मिला कर मदरास में १८१ ऐसे गन्दे उपनिवेश थे। इनमें से २६ चैरियों की जमीन सरकार की थी, २५ चैरियों की जमीन कारपोरेशन की थी और शेष की जमीन व्यक्तियों की थी। सरकार और कारपोरेशन की जमीन पर स्थापित चैरियों पर जल पाइप, सार्वजनिक शौचगृहों और सड़कों की सुविधा है, परन्तु अन्य चैरियों में इनका सर्वथा अभाव है। अधिकांश चैरियों में नल और शौच-गृह न होने के कारण गन्दगी ऐसा भयंकर रूप धारण कर लेती है कि उसका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि इन चैरियों के रहने वालों की मृत्यु-संख्या बहुत अधिक है। मद्रास की मृत्यु-संख्या की जांच के लिए एक कमेटी बिठाई गई थी, उसने इस सम्बन्ध में जो लिखा

है वह महत्वपूर्ण है "इन उपनिवेशों में जो सब स्थानों पर मल पड़ा मिलता है, उसका कारण मजदूरों की गंदी आदत नहीं है; वरन् सार्वजनिक शौच-गृहों की कमी है । कोई भी स्वाभिमानी व्यक्ति, चाहे वह कुली हो या म्युनिसिपल कारपोरेशन का सदस्य, उन गंदे शौचगृहों का उपयोग नहीं करेगा । यही नहीं, वे गंदे शौचगृह भी यथेष्ट नहीं हैं । और उनका इतना अधिक उपयोग होता है कि वे साफ रक्खे ही नहीं जा सकते । इस समस्या को तभी हल किया जा सकता है, जब कि फ्लश शौचगृहों का बहुत बड़ी संख्या में निर्माण किया जावे । इन उपनिवेशों में रहने वाली मजदूर स्त्रियां प्रातःकाल होने से घंटे दो घंटे पहले उठ कर किसी नारियल के पेड़, नाली या किसी खाली स्थान पर शौच जाती हैं, क्यों कि शौचगृहों की वहां बेहद कमी है ।

यह चैरियां बहुधा सड़कों से नीचे होती हैं और उनमें नालियां नहीं होतीं, इस कारण गंदा पानी वहीं भरता रहता है । वर्षा में तो सड़क का पानी भी इन्हीं में भर जाता है । वर्षा के दिनों में इन उपनिवेशों में घुटनों पानी हो जाता है और बहुत से कच्चे झोपड़े धराशायी हो जाते हैं ।

कभी किसी चैरी में जाइये, रास्ते में गन्दगी, कूड़ा, जूठन और धूल दिखलाई देगी । उसी गन्दगी में इन मज़दूरों के बालक खेलते हैं, दूकान-दार खाने का सामान रखकर बेचते हैं और उन पर मक्खियाँ भिनभिनाया करती हैं ।

एक बार मदूरा म्युनिसिपैलिटी के अभिनन्दन-पत्र के उत्तर में महात्मा गांधी ने कहा था "आपने कहा है कि म्युनिसिपैलिटी हरिजनों को शिक्षा तथा अन्य नागरिक सुविधा सवर्णों के समान ही देती है; परन्तु जो कुछ आपने कहा है, वह सत्य नहीं है । आप उन मज़दूरों को वे सुविधायें तभी दे सकते हैं कि जब आप इन चैरियों को नष्ट कर दें । मैं अभी तीन चैरियों को देख कर आया हूँ और आप मुझे यह कहने के लिए क्षमा करें कि म्यूनिसिपैलिटी ने उन निर्धन व्यक्तियों के रहने के

स्थानों का सुधार करने का तनिक भी प्रयत्न नहीं किया। एक चैरी जो मैंने देखी, उसके चारों ओर गन्दी नाली और पानी भरा हुआ था। वर्षा में वह स्थान मनुष्यों के रहने योग्य नहीं हो सकता। वह सड़क से नीचे पर है इस कारण वर्षा का पानी चैरी में भर जाता होगा। न इन चैरियों में कोई सड़क है न अन्य सुविधायें ही हैं।"

सच तो यह है कि मद्रास प्रान्त के सभी औद्योगिक केन्द्रों मद्रास, मदूरा, तूतीकोरन तथा कोयम्बटूर इत्यादि में मजदूरों के रहने के स्थानों की ऐसी ही दुर्दशा है।

मद्रास में मकानों की समस्या हल करने का प्रयत्न

मद्रास सरकार के लेबर डिपार्टमेन्ट (मजदूर विभाग) तथा एक दो सहकारी गृह-समितियों ने कुछ मजदूरों के लिए क्वार्टर बनाये हैं; परन्तु उनका प्रयत्न दाल में नमक के बराबर भी नहीं है। केवल बकिंगहम करनाटक मिल ने अवश्य ही अपने मजदूरों के लिए रहने के मकानों का सुन्दर प्रबन्ध किया है। उक्त कंपनी ने चार आदर्श मजदूर ग्राम बसाये हैं, जिनमें लगभग ७०० मकान हैं। प्रत्येक मकान में एक कमरा, उसके सामने वरांडा, एक रसोई घर, एक स्नानागार तथा आंगन होता है। इन गांवों के बीच-बीच में काफी जगहें छोड़ दी गई हैं। पक्की सड़कें डाली गई हैं और उन पर बिजली की रोशनी का प्रबन्ध है। अभी तक घरों में बिजली की रोशनी नहीं है। पानी के लिए पाइप का प्रबन्ध है। सड़कों की रोशनी, सफाई तथा पानी का सारा खर्च कम्पनी देती है। प्रत्येक क्वार्टर का डेढ़ रुपया मासिक किराया लिया जाता है। किन्तु मजदूरों को इस बात की आज्ञा नहीं है कि वे उसे दूसरे को उठा दें या दूसरी मिलों में काम करने वालों को रख लें। इतना सब कुछ करने पर भी मिल अपने दस प्रतिशत मज़दूरों को ही मकान दे सकी है। इसका कारण यह है कि मकान बनाने के लिए उपयुक्त जगह नहीं है, और जमीन का मूल्य बेहद ऊँचा है। इसी कारण मिल इच्छा रहते भी

शीघ्र ही मकान नहीं बनवा सकती। अधिकांश मिल मजदूर उन्हीं गन्दी चैरियों में रहते हैं।

कानपुर

संयुक्त प्रान्त में एक बहुत बड़ा औद्योगिक केन्द्र है। यहां के तीन चौथाई मज़दूर बस्तियों या अहातों में रहते हैं। यह अहाते वास्तव में मनुष्यों के रहने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। केवल कुछ मिलों ने अपने मजदूरों के लिए अच्छे क्वार्टरों का प्रबन्ध किया है। अधिकांश मजदूर अत्यन्त गन्दे स्थानों में रह कर नारकीय जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

यह अहाते व्यक्तियों की सम्पत्ति हैं। लगभग २०० अहातों में इस केन्द्र की अधिकांश मजदूर जन-संख्या निवास करती है। इन अहातों में एक कोठरी और उसके सामने एक बरांडे वाले बहुत से मकान होते हैं। कमरे की लम्बाई १० फीट और चौड़ाई ८ फीट होती है। प्रत्येक कमरे में केवल एक दर्वाजा होता है और कोई खिड़की या अन्य हवा का मार्ग नहीं होता। इन मकानों में रोशनी और हवा का तनिक भी प्रबन्ध नहीं होता। अधिकांश का फर्श कच्चा और नम होता है और छतें भी कच्ची होती हैं, जो वर्षा में टपकती हैं। तीन चौथाई मकानों में कोई आँगन नहीं है और जल की भी बहुत कठिनाई है, क्यों कि सार्वजनिक नलों से ही पानी लेना पड़ता है। प्रत्येक टोंटी से २०० व्यक्ति पानी लेते हैं। अधिकांश मजदूर सार्वजनिक शौचगृहों का उपयोग करते हैं। प्रत्येक सार्वजनिक शौचगृह औसत ७६१ व्यक्तियों का होता है। प्रत्येक मजदूर अपने घर का कूड़ा-कचरा सड़क पर ही फेंक देता है। इसका परिणाम यह होता है कि अहातों में भीषण दुर्गन्ध रहती है। नालियां बहुत ही खराब दशा में हैं, जिनसे और भी गन्दगी उत्पन्न होती है।

उत्तम मकान

कानपुर में सर्व प्रथम ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन ने अपने मजदूरों

के लिए मकानों की सुविधा का प्रबन्ध किया। उक्त कम्पनी ने दो बड़े मजदूर उपनिवेश ऐलनगंज और मैकराबर्टगंज नाम से बसाये हैं। इन उपनिवेशों में लगभग २५०० सिंगल क्वार्टर, कई सौ डबल क्वार्टर और १२ छोटे बंगले हैं। यह क्वार्टर बहुत ही अच्छे बने हैं और इनमें यथेष्ट स्थान है। क्वार्टरों की पंक्तियों के बीच में जो जगह है, उसमें सायेदार वृक्षों की पंक्ति लगा दी गई है। छुट्टियों के दिनों में मज़दूर अपने क्वार्टरों के सामने इन वृक्षों की साया में बैठते हैं। इन क्वार्टरों का आँगन भी पक्का होता है। पक्की साफ नालियां हैं और पानी का बहुत अच्छा प्रबंध है। क्वार्टरों में रहने वालों के लिए स्वच्छ सार्वजनिक शौचगृहों की व्यवस्था है, जिनमें सफाई के लिए जल कल (फ्लश लैट्रिन) लगी हुई है। डबल क्वार्टरों में शौचगृहों की सफाई के लिए मेहतर नियुक्त हैं। मजदूरों के लिए खेलने के मैदान भी हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ब्रिटिश इंडिया कारपोरेशन ने मज़दूरों के लिए रहने की सुविधा का समुचित प्रबंध किया है। ब्रिटिश इन्डिया कारपोरेशन के इन उपनिवेशों में लगभग १०,००० मज़दूर रहते हैं।

इसके अतिरिक्त कानपुर इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट ने भी मजदूरों के लिए कुछ क्वार्टर बनवाये हैं। कुछ अन्य मिल मालिकों ने भी इस ओर प्रयत्न करना चाहा, किन्तु जमीन न मिलने के कारण उनका प्रयत्न सफल नहीं हुआ। कानपुर में जमीन की बहुत कमी है और जब तक उसका प्रबंध नहीं होता, तब तक यह भयंकर समस्या हल नहीं हो सकती।

किंतु अधिकांश मजदूरों को तो उन गंदे अहातों में रहना पड़ता है जो नरक तुल्य हैं। यही कारण है कि कानपुर के मजदूरों में बच्चों की मृत्यु-संख्या प्रति हजार ४०० से अधिक है और इन अहातों में क्षय रोग खूब फलता-फूलता है, क्योंकि मकानों की कमी के कारण एक-एक कमरे में दो तीन और चार परिवार भी रहते हैं। इन अहातों के मालिकों को अपनी पूंजी पर किराये के रूप में २५ प्रतिशत सूद मिलता है।

म्यूनिस्पैलिटी में इनका बेहद प्रभाव होता है, इस कारण उनके सुधार का कोई प्रयत्न भी सफल नहीं हो पाता। आवश्यकता इस बात की है कि इन अहातों को मनुष्य के रहने के लिए अयोग्य घोषित कर दिया जावे, किंतु यह तब तक नहीं हो सकता जब तक कि यथेष्ट उत्तम मकानों को बनवाने का प्रबन्ध न किया जावे।

अहमदाबाद

अहमदाबाद की भी ठीक ऐसी ही दयनीय दशा है। वहां भी मजदूर मानों नरक में रहता है। ९२ प्रतिशत मजदूर एक कमरे के मकानों में रहते हैं। इन मकानों की दशा जर्जर होती है। गंदे तो यह इतने होते हैं कि जिसका कोई ठिकाना नहीं और हवा तथा रोशनी का कोई प्रबन्ध नहीं रहता। पानी और शौचगृह की व्यवस्था बहुत ही खराब है। इसका परिणाम यह है कि अहमदाबाद में मृत्यु-संख्या का अनुपात बहुत ऊँचा है।

अहमदाबाद में कुछ सूती कपड़े के कारखानों ने अपने मज़दूरों के लिए क्वार्टरों की व्यवस्था की है; किन्तु वे केवल १६ प्रतिशत मज़दूरों को ही मकान दे सके हैं। यद्यपि लगभग ३५ मिलों ने चालें बनवाई हैं, किन्तु एक दो को छोड़ कर उनकी व्यवस्था ठीक नहीं है। केवल अशोक और कैलिको मिल ने जो चालें बनवाई हैं, वे अच्छी हैं और वहाँ सफाई तथा अन्य सुविधाओं की व्यवस्था है। इन मिलों ने मिलों के समीप ही चालें बनवाई हैं, जिनमें उनके लगभग आधे मज़दूर रहते हैं। इन चालों के बीच में वृक्ष तथा बाग़ लगाये गये हैं, जिससे कि यह मज़दूर उपनिवेश अधिक आकर्षक तथा सुन्दर दिखलाई देते हैं। इन चालों में दो क्वार्टर हैं। एक में केवल एक कमरा, एक वरांडा और आंगन होता है। कुछ वर्ष पहिले कैलिको मिल नें मिल से दूर एक मज़दूरों की बस्ती बनाई, जिसमें प्रत्येक घर में एक कमरा और वरांडा के अतिरिक्त रसोईघर

और स्नानागार भी हैं; परन्तु दूर होने के कारण मज़दूर उसमें रहना पसंद नहीं करते। अहमदाबाद की लेबर यूनियन ने भी मज़दूरों के रहने के लिए एक मज़दूर उपनिवेश स्थापित करने की योजना बनाई है और कुछ मकानों का निर्माण किया है।

शोलापुर में सूती कपड़े की मिलों के मजदूरों के लिए रहने की व्यवस्था बम्बई तथा अहमदाबाद से अच्छी है।

नागपुर

नागपुर में मज़दूरों के रहने की व्यवस्था उतनी ही बुरी है, जितनी कि अन्य औद्योगिक केन्द्रों की है। परन्तु एम्प्रेस मिल नागपुर ने मजदूरों के रहने के लिए जो सुन्दर उपनिवेश बनाने की योजना हाथ में ली है वह उल्लेखनीय है। मिल ने सरकार से इन्दोरा के समीप २०० एकड़ भूमि लम्बे पट्टे पर ली है और उस जगह कंपनी २५ लाख रुपये व्यय करके १५०० मकान बनवा रही है। यह एक आदर्श मज़दूर उपनिवेश होगा। योजना यह है कि मकानों के लिए प्लाट बना दिये गए हैं। सड़कें, नालियां इत्यादि कंपनी ने डलवा दी हैं। प्रत्येक प्लाट ५३ फीट लम्बा और ३६ फीट चौड़ा है। किन्तु इसमें केवल एक तिहाई भूमि पर ही इमारत बन सकती है, शेष खुली रहेगी। प्रत्येक घर में शौच-गृह और नल की टोंटी होगी। कंपनी एक मकान को बनाने में ६६० रु. व्यय करती है और वह मकान ८४० रु. में मजदूर को बेंच दिया जाता है। मजदूर को मासिक किश्तों में रकम चुकानी पड़ती है। मूलधन पर ३ प्रतिशत सूद लिया जाता है। यह तो हुई पक्के मकानों की बात; परन्तु कम्पनी, यदि मजदूर चाहें तो कच्चे मकान बनाने की भी आज्ञा देती है। परन्तु उन्हें कम्पनी के नक्शे के अनुसार ही मकान बनाना होगा। कम्पनी मजदूरों को ३०० रु. पेशगी दे देती है। जो कि एक कच्चे मकान की लागत होती है और ५ से ७ वर्ष में प्रति मास किश्तों में यह रकम अदा कर दी जाती है। इस उपनिवेश में सार्वजनिक

उद्यान, बाजार, अस्पताल, स्कूल, मज़दूरों की इंस्टिट्यूट तथा मज़दूरों के सम्बन्ध में अन्य संस्थाओं की इमारतों के लिए जमीन निश्चित कर दी गई है। यद्यपि अभी तक यह पूरा उपनिवेश बन नहीं पाया है, महायुद्ध ने इसमें बाधा डालदी है, परन्तु जब वह बन जावेगा तो एक अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक मज़दूर उपनिवेश होगा तथा मज़दूरों को इस बात का गौरव होगा कि उनका अपना मकान है।

चाय के बाग

आसाम तथा बंगाल के चाय के बागों में मज़दूर बहुधा दूसरे प्रान्तों से आते हैं और चाय के बागों में उन्हें रहने के लिए मकान देने का नियम है। यद्यपि वहां पर जमीन की समस्या नहीं है, परन्तु फिर भी वहां मकानों की दशा संतोषजनक नहीं है। अधिकांश मकानों में केवल एक ही कमरा होता है, मकान की कुर्सी प्रायः बिलकुल ही नहीं होती, इसी कारण सीलन बहुत रहती है और बहुत से बागों में मज़दूरों की तुलना में मकान इतने कम होते हैं कि एक कमरे में एक से अधिक परिवार रहते हैं। इनके अतिरिक्त यह मकान खुले और हवादार नहीं होते। चाय के बगीचों के सम्बन्ध में एक कठिनाई यह है कि वहां बाहरी आदमियों को जाने नहीं दिया जाता। चाय के बागों के मालिकों का कहना है कि इतना व्यय करके जो मज़दूर हम लाते हैं, उन्हें यदि बाहरी व्यक्तियों से मिलने की सुविधा दी जावेगी तो गैर जिम्मेदार मज़दूर कार्यकर्ता उन्हें भड़का देंगे। इसी कारण वे अपने मज़दूरों को बाहरी व्यक्तियों के सम्पर्क में नहीं आने देते। दिन को तो निगरानी रहती ही है, रात्रि में भी उनकी लाइनों पर पहरा रहता है। एक प्रकार से चाय के बागों के कुली कैदी हैं और उनके सम्बन्ध में बाहरी जनता को कुछ अधिक ज्ञान नहीं है। शाही मज़दूर कमीशन ने चाय के बागों के मालिकों की इन मनोवृत्तियों की निन्दा करते हुए कहा था कि एक न एक दिन तो यह होना ही है। इसी प्रकार मज़दूरों

को हमेशा दबाये नहीं रक्खा जा सकता। अस्तु मालिकों को उनमें संगठन उत्पन्न होने देना चाहिए। किन्तु अभी तक चाय के बागों के मालिकों की वही नीति चली आ रही है।

खानों के मज़दूरों के रहने के मकान

जिस प्रकार बड़े-बड़े औद्योगिक केन्द्रों में मज़दूर अत्यन्त दयनीय दशा में रहते हैं, उसी प्रकार उन्हें खानों में भी रहना पड़ता है। बंगाल और बिहार की कोयले की खानों में तीन प्रकार के मजदूर होते हैं। (१) वे ग्रामीण किसान, जो खान के समीपवर्ती गांवों के रहने वाले होते हैं। उनके गांव खानों से ५ मील की दूरी पर होते हैं। वे अपने घरों पर रहते हैं और खानों में काम करते हैं। (२) दूसरे प्रकार के वे मजदूर होते हैं जो खानों से बहुत दूरी पर स्थित गांवों में रहते हैं और वे वर्ष में कुछ महीनों के लिए खानों में काम करने के लिए आते हैं तथा खेत बोने तथा फसल काटने के समय वे अपने गांवों को वापस लौट जाते। (३) तीसरी प्रकार के वे मजदूर हैं, जो स्थायी रूप से खानों में रह कर काम करते हैं। खानों के पास के गावों में रहने वाले संथाली मजदूर अपने सुन्दर, स्वच्छ और आकर्षक गाँवों को छोड़कर कभी खानों के गंदे 'धौरों' मकानों में रहना पसंद नहीं करते; परन्तु अन्य मजदूर इन 'धौरों' में रहते हैं। इन 'धौरों' में एक कमरा होता है, जिसकी लम्बाई १० फीट और चौड़ाई १० फीट होती है। इन्हीं कमरों में मजदूर सोते हैं और खाना पकाते हैं और उस कारण यह कमरे बहुत काले हो गये हैं। अधिकांश की छतें टपकती हैं और वर्षा ऋतु में तो मजदूर के लिए इन "धौरों" में रहना ही कठिन हो जाता है। यद्यपि खानों में बिजली होती है, किन्तु "धौरों" में बिजली नहीं दी गई और अधिकांश खानों में मजदूरों की संख्या अधिक होने के कारण एक-एक कमरे में दो वा अधिक परिवार भी रहते हैं। इन धौरों में हवा और रोशनी के लिए खिड़की या रोशनदान नहीं होते। कोयले की

खानों में केवल रहने की ही कठिनाई हो, केवल यही बात नहीं है। इन औरों की लाइनों में सफाई का भी समुचित प्रबंध नहीं होता। शौच-गृह तो बहुत ही कम होते हैं और नहाने तथा कपड़ा धोने के लिए भी वहां उचित व्यवस्था नहीं है। अधिकांश मजदूर गंदे तालाबों का उपयोग करते हैं। इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि खानों के मालिक मजदूरों के लिए पानी के नलों और स्नान गृहों की उचित व्यवस्था करें और साथ ही अच्छे शौचगृह भी बनवाये जावें।

कोलार सोने की खानों में मजदूर झोपड़ियों में रहते हैं। इन झोपड़ियों की दीवारें बांस की चटाई की होती हैं। उनपर टीन की छत होती है। झोपड़ियों की लम्बाई और चोड़ाई ६ फीट होती है। इन झोपड़ियों में कोई नाली का प्रबंध नहीं होता, पानी वहीं भरता रहता है और गंदगी उत्पन्न करता है। प्रत्येक झोपड़ी में चार व्यक्ति रहते हैं। इन झोपड़ियों की ऊँचाई बहुत कम होती है, इस कारण गर्मियों में टीन की छत इतनी गरम हो उठती है कि मनुष्यों का वहाँ रहना दूभर हो जाता है। जब कि हवा तेज चलती है तो धूल और गर्द बांस की चटाईयों की संधों से झोपड़ी में भर जाती है। मजदूर का भोजन, वस्तु सभी धूल से भर जाते हैं और उसी धूल में वह सांस लेते हैं।

जमशेदपुर (टाटानगर)

मकानों की ऐसी भंयकर कमी और गंदगी, जैसी कि ऊपर दिये हुए औद्योगिक केन्द्रों में दिखलाई देती है, अनिवार्य हो, ऐसी बात नहीं है। जमशेदपुर को देखने से यह सिद्ध हो जाता है कि यदि वास्तव में प्रयत्न किया जावे तो मजदूरों के रहने की समस्या को हल किया जा सकता है, मजदूर को नरक तुल्य स्थानों में रहने से बचाया जा सकता है।

जमशेदपुर में जैसी अच्छी सड़कें हैं, स्वच्छ जल का जैसा सुन्दर प्रबंध है और चिकित्सा की जैसी समुचित व्यवस्था है, वैसी भारत के कम

शहरों में मिलती है। बालक-बालिकाओं के लिए खेलने के लिए मैदानों और पार्कों की समुचित व्यवस्था की गई है और शिक्षा का भी समुचित प्रबंध है। शहर में बिजली अपेक्षाकृत बहुत कम मूल्य पर दी जाती है। जिस भूमि पर जमशेदपुर नगर बसा हुआ है, वह टाटा कंपनी की सम्पत्ति है, अतएव नगर का प्रबन्ध कंपनी की देख-रेख में ही होता है। रोशनी, नालियों और सड़कों की सफाई, शिक्षा, चिकित्सा तथा जल की व्यवस्था का व्यय कंपनी करती है।

कंपनी ने मजदूरों के रहने के लिए मकानों की भी व्यवस्था की है। लगभग ६००० क्वार्टर कंपनी ने अपने व्यय से बनवाये हैं। प्रत्येक क्वार्टर के चारों ओर एक छोटा-सा बगीचा होता है और साफ शौचगृहों की व्यवस्था की गई है। मजदूरों को भी कंपनी रुपया कर्ज दे कर मकान बनाने के लिए उत्साहित करती है। मकान की लागत का दो तिहाई तक रुपया कंपनी कर्ज दे देती है। ऋण पर ३ प्रतिशत सूद लिया जाता है और मासिक किश्तों में रुपया चुका दिया जाता है। निर्धन मजदूर बहुत सादे, कच्चे और कम ख़र्चीले मकान बना लेते हैं। वे स्वयं ही काम करते हैं, केवल मिस्त्रियों को नौकर रख लेते हैं और सामान खरीद लेते हैं। इस प्रकार बहुत कम खर्च में मकान बन जाते हैं। नगर के भिन्न-भिन्न भागों में इस प्रकार के लगभग दस हजार मकान हैं।

ऊपर दिये हुए विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय मज़दूर औद्योगिक केन्द्रों में अधिकतर अत्यंत गंदे मकानों में रहते हैं और भीड़ इतनी अधिक होती है कि विवाहित स्त्री-पुरुष एकांत में स्वतंत्ररूप से मिल-जुल भी नहीं सकते। गंदगी और भीड़ के कारण उनके स्वास्थ्य और चरित्र पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। सच तो यह है इन औद्योगिक केन्द्रों में मानवता नष्ट की जा रही है। यदि हमने मजदूरों के जीवन को अधिक सुखी और समृद्धिशाली नहीं बनाया तो यह कहना पड़ेगा कि राष्ट्र के लिए यह उद्योग-धंधे अत्यंत हानिकारक सिद्ध होंगे।

यदि राष्ट्र की बहुत बड़ी जनसंख्या को केवल इसलिए नारकीय जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़े कि जिससे बड़े-बड़े पूंजीपतियों को अधिकाधिक लाभ मिल सके तो यह कदापि सहन नहीं किया जा सकता। कोई भी सरकार इस स्थिति को सहन नहीं कर सकती। मजदूरों के जीवन को सुखी बनाने लिये पहले हवादार और अच्छे मकानों की व्यवस्था करना अत्यंत आवश्यक है।

मकानों की समस्या हल करने में कठिनाइयाँ

कारखानों को मजदूरों के लिये मकानों की समस्या हल करने में सबसे बड़ी कठिनाई जमीन की उपस्थित होती है। जो कारखाने छोटे-छोटे केन्द्रों या कस्बों में हैं, उनकी बात छोड़ दें तो बड़े औद्योगिक केन्द्रों में तो जमीन की बहुत कमी है और यदि है भी तो उसका मूल्य कल्पनातीत है। अभी तक सरकार जहां अन्य सार्वजनिक हित के कार्यों के लिये उचित मावज़ा देकर (Land acquisition Act) कानून के अन्तर्गत जमीन ले सकती थी, वहां कारखानों के मजदूरों के लिए मकान बनाने के लिए जमीन लेने की सुविधा नहीं थी, किन्तु शाही मजदूर कमीशन की सिफारिश के अनुसार कानून में संशोधन कर दिया गया है और अब इस कार्य के लिए भी सरकार ज़मीन को उचित मावजा देकर ले सकती है। फिर भी जमीन की समस्या औद्योगिक केन्द्रों में है ही।

एक कठिनाई यह है कि बहुत से नगरों में मिलों के पास तो तनिक सी जमीन नहीं है; हां, बहुत दूर पर जमीन मिल भी सकती है। स्वभावतः मजदूर मिल के पास ही रहना पसन्द करता है। क्योंकि यदि मिल से चार-पांच मील दूर जाकर रहे तो आने जाने की कठिनाई के अतिरिक्त उसे तीन घंटे आने-जाने के लिए नष्ट करना पड़ेंगे। ऐसी दशा में उसे अपने घर से दो घंटे पहले चलना होगा और दिन भर काम कर चुकने के उपरान्त छुट्टी होने पर थका-मांदा दो घंटे के उपरान्त वह

घर पहुँचेगा। यही कारण है कि जहां-जहां मिलों से अधिक दूरी पर मजदूरों के रहने का प्रबन्ध किया, वहां मजदूरों ने रहना पसंद नहीं किया। इसके अतिरिक्त बाजार और अस्पतालों की भी सुविधा मजदूर अवश्य देखते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि यदि मजदूरों के लिए बहुत दूरी पर अच्छे मकानों का प्रबन्ध किया जावे तो बाजार और अस्पतालों की सुविधा प्रदान करने के अतिरिक्त उनके मिल तक आने और जाने के लिए बस सर्विस या ट्राम का भी प्रबन्ध किया जावे और उसका व्यय मिलें दें।

घने आबाद औद्योगिक केन्द्रों में नए कारखाने न खोलने दिए जावें

भविष्य में मकानों की समस्या और उग्ररूप धारण न करले, इसके लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक ऐसे नगर में जहां की आबादी घनी है और जहां मकानों की कमी है, कोई नया कारखाना न खुलने दिया जाय। यह अत्यंत आवश्यक सुधार है; नहीं तो औद्योगिक केन्द्रों में इस समस्या का हल कर सकना सम्भव न होगा। यों भी धन्धों का विकेन्द्रीकरण आवश्यक हो गया है। अस्तु यदि भविष्य में किसी भी बड़े नगर में कारखाना खोलने से पूर्व प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेना अनिवार्य कर दिया जावे तो भविष्य में इस समस्या की भयंकरता को कम किया जा सकता है।

कारखानों के मजदूरों के लिए मकानों की व्यवस्था

अब प्रश्न यह है कि मकानों की व्यवस्था किस प्रकार की जावे। मजदूरों के लिए मकानों की व्यवस्था तो किसी न किसी प्रकार होनी ही चाहिए। यह तभी हो सकता है कि प्रांतीय सरकारें म्यूनिसिपल बोर्ड तथा मिल मालिक सभी मिल कर इस समस्या को हल करने का प्रयत्न करें। सच तो यह है कि प्रत्येक प्रांत की सरकार का यह पहला कर्तव्य होना चाहिए कि वह औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों के जीवन को अधिक सुखद बनाने का प्रयत्न करे।

आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र में जन संख्या की दृष्टि से मकानों की जांच की जावे और फिर प्रत्येक मिल मालिक को अपने मज़दूरों के लिए मकान बनाने के लिए उत्साहित किया जावे। प्रान्तीय सरकार मकानों के लिए उपयुक्त स्थान दिलाने का प्रयत्न करे और जो भी मिल मालिक चाहें उन्हें बहुत कम सूद पर इस कार्य के लिए ऋण दिया जावे। जो कंपनियाँ अपनी पूंजी पर दस प्रतिशत से अधिक लाभ देती हों, उन्हें मज़दूरों के लिए हवादार अच्छे और खुले हुए मकान बनवाने पर विवश किया जाय। इस आशय का एक कानून बन जाना चाहिए कि जो कम्पनियां पूंजी पर १० प्रतिशत से अधिक लाभ देती हैं, उनका अतिरिक्त लाभ का कुछ अंश मज़दूरों के लिए मकान बनाने में काम आना चाहिए, साथ ही बड़े औद्योगिक केन्द्रों में किसी भी नये कारखाने को खोलने की आज्ञा न देनी चाहिए।

छोटे-छोटे कस्बों और नगरों में जो कारखाने हैं उनके समीप ही यथेष्ट भूमि अभी से कारखानों को लेने पर विवश करना चाहिए, जिससे कि भविष्य में वहां मकानों के लिए भूमि का टोटा न हो जावे। जैसे ही कारखाने की स्थिति ऐसी हो कि वह मकानों में पूंजी लगा सके, कारखानों को मजदूरों के लिए मकान बनाने के लिए विवश करना चाहिए। यदि मिल मालिक चाहें तो सरकार उन्हें ऋण दे दे। भविष्य में नये कारखानों की स्थापना होने पर इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि फैक्टरी ने इतनी भूमि ली है या नहीं कि जिस पर मजदूरों के मकान बन सकें। एक कानून बना कर प्रत्येक कारखाने को जिसमें १०० से अधिक मजदूर काम करते हों, अपने लाभ का कुछ अंश इस कार्य के लिए पृथक रखने पर बाध्य किया जावे। जिससे कालान्तर में मजदूरों के लिए मकानों की व्यवस्था हो सके।

म्यूनिसिपल बोर्डों का भी इस सम्बंध में कुछ कर्तव्य है। जहां मजदूरों की बस्तियां हैं वहां रोशनी, पानी, सफाई, सड़क, नाली, अस्पताल, शिक्षा और बाजार का प्रबंध उन्हें करना चाहिए। अभी तक म्यूनिसिपैल-

टियों ने इस आवश्यक कर्तव्य की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। यही नहीं, जो मकान अत्यन्त गंदे और मनुष्यों के रहने के अयोग्य हैं, उन्हें नष्ट करवा देना भी म्यूनिसिपल-बोर्ड का कर्तव्य होना चाहिए। बात यह है कि गंदे मकानों के मालिक जो निर्धन मज़दूरों से किराये के रूप में खूब लाभ कमाते हैं, वे ही म्यूनिसिपल-बोर्डों को घेरे रहते हैं। इस कारण उनके विरुद्ध कुछ कार्यवाही नहीं हो पाती। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्तीय सरकार प्रत्येक शहर में मकानों की जांच करावे और जिन मकानों को मनुष्यों के रहने के अयोग्य समझा जावे, उन्हें एक नियत समय के अन्दर नष्ट कर देने की आज्ञा दे दे।

इसके अतिरिक्त प्रान्तीय सरकार म्यूनिसिपल बोर्ड, इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट तथा अन्य सरकारी संस्थायें अपने कर्मचारियों के लिए मकानों की व्यवस्था करें। निर्धन मजदूरों के जीवन को सुखी बनाने के लिए हवादार, आकर्षक, सुन्दर और साफ मकान की अत्यन्त आवश्यकता है और उसके लिए जितना भी प्रयत्न किया जावे थोड़ा है।

ऊपर लिखी हुई योजना के विरुद्ध यह आशंका की जा सकती है कि यदि कारखानों को मकान बनवाने के लिए विवश किया गया तो औद्योगिक उन्नति की गति रुक जावेगी, क्योंकि बहुत अधिक पूंजी मकान बनवाने में लग जावेगी। परन्तु जब कारखाने पूंजी पर १० प्रतिशत से अधिक लाभ दें, तभी उन्हें मकान बनवाने पर बाध्य किया जावे और उस दशा में भी प्रान्तीय सरकार उन्हें बहुत कम सूद पर ऋण दे। इससे मिलों को अन्ततः लाभ ही होगा। मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ेगी और उन्हें अधिक स्थायी मजदूर मिल सकेंगे। कुछ मालिकों ने इस रहस्य को समझ लिया है और वे इस ओर प्रयत्नशील हैं। ऐसे मिल मालिकों को प्रान्तीय सरकार ने हर प्रकार की सहायता देना चाहिए।

कहीं-कहीं मजदूर मालिकों के बनाये हुए मकानों में रहना पसंद नहीं करते हैं, क्योंकि मालिक उन पर तथा उनके कार्यों पर निगरानी

रखते हैं। मज़दूर कार्यकर्ताओं को वहां आने से रोका जाता है और मजदूर सभा के कार्यों में विघ्न डाले जाते हैं। जब मजदूर हड़ताल कर देते हैं तो उन्हें तुरन्त मकान खाली कर देने के लिए कहा जाता है और कभी-कभी तो पानी और रोशनी बंद कर देने की धमकी दी जाती है। आशा है कि भविष्य में मिल मालिक मजदूरों पर इस प्रकार का अनुचित दबाव नहीं डालेंगे। किन्तु यदि आवश्यकता समझी जावे तो सरकार कानून बनाकर इस प्रकार के अनुचित कार्यों को गैर कानूनी घोषित कर दे।

नये कारखाने यदि बड़े औद्योगिक केन्द्रों में न खुलने दिये जावें और वे क्रमशः छोटे शहरों तथा क़स्बों में ही स्थापित किये जावें तो उनके लिए जमीन का प्रबंध हो सकता है और मालिकों द्वारा मकानों की व्यवस्था हो सकती है। किन्तु बम्बई, कलकत्ता, कानपुर अहमदाबाद मदरास, नागपुर, इत्यादि में केवल मिल मालिकों के ऊपर ही मकानों की व्यवस्था का भार छोड़ देना सम्भव नहीं है। वहां प्रान्तीय सरकार को भी इस कार्य में हाथ बंटाना होगा। यदि आवश्यकता हो तो मिल मालिकों को सरकार आर्थिक सहायता भी दे। और यदि केन्द्र से दूरी पर मजदूरों के उपनिवेश बसाये जावें तो उनको गमनागमन की सुविधायें भी प्रदान की जावें। तभी यह समस्या हल हो सकती है।

सातवां परिच्छेद

मजदूरों का वेतन तथा उनकी आर्थिक स्थिति

मजदूरों के वेतन का प्रश्न भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। जब तक मजदूरों को उचित वेतन नहीं दिया जाता तब तक उनकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है। क्योंकि मजदूरों के रहन-सहन का दर्जा मज़दूरों को कितनी मजदूरी मिलती है, उस बात पर निर्भर है। मजदूरों की सुख सुविधा, भोजन वस्त्र की समस्या, उनका स्वास्थ्य, सभी वेतन या मजरीद

पर ही निर्भर है । अतएव मजदूर समस्याओं का अध्ययन करनेवालों के लिए मज़दूरी का अध्ययन करना अत्यन्त आवश्यक है । जहां तक मज़दूरों का प्रश्न है, मजदूरी का सवाल उनके लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । यही कारण है कि अधिकांश हड़तालें मजदूरी के प्रश्न को लेकर ही होती हैं ।

मजदूरी की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ

व्यवहार में मज़दूरी की बहुत पद्धतियां हैं । क्योंकि मजदूर कितना काम करता है उसको निश्चय करने के बहुत से ढंग हैं । किन्तु मोटे रूप में हम मजदूरी की भिन्न-भिन्न पद्धतियों को दो मुख्य पद्धतियों में विभाजित कर सकते हैं (१) पहली पद्धति वह है, जिसमें मजदूरी समय के अनुसार दी जाती है (२) दूसरी पद्धति वह है, जिसमें मजदूरी उत्पादन पर निर्भर रहती है, अर्थात मजदूर जितना काम करता है, उसके अनुसार मजदूरी दी जाती है ।

समय के अनुसार मजदूरी निर्धारित करने में इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि मजदूर कितना काम करता है । मजदूरी प्रतिघंटा, प्रतिदिन, अथवा प्रति सप्ताह के अनुसार निर्धारित की जाती है । समय के अनुसार मजदूरी के निर्धारित होने पर मजदूर कितना काम करता है, इसका विचार नहीं किया जाता । हां मालिक इस बात का ध्यान अवश्य रखता है कि कोई मजदूर इतना कम काम तो नहीं करता कि वह रखने योग्य न हो । समय के अनुसार मजदूरी निर्धारित करते समय भी कार्य का न्यूनतम मानदंड रक्खा जाता है । जो मजदूर उतना कार्य नहीं कर पाता उसको निकाल दिया जाता है ।

कार्य अर्थात उत्पादन के अनुसार जहां मजदूरी दी जाती है, वहां जो वस्तु तैयार की जाती है, अथवा जो कार्य किया जाता है उसके अनुसार मज़दूरी का हिसाब लगाया जाता है ।

उदाहरण के लिये यदि किसी कारख़ाने में प्रति घन्टा दो आना

अथवा प्रति दिन १ रु. के हिसाब से मजदूरी दी जावे तो उसे "समय के अनुसार मजदूरी" कहेंगे और यदि किसी बुनकर को प्रति गज कपड़ा बुनने के लिए २ आना प्रति गज कपड़ा मज़दूरी दी जाती है तो उसे "कार्य के अनुसार मज़दूरी" कहेंगे।

अधिकांश धन्धों में समय के अनुसार मज़दूरी दी जाती है। क्योंकि मजदूर और मजदूर सभायें समय के अनुसार मज़दूरी का समर्थन करते हैं। समय के अनुसार मजदूरी का एक गुण विशेष यह है कि वह बहुत सरल है। मजदूर की समझ में वह आसानी से आजाती है और उसका हिसाब लगाना भी सरल है। यही नहीं, कुछ धंधे ऐसे होते हैं, जहां किसी व्यक्ति विशेष ने कितना काम किया है, इसका हिसाब लगाना सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए रेलवे में, शक्कर के कारखाने में, जहाज में, बिजली के कारखाने में, वाटर वर्क्स में इत्यादि। इन धंधों तथा अन्य ऐसे ही धंधों में किसी एक मजदूर ने कितना कार्य किया है, यह नहीं जाना जा सकता। क्योंकि इन धंधों में प्रत्येक क्रिया एक दूसरे से ऐसी मिली हुई होती है कि उसको किसी बीच की स्थिति में नाप सकना सम्भव नहीं है। इसके विपरीत सूती या ऊनी कपड़े के कारखाने में मजदूरों ने कितना कार्य किया है, इसका हिसाब बड़ी सरलता से लगाया जासकता है। एक बुनकर जितना कपड़ा एक दिन में तैयार करता है, वह बड़ी आसानी से मालूम किया जा सकता है।

जिन धन्धों में कुशलता और सावधानी की अत्यन्त आवश्यकता होती है उनमें भी समय के अनुसार मज़दूरी देना ही उचित होता है। क्योंकि यदि वहां कार्य के अनुसार मज़दूरी दी जावे तो मज़दूर अधिक मज़दूरी पाने के लालच में कार्य को जल्दी समाप्त करने का प्रयत्न करेंगे और वह कार्य भलीभांति न हो सकेगा। उदाहरण के लिए यदि बढ़िया रेशमी साड़ी अथवा अन्य मूल्यवान कपड़ा तैयार करना हो, बढ़िया औजार बनाने हों, हीरे के तथा अन्य बहुमूल्य आभूषण बनवाना हों, अथवा ऐसे ही अन्य कार्यों में जहां कुशलता की आवश्यकता

होती है, वहां समय के अनुसार ही मज़दूरी दी जाती है। कुछ ऐसे धन्धे हैं, जहां काम के अनुसार मजदूरी देने की प्रथा बहुत अधिक प्रचलित है। उदाहरण के लिए वस्त्र व्यवसाय में, इंजीनियरिंग में, चीनी मिट्टी के बर्तनों के कारखानों में, कपड़ा सीने के कारखानों में तथा कोयले की खानों में कार्य के अनुसार ही मज़दूरी दी जाती है।

समय के अनुसार मज़दूरी देने की प्रथा में एक दोष यह है कि मज़दूर जितना कार्य कर सकता है, उतना नहीं करता। वह समय को नष्ट करने का प्रयत्न करता है और कम से कम काम करने का प्रयत्न करता है। जिन कारखानों में निरीक्षण बहुत अच्छा होता है और मज़दूर विश्वासपात्र और ईमानदार होते हैं वहां कार्य कुछ ठीक होता है और जहां निरीक्षण शिथिल होता है, वहां कार्य ठीक नहीं होता।

किन्तु कार्य के अनुसार मज़दूरी देने की प्रथा में कुछ गम्भीर दोष हैं। एक बड़ा दोष तो यह है कि इसके कारण मज़दूरों में अस्वस्थकर प्रतिस्पर्द्धा की भावना जाग्रत हो जाती है। जो अधिक कुशल मज़दूर हैं, वे अधिक कमाते हैं। इस प्रतिस्पर्द्धा का प्रभाव मज़दूरों के संगठन पर बुरा पड़ता है। यही कारण है कि ट्रेड यूनियन (मज़दूर संघ) इस प्रथा को अधिक पसंद नहीं करती। इस प्रथा में दूसरा भयंकर दोष यह है कि मिल मालिक मज़दूरों की कार्यक्षमता कितनी है, यह जान जाता है, और यदि वह देखता है कि मज़दूर बहुत अधिक मज़दूरी पाते हैं तो उसका प्रयत्न मज़दूरी कम करने की ओर होता है। अथवा वह समय के अनुसार मजदूरी निर्धारित कर देता है और साथ ही एक मज़दूर को कम से कम कितना कार्य अवश्य करना चाहिए, यह भी वह निश्चित कर देता है। इस कारण मजदूरों का शोषण करने का उसे अवसर मिल जाता है। यही कारण है कि जिन देशों में मज़दूर सुसंगठित हैं, वहां कार्य के अनुसार मज़दूरी को दर ट्रेड यूनियन और मालिक दोनों की स्वीकृति से ही निश्चित होती है और मज़दूर संघ समय के अनुसार न्यूनतम

मजदूरी भी निर्धारित कर देता है, जो कि मज़दूर को प्रत्येक दशा में मिलना चाहिए ।

प्रीमियम बोनस पद्धति

समय के अनुसार मज़दूरी देने से कुशल और क्षमतावान मज़दूर को कोई लाभ नहीं होता। क्योंकि उसको उतनी ही मज़दूरी मिलती है, जितनी कि अकुशल मज़दूरों को। अतएव वह जितना उत्पादन कार्य कर सकता है, उतना नहीं करता। इस कारण कुछ व्यवसायियों ने समय के अनुसार मज़दूरी देने की प्रथा और कार्य के अनुसार मजदूरी देने की प्रथा का सम्मिश्रण करके प्रीमियम बोनस पद्धति निकाली। प्रीमियम बोनस पद्धति का स्वरूप भिन्न-भिन्न है। हम यहां मुख्य प्रीमियम पद्धतियों का विवरण देते हैं।

टेलर पद्धति

प्रीमियम बोनस पद्धतियों में सबसे पुरानी पद्धति टेलर पद्धति है, जिसे संयुक्तराज्य अमेरिका के एफ. डब्लू. टेलर ने निकाला था। इस पद्धति में कार्य के अनुसार मज़दूरी की दरें होती हैं। एक ऊंची दर होती है और एक नीची दर। ऊंची दर नीची दर से ड्योढ़ी तक होती है। यदि मज़दूर कार्य के एक निश्चित मानदण्ड से अधिक काम करता है अथवा उतना ही कार्य करता है, तो उसको ऊँची दर से मज़दूरी दी जाती है। और यदि वह निश्चित कार्य से कम कार्य करता है तो उसको नीची दर से मजदूरी दी जाती है। इस पद्धति में धीरे काम करने वाला मज़दूर बहुत घाटे में रहता है और तेज काम करने वाला मज़दूर बहुत लाभ उठाता है। इसमें कोई समय के अनुसार मज़दूरी की गारंटी नहीं की जाती। परन्तु इस पद्धति में कार्य का मानदण्ड निर्धारित करने में बहुत सावधानी रखने की आवश्यकता है। यदि मानदण्ड इतना ऊंचा निर्धारित कर दिया गया कि केवल बहुत तेज मज़दूर ही उतना कार्य कर सके तो साधारण

मज़दूरों को उससे बहुत हानि होगी। इस पद्धति को मज़दूरों ने कभी भी पसंद नहीं किया और मिल मालिकों में भी यह अधिक प्रचलित नहीं हुई।

गैंट की बोनस पद्धति

टेलर की पद्धति के दोष को दूर करके गैंट ने एक नवीन बोनस पद्धति निकाली। इस पद्धति की विशेषता यह है कि इसमें प्रति घंटे के हिसाब से मजदूरी को गारंटी दी जाती है, फिर मज़दूर जितना भी कार्य करे। परन्तु यदि मज़दूर निर्धारित कार्य को कर देता है तो उसको ३० प्रतिशत प्रीमियम दिया जाता है। उदाहरण के लिए यदि कारखाने ने एक मजदूर के लिए ५० गज कपड़े का स्टैंडर्ड नियत किया है और यदि कोई मज़दूर ८ घंटे में केवल ३० गज कपड़ा ही तैयार करता है तो उसको प्रति घंटा के हिसाब से ८ घंटे की निर्धारित मजदूरी मिल जावेगी। यदि किसी मज़दूर ने ५० गज कपड़ा तैयार कर दिया तो उसको प्रीमियम मिलेगा। इस पद्धति में एक न्यूनतम मज़दूरी की गारंटी होती है, जिसके नीचे मजदूरी जा ही नहीं सकती।

प्रीमियम बोनस पद्धतियों में सबसे महत्वपूर्ण और सर्व प्रचलित हैलसे पद्धति है। संक्षेप में पद्धति इस प्रकार है:— कारखाने में मजदूरी की रेट निर्धारित करने वाला एक पृथक विभाग होता है। प्रत्येक कार्य के लिए कितना समय साधारणतः लगेगा, इसको वह विभाग निर्धारित कर देता है। प्रत्येक मजदूर के कार्ड पर वह समय लिख दिया जाता है जो कि स्टैंडर्ड समय है और जितने समय में साधारणतः मज़दूर को वह कार्य कर लेना चाहिए। यदि कोई स्टैंडर्ड समय से अधिक में कार्य समाप्त करता है तो उसको पूरे समय (अर्थात जितने भी घन्टे उसने काम किया है) की समय के अनुसार मजदूरी दे दी जायगी। और यदि कोई मजदूर स्टैंडर्ड समय से कम में काम कर लेता है तो उसने जितने समय की बचत की है, उसके आधे या तिहाई समय की मज-

दूरी उसे बोनस के रूप में और दे दी जाती है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जावेगी। उदाहरण के लिए यदि प्रति घंटे की समय के अनुसार मज़दूरी ४ आना प्रति घंटा है और उस कार्य के लिए पांच घन्टा स्टैंडर्ड समय नियत है और प्रीमियम-बोनस समय की बचत का आधा दिया जाता है तो यदि कोई मजदूर ६ घन्टे में उस कार्य को समाप्त करता है तो उसे ६ घंटे की समय के अनुसार मजदूरी रु. १ आना ८ दे दी जावेगी, किन्तु बोनस नहीं मिलेगा। यदि वह पांच घंटे में काम समाप्त कर देता है तो उसे रु १ आना ४ मिल जाता है, किन्तु बोनस नहीं मिलता। और यदि वह चार घंटे में काम समाप्त कर देता है तो उसे १ रु. चार घंटे की मजदूरी का मिलता है और आधे घंटे की २ आना मजदूरी बोनस में मिलती है। इस प्रकार उसकी मजदूरी का रेट चार आना प्रति घंटा न होकर ४॥ आना प्रति घंटा हो जावेगा। इस पद्धति का विशेष गुण यह है कि यह बहुत सरल है। मज़दूरों की समझ में आसानी से आ जाती है; साथ ही मालिक को समय की बचत का आधा ही देना पड़ता है। जहां तक मालिक का प्रश्न है, वहां तक तो उसे लाभ ही है किन्तु कुशल मजदूर को अपनी कुशलता का पूरा लाभ नहीं मिलता। यही इस पद्धति का दोष है। साथ ही यदि प्रत्येक कार्य के लिए कितना समय लगना चाहिए, इसको निर्धारित करने में मालिक कुशल मजदूरों के कार्य को स्टैंडर्ड निर्धारित करदें, तो मज़दूरों को बहुत हानि उठानी पड़ सकती है।

रोवान पद्धति

रोवान-पद्धति हैलसे पद्धति से भिन्न है। उदाहरण के लिये यदि कारखाने के अधिकारियों ने किसी कार्य विशेष के लिए १० घंटे निर्धारित किये हैं और कोई मज़दूर उस कार्य को केवल ८ घंटे में समाप्त कर देता है, तो उसको ८ घंटे का $\frac{2}{10}$ अर्थात् १.६ घंटे का प्रीमियम दिया जावेगा। रोवान पद्धति में प्रीमियम कितने घंटे का मिलेगा, उसको

निकालने का नीचे लिखा गुर है:—

जितने घंटे में काम किया × $\frac{\text{जितने घंटे की बचत की}}{\text{जितने घंटे निर्धारित थे}}$ इसका

अर्थ यह हुआ कि जो घंटे प्रीमियम के निकले, उनको मज़दूरों ने जितने घंटे में काम समाप्त किया है, उनमें जोड़ दिया जाता है और उतने की उसे मज़दूरी दे दी जाती है। ऊपर के उदाहरण में मजदूर ने ८ घंटे में कार्य समाप्त कर दिया, किन्तु उसको ९.६ घंटे की मजदूरी मिलेगी। इस पद्धति से आरम्भ में हैलसे पद्धति की अपेक्षा अधिक प्रीमियम मिलेगा। किन्तु यदि मज़दूर आधे समय की बचत कर दे तो हैलसे और रोवान पद्धति से एक समान प्रीमियम मिलेगा। यद्यपि इसकी कोई सम्भावना नहीं होती।

यह पद्धति भी मालिक के लाभ की है, क्योंकि मज़दूर जितने समय की बचत करता है, उसको उसका लाभ नहीं मिलता और न वह इस पद्धति के पेचीदे हिसाब को ही समझ पाता है।

स्लाइडिंग स्केल पद्धति

इस पद्धति में मजदूरी उस वस्तु के विक्रय मूल्य पर निर्भर रहती है। यदि उस वस्तु का मूल्य बढ़ता है, तो मजदूरी की दर ऊँची कर दी जाती है और घटता है तो घटा दी जाती है। यह पद्धति मालिकों की दृष्टि से तो बहुत अच्छी है परन्तु मजदूरों की दृष्टि से उतनी लाभ-दायक नहीं है। कारण यह है कि किसी वस्तु का मूल्य उसकी मांग, द्रव्य की घटती या बढ़ती तथा अन्य बहुत से कारणों पर निर्भर है। अस्तु इस पद्धति को स्वीकार करने से मज़दूरों को जोखिम भी उठाना होगी, जो कि व्यवसायी का कार्य है, न कि मज़दूरों का और जिसके लिए व्यवसायी को लाभ मिलता है।

इसके अतिरिक्त यदि मालिक चाहे तो वस्तु का मूल्य घटा कर मज़-दूरों को कम मज़दूरी देकर अपने लाभ को बढ़ा सकता है। यदि वह

वस्तु ऐसी हो कि जिसके मूल्य घटा देने से उसकी मांग बहुत बढ़ जावे तो मालिक को दोहरा लाभ हो सकता है। एक तो अधिक बिक्री पर थोड़ा लाभ लेने पर भी, उसको कुल लाभ बहुत अधिक होगा, दूसरे मूल्य के घटने के बहाने वह मज़दूरी कम कर सकेगा। इसके विपरीत यदि मज़दूर संगठित हैं तो वे उत्पत्ति कम करके, वस्तु के मूल्य को बढ़ाने का प्रयत्न कर सकते हैं, जिससे कि उनकी मज़दूरी बढ़ सके। यही कारण है कि यह पद्धति अधिक प्रचलित नहीं हो सकती।

बैडाक्स पद्धति

पिछले दिनों में बैडाक्स पद्धति ने लोगों का बहुत अधिक ध्यान आकर्षित किया है। किन्तु बैडाक्स पद्धति केवल मज़दूरी देने की ही पद्धति मात्र नहीं है। क्योंकि बैडाक्स कंपनी अपने विशेषज्ञों को प्रत्येक कारखाने की उत्पत्ति के ढंग का अध्ययन और जांच करने के लिए भेजती है। वे उक्त कारखाने की उत्पादन पद्धति में क्या सुधार हो सकते हैं, इसके सम्बन्ध में सुझाव देते हैं। बैडाक्स कम्पनी ने एक कार्य का मानदण्ड निर्धारित किया है, जो कि एक औसत मज़दूर, साधारण परिस्थिति में सामान्य तेज़ी से कार्य करते हुए और उतना विश्राम करते हुए कर सकता है, जितना विश्राम करने की बैडाक्स पद्धति आज्ञा देता है। दूसरे शब्दों में बैडाक्स पद्धति में यह निर्धारित कर दिया जाता है कि एक औसत मजदूर यदि सामान्य रूप से उनके बताये हुए ढंग से कार्य करे तो निर्धारित कार्य कर सकता है, जो भी मजदूर बैडाक्स पद्धति के अनुसार निर्धारित ६० यूनिट प्रति घंटा से अधिक उत्पादन करता है, उसको जितना अधिक वह उत्पादन करता है, उसका तीन चौथाई लाभ दिया जाता है। परन्तु इस पद्धति का मजदूरों द्वारा विशेष रूप से विरोध हुआ है।

लाभ में हिस्सेदारी (Profit Sharing)

कुछ विद्वानों का विचार था कि यदि मज़दूरों को भी कारखाने के

लाभ में साझेदार कर लिया जावे तो वे अधिक मन लगा कर काम कर सकेंगे। उनको एक निश्चित रेट से दैनिक कार्य के लिए मज़दूरी दी जावे। बोनस इत्यादि कुछ न दिया जावे, परन्तु लाभ का एक अंश वर्ष के अन्त में उन्हें दे दिया जावे। लाभ में हिस्सेदारी के भी बहुत से दोष हैं। पहले तो लाभ बहुत सी बातों पर निर्भर होता है, केवल मज़दूरों के मन लगा कर काम करने पर ही निर्भर नहीं होता। उदाहरण के लिए वस्तु की बाजार में मांग कम हो जावे अथवा आर्थिक मंदी के कारण उसका दाम गिर जावे अथवा मालिकों की अव्यवस्था और कुप्रबंध के कारण हानि हो जावे, तो मजदूरों के मन लगा कर काम करने पर भी, लाभ के बदले हानि हो सकती है। यही कारण है कि 'लाभ में हिस्सेदारी' ने मजदूरों को कभी भी प्रभावित नहीं किया। इसमें एक कठिनाई यह भी है कि लाभ हानि का सारा ब्योरा तो मालिक ही तैयार करता है। अस्तु यदि वह चाहे तो लाभ को कम करके दिखला सकता है। इन्हीं सब कारणों से लाभ में हिस्सेदारी अधिक प्रचलित नहीं हो सकी।

साझेदारी (Co-partnership)

कुछ उदारमना व्यवसायियों ने मजदूरों को लाभ में हिस्सा देकर उन्हें क्रमशः कारखाने का हिस्सेदार बना लिया और उनके प्रतिनिधि डायरेक्टर भी मालिक के साथ-साथ कारखाने के प्रबन्ध में भाग लेने लगे। इस प्रकार मज़दूरों का भी उस कारखाने पर स्वामित्व स्थापित हो गया। इस प्रकार के उदाहरण इतिहास में बहुत कम हैं और जिन प्रयत्नों में सफलता मिली है, उसका मुख्य कारण यह रहा है कि उन उदारमना ऊंचे व्यक्तित्व वाले व्यवसायियों ने जिन्होंने अपनी पूंजी लगा कर और परिश्रम करके कारखाने को खड़ा किया और सफलता मिलने पर क्रमशः उसको मज़दूरों की चीज़ बना दी, उनके व्यक्तित्व के प्रति मज़दूरों की इतनी ऊंची भावना रहती थी कि यद्यपि वह अकेला

डायरेक्टर होता था; परन्तु उसकी बात को सभी आदरपूर्वक स्वीकार करते थे। वास्तव में इस प्रकार के उदाहरण बहुत कम हैं और साधारणतः पूंजीपतियों अथवा व्यवसायियों से इस मनोवृत्ति की आशा करना भी मूर्खता है। यह तो कुछ भावना-प्रधान उदार व्यक्तियों की सिद्धांतवादिता के चिन्ह मात्र हैं। अस्तु, इस प्रकार की कोई पद्धति पूंजीवादी संगठन में प्रचलित करना असम्भव है।

सहकारी उत्पादन (Co-operative Production)

सहकारी उत्पादन में मालिक को हटा कर मजदूर स्वयं व्यवसायी का कार्य करते हैं, अर्थात् धंधे की जोखिम और उसका नियन्त्रण उनके हाथ में रहता है। वे स्वयं अपने नौकर होते हैं। उत्पादन की सारी जिम्मेदारी उन पर होती है और वे पूंजी उधार लेते हैं। धंधे का लाभ उन्हें मिलता है और उस पर उनका अधिकार स्थापित हो जाता है। इस प्रकार के सहकारी उत्पादन के आदर्श ने बहुत से सामाजिक सुधारकों, राबर्ट ओवन, जान स्टुअर्ट मिल, फौरियर तथा क्रिश्चियन सोशलिस्टों को आकर्षित किया था।

किन्तु इस प्रकार की उत्पादक समितियां सफल नहीं हुई। इसका मुख्य कारण यह है कि आधुनिक बड़ी मात्रा की उत्पत्ति में बहुत अधिक पूंजी और व्यावसायिक योग्यता की आवश्यकता होती है। निर्धन मज़दूरों को बैंक इत्यादि यथेष्ट पूंजी नहीं देते। विशेषज्ञ तथा मैनेजर तथा अन्य शिक्षितवर्ग के लोग मजदूरों के द्वारा संचालित कारखानों में काम करना पसंद नहीं करते। फिर कारखानों में उन मैनेजरों को मज़दूरों पर अनुशासन रखना कठिन होता है, जो वास्तव में उनके मालिक हैं। यदि कोई शरारती मजदूर, जो कि बहुधा अपने अन्य साथियों में प्रभाव रखता है, काम नहीं करना चाहता और मैनेजर इत्यादि उनको दबाना चाहें तो मैनेजर की स्थिति गड़बड़ हो सकती है। यही कारण है कि विशेषज्ञ और अन्य उच्च अधिकारी इन कारखानों में काम नहीं करते

और यहां का अनुशासन ठीक नहीं रहता। मज़दूरों के कारखानों को यथेष्ट पूंजी भी नहीं मिलती; साथ ही माल की बिक्री का भी उचित प्रबन्ध नहीं हो पाता। बड़ी मात्रा का उत्पादन मज़दूर मालिकों द्वारा सफलतापूर्वक नहीं हो पाता। यही कारण है कि इस प्रकार की फैक्टरियाँ सफल नहीं हुईं।

परन्तु छोटी मात्रा में सहकारी उत्पादन बहुत सफल हुआ है। उदाहरण के लिए चीन की औद्योगिक समितियों ने चीन में सहकारी ढंग पर उत्पादन का एक अत्यन्त सफल संगठन खड़ा कर दिया है।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट होता है कि मज़दूर का वास्तविक शोषण तभी बंद हो सकता है जब कि समाजवादी व्यवस्था स्थापित हो; किन्तु इस पूंजीवादी व्यवस्था में उसके लिए "न्यूनतम मज़दूरी कानून" बना कर इतनी मज़दूरी कानून द्वारा निर्धारित कर देनी चाहिए कि उसको मनुष्योचित जीवन व्यतीत करने के साधन प्राप्त हो सकें।

भारत में मजदूरी

भारत में मज़दूरी पद्धति अत्यन्त अस्तव्यस्त दशा में है। भिन्न-भिन्न धंधों में मज़दूरी निर्धारित करने की पद्धति भिन्न है और एक स्थान में भी सब कारखानों में मज़दूरी एक-सी हो, यह बात नहीं है। आप किसी औद्योगिक केन्द्र में चले जाइये, दो कारखानों की दीवारें मिली हुई हैं और उनमें मज़दूरी में आकाश-पाताल का अन्तर है। एक ही मालिक के दो भिन्न कारखानों में भी मज़दूरी में बहुत विभिन्नता है। अभी तक भिन्न-भिन्न धंधों की मज़दूरी का कोई स्टैंडर्ड निर्धारित नहीं किया गया है। यद्यपि १९२६ में मज़दूरी अदायगी कानून पास हो गया है। किन्तु अब भी मालिक मनमाना जुर्माना करते हैं, मज़दूरी का कुछ भाग वस्तुओं में देते हैं और समय पर मज़दूरी नहीं देते। न देश में मज़दूर आन्दोलन ही इतना प्रबल है कि देश भर में मज़दूरी का एक-सा स्केल

निर्धारित करवाने में सफल हो सके। यही कारण है कि मज़दूरी निर्धारित करने का देश में न तो कोई सर्वमान्य एक समान आधार ही है और देश में मज़दूरी सम्बन्धी कल्पनातीत भिन्नता पाई जाती है।

चाय के बाग में मजदूरी

चाय के बागों में "हाजिरा" अर्थात् एक निर्धारित कार्य के लिए एक बेसिक मजदूरी होती है। जब मजदूर से अतिरिक्त कार्य (ओवर टाईम) लिया जाता है तो उस बेसिक रेट में कुछ वृद्धि करके अतिरिक्त कार्य की मज़दूरी दी जाती है। उसे टिक्का, नागदा, या डबली कहते हैं। किन्तु कुछ बागों में 'हाजिरा' (निर्धारित कार्य) एकसा नहीं होता और कभी-कभी बागीचों के मालिक हाजिरा रेट को ही घटा देते हैं, जिसके कारण अधिक कार्य करने पर भी मज़दूर को अधिक मजदूरी प्राप्त नहीं होती। कहीं-कहीं बेसिक रेट घटाने के साथ दूसरा और तीसरा हाजिरा भी जोड़ दिया जाता है। पहिले हाजिरा के लिए जो ४ से ६ घंटे का होता है, पुरुष को चार से पांच आना और स्त्रियों को तीन से चार आना मजदूरी मिलती है। बच्चों को एक से तीन आना तक मजदूरी दी जाती है। हाजिरा कार्य के निर्धारित मानदंड (स्टैंडर्ड) को कहते हैं। उदाहरण के लिए भूमि जोतनी हुई तो ३५ से ७० ताल तक एक हाजिरा होगा। जब पत्तियों को तोड़ने का समय आता है तो हाजिरा पद्धति को छोड़ दिया जाता है, और एक पैसा प्रति पौंड के हिसाब से मजदूरी दी जाती है। कहीं-कहीं पत्तियों को तौलने में खूब धोखा दिया जाता है, पौंड की जगह सेर का प्रयोग किया जाता है और इस प्रकार मजदूर की मजदूरी कम कर दी जाती है। पत्तियाँ तोड़ने के मौसम में औरतें पुरुषों से अधिक कमा लेती हैं। उनकी औसत मजदूरी एक रुपया प्रति दिन पहुँच जाती है। बाग के मालिकों के संघों ने एक प्रकार का समझौता कर लिया है, जिसके अन्तर्गत कोई भी बगीचा अधिक मजदूरी नहीं दे सकता। दुर्भाग्यवश इस धन्धे में मजदूर संगठन का चिन्ह

भी नहीं है। इस कारण मज़दूर अपने वेतन को बढ़वाने के लिये आन्दोलन भी नहीं कर सकते।

बागों के मजदूरों का वास्तविक वेतन क्या है, यह जान सकना कठिन है। क्योंकि नकद मज़दूरी के अतिरिक्त उन्हें बहुधा खेती के लिये थोड़ी सी भूमि का टुकड़ा मिलता है, जलाने के लिये लकड़ी मिलती है और पशुओं को चराने की सुविधा मिलती है। किन्तु यह सब बागों में एक समान नहीं होता। बहुत से मजदूरों को भूमि नहीं मिल पाती। जहां कहीं भूमि दी जाती है, वह दो बीघा से अधिक नहीं होती।

बहुत से बागों में मजदूर को 'सरदार' के द्वारा आरम्भ में कुछ पेशगी रुपया दिया जाता है और जब वह बाग में आता है तो उसके वेतन में से क्रमशः वह रुपया काट लिया जाता है। यही नहीं, मजदूर प्रति सप्ताह अपने निर्वाह के लिए भी कुछ रुपया पेशगी लेता रहता है। फिर मजदूर सरदार अथवा मिस्त्री की देख रेख में समूह (गैंग) में काम करते हैं और सरदारों को मजदूरों की मजदूरी पर एक आना से दो आने प्रति रुपया कमीशन मिलता है। आसाम में सरदारों को मासिक वेतन दिया जाता है। इन सब कारणों से मजदूर की मजदूरी का हिसाब बहुधा ठीक नहीं हो पाता। सरदार क्लर्कों से मिल कर मजदूरों की मजदूरी खा जाता है।

सच तो यह है कि चाय के बागों के मजदूरों की दशा दयनीय है। उनकी मजदूरी बहुत कम है और जब कि जंगली जातियों के मजदूर वहां अधिक संख्या में काम करते हैं और उनमें कोई संगठन नहीं है, तब यह आवश्यक है कि वहां कानून द्वारा न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करदी जावे।

खानों में काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी

भारतवर्ष में लगभग ३४०,००० मजदूर खानों में काम करते हैं, इनमें से अधिकांश कोयले की खानों में काम करते हैं। कोयले की

खानों में तथा अन्य खानों में मजदूरी टब, कार, या ट्राली के आधार पर दी जाती है, अर्थात् खोदने वाले कोयला खोदते हैं और लादने वाले टबों में लाद देते हैं। जितने टब कोयला वे खोद कर लाद देते हैं, उसी हिसाब से मजदूरी दी जाती है। कोयले की खानों में लादने वाला उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि कोयला खोदने वाला। क्योंकि मजदूरी सबों को सामूहिक रूप से मिलती है। दूसरे शब्दों में एक टोली जितना कोयला काटती और लादती है, उसके हिसाब से मजदूरी पूरी टोली को एक साथ दी जाती है। पहले कोयले की खानों में कोयला काटने वाले की पत्नी उसके साथ काम करती थी और वह खुदे हुए कोयले को टब में भर देती थी। किन्तु जब से खानों में स्त्रियों को काम करने की मनाई हो गई है, तब से कोयला खोदने वालों के साथ अकुशल मजदूर काम करते हैं, जो कोयले को टबों में भरते रहते हैं। कहीं-कहीं मजदूर एक सरदार की अध्यक्षता में टोली (गैंग) में काम करते हैं और वह सरदार ठेकेदार होता है। अर्थात् कोयले की खान उसे प्रति टन एक निश्चित रेट से कोयले को खोदने और लादने की मजदूरी देता है। वह ठेकेदार सरदार स्वयं अपने मजदूर रखता है और काम करवाता है।

खानों में काम करने वालों की मज़दूरी का ठीक-ठीक हिसाब लगाना बहुत कठिन है। कारण यह है कि टब या ट्राली सब एक साइज़ के नहीं होते। यही नहीं, एक टब में कितना कोयला लादा जावेगा, यह भी निश्चित नहीं होता। फिर मज़दूर गैंग में काम करते हैं और यदि वे सरदार की अध्यक्षता में काम करते हैं तब तो उनकी मज़दूरी का हिसाब लगाना और भी कठिन होता है। रायल लेबर कमीशन ने आज से लगभग १८ वर्ष पूर्व कोयले की खानों में एक साइज के टबों की नितान्त आवश्यकता बतलाई थी; किन्तु अभी तक यह आवश्यक सुधार नहीं हो पाया है।

अधिकांश कोयले की खानों में ३० क्यूबिक फीट से ३६ क्यूबिक फीट तक के टब प्रचलित हैं। किन्तु इन टबों में कितना कोयला लादा

जावेगा, इसका भी कोई ठीक नहीं रहता । १० हंडरवेट से १६ हंडरवेट तक कोयला इन टबों में लादा जाता है । इस भिन्नता के कारण मजदूरों को बहुत हानि होती है । बात यह है कि प्रत्येक कोयले की खान में टब में कितना कोयला भरना चाहिए, यह निश्चित कर दिया गया है । यदि उससे कोयला कम भरा जाता है तो मजदूरी एक चौथियाई से आधी तक घटा दी जाती है । कुछ कोयले की खानों में एक टन कोयले पर मजदूरों को एक टब कोयला मुफ्त भरना पड़ता है । सरदार उनको इसकी कोई मजदूरी नहीं देता । यह अतिरिक्त टब इस लिये भरवाया जाता है कि यदि कहीं निर्धारित राशि से कम कोयला भरा गया हो तो उस कमी को पूरा किया जा सके । निर्धारित राशि से कोयला कम न भरा जावे, इसके लिए अधिकारी मजदूरों को विवश करते हैं कि वे टबों में उस निर्धारित राशि से अधिक कोयला भरें । इससे अधिकारियों को यह लाभ होता है कि जो कोयला निर्धारित राशि से अधिक भरा जाता है, उसकी मजदूरी मजदूरों को नहीं दी जाती, वरन् वह उच्च अधिकारियों और सुपरवाइज़रों में बांट दी जाती है । अथवा कम्पनी को उतना लाभ मिल जाता है । इस प्रकार हजारों मजदूरों की मजदूरी मारली जाती है और उनको अपने काम की पूरी मजदूरी नहीं मिलती ।

पिछले दिनों कोयले की खानों की मजदूरी घट गई, इसके नीचे लिखे कारण हैं । १— नीची टब रेट । २—टबों की कमी और समय पर मजदूरों को भरने के लिए टबों का न मिलना । ३—मजदूरों का महीने में कुछ दिनों काम पर न आना । ४— कोयले के धन्धे की अस्त-व्यस्त दशा ।

टबों की कमी

साधारणतया एक खोदने वाला और एक भरने वाला तीन स्टैंडर्ड साइज़ (३० क्युबिक फिट) के टब एक दिन में भर देता है । परन्तु टब न मिलने के कारण वे पूरी मजदूरी नहीं कमा सकते । क्योंकि यदि वे कोयला काट कर छोड़ दें और उन्हें टब न मिलें तो दूसरे दिन दूसरी

टोली उनका कोयला चुरा ले सकती है। इस कारण मजदूरों की बहुत सी मजदूरी मारी जाती है। आवश्यकता इस बात की है कि कोलियरों में अधिक टब हों और उन टबों का पूरा-पूरा उपयोग हो। साथ ही कोयले की खानों में सरदार, टब मेकर, और सुपरवाइजर चालाकी से मजदूर की मजदूरी खा जाते हैं। वह कठोरता पूर्वक रोक दिया जावे। मुन्शी लोग भी टबों के लिखाने में चालाकी करते हैं। उसके लिए एक युक्ति यह की जा सकती है कि प्रत्येक मज़दूर को जब वह खान में घुसे, एक टिकिट दिया जावे जो कि कोयला भरते समय मज़दूर टब में रख दे। टिकिट पर मज़दूर का नम्बर अंकित हो। इस प्रकार टब को उस नम्बर के मज़दूर के हिसाब में लिखा जावेगा कि जिसका टिकिट उसमें है।

काम पर न आना

खानों में काम करने वाले मजदूरों की कम आमदनी होने का एक कारण यह भी है कि मजदूर पूरे दिन काम नहीं करते। बिहार और बंगाल में सदैव खानों में मजदूरों का टोटा रहता है, इस कारण मजदूर अधिक मजदूरी की खोज में खान से दूसरी खान को चले जाते हैं। मजदूरों के काम पर न आने का दूसरा कारण यह है कि जो मजदूर समीपवर्ती गांवों में रहते हैं और खेती करते हैं, वे फसल बोने के समय तथा फसल काटने के समय खानों का काम छोड़ कर चले जाते हैं, अर्थात् जुलाई अगस्त तथा नवम्बर में मजदूर खानों में काम नहीं करते। सितम्बर और अक्टूम्बर तथा दिसम्बर से जून के मध्य तक मज़दूर खानों में काम नियमित रूप से करते हैं। जब से खानों के अन्दर स्त्रियों को काम करने की मनाही करदी गई है, तब से मजदूर महीने में एक सप्ताह के लगभग अपने गांवों में परिवार की देख भाल करने के लिऐ जाते हैं। एप्रिल और मई में विवाहों के कारण मजदूर खानों में कम काम करते हैं। खान में काम करने वाले मजदूर सप्ताह में

चार दिन कार्य करते हैं। बिहार लेबर कमेटी के अनुसार खानों में मज़दूरों की उपस्थिति इस प्रकार थी।

सप्ताह में उपस्थित

दिनों की संख्या	मज़दूरों की प्रतिशत (उपस्थिति)
६	१०%
५	४५%
४	२५%
४ से कम	२०%

मजदूरों की अनुपस्थिति के मुख्य कारण यह हैं। १. कठिन परिश्रम के उपरान्त विश्राम की आवश्यकता २. शराब और जुए का अत्यधिक व्यसन ३. स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन के साधनों का अभाव। जिन कोयले की खानों ने मजदूरों को रहने और उनके मनोरंजन इत्यादि की अच्छी सुविधा प्रदान की है, वहां अनुपस्थिति बहुत कम है। अस्तु इस परिस्थिति में सुधार करने के लिए अच्छे मकान, अधिक मजदूरी, काम करने की अच्छी व्यवस्था, अच्छे मनोरंजन के साधन और ऊंचे दर्जे का सामाजिक जीवन आवश्यक है।

आवश्यकता इस बात की है कि कोयले के धंधे में भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जावे, जिसके नीचे कोई व्यक्ति मजदूरी न पावे।

सूती वस्त्र व्यवसाय में मज़दूरी

यद्यपि सूती वस्त्र-व्यवसाय भारत का सबसे पुराना संगठित धंधा है, किन्तु सूती वस्त्र के कारखानों में मजदूरों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। यही नहीं कि भिन्न-भिन्न केन्द्रों में मजदूरी की दर बहुत भिन्न है, वरन् एक केन्द्र में ही भिन्न-भिन्न कारखानों की दर भिन्न है। वस्तुतः मदरास, बंगाल और मध्यप्रान्त में सूती मिलों के

मजदूरों की मजदूरी बहुत ही कम है। परन्तु बम्बई और अहमदाबाद में मजदूरी अधिक है।

बात यह है कि खेती में पूरे वर्ष काम न मिलने के कारण तथा भूमि पर जन संख्या का अत्यधिक भार होने के कारण तथा घने आबाद प्रदेशों के मजदूर इन कारखानों में आकर काम करते हैं इस कारण इन औद्योगिक केन्द्रों में भी मजदूरी बहुत कम रहती है। मजदूरों की अत्यधिक संख्या होने के कारण उन प्रांतों में जहां उद्योग-धन्धे अभी अधिक पनपे नहीं हैं, वहाँ मजदूरी बहुत कम है। फिर भी मिल मालिक मजदूरों को कुशल कारीगर बनाने के लिए शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं करते, जिससे कि वे भविष्य में अधिक मजदूरी पा सकें। बम्बई और अहमदाबाद, मदरास और मदुरा में वस्त्र-व्यवसाय ने यथेष्ट उन्नति की है और वहां बढ़िया बारीक कपड़ा तैयार किया जाने लगा है। जिन केन्द्रों में बढ़िया सूती वस्त्र तैयार होता है, वहां धन्धा अच्छी अवस्था में है और मजदूरी भी कुछ अधिक है, परन्तु संयुक्तप्रांत, बंगाल, मध्य प्रांत और पंजाब में मोटा वस्त्र तैयार होता है और वहां मजदूरी भी कम है। बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर तथा बम्बई प्रांत के अन्य केन्द्रों में बुनकर एक साथ कई कर्घों पर कपड़ा बुनते हैं। परन्तु बम्बई प्रांत के बाहर दो कर्घों से अधिक एक बुनकर नहीं चला पाता। भारत के अधिकांश कारखानों में एक बुनकर एक कर्घे पर काम करता है। परन्तु बम्बई और अहमदाबाद में एक बुनकर चार कर्घों पर काम करता है। जहां बुनकर दो या दो से अधिक कर्घों पर एक साथ काम करते हैं, वहां काम के घंटे कम हैं और मजदूरी अधिक है। परन्तु जहां कुशल मजदूरों की कमी है, वहां पर लम्बे घन्टे तक कार्य करने पर भी मजदूरी कम है। किसी-किसी प्राँत में अभी उद्योग धंधों की विशेष उन्नति नहीं हुई है, वहां मजदूर महीने में कई दिन अनुपस्थित रहते हैं। इस कारण भी वहां मजदूरी कम है।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष में भिन्न-भिन्न

औद्योगिक केन्द्रों तथा एक ही केन्द्र की भिन्न-भिन्न मिलों में मजदूरी की दरें भिन्न हैं। यह ठीक है कि कुछ सीमा तक कच्चे माल के अच्छे बुरे होने पर, यन्त्रों की भिन्नता तथा काम करने की व्यवस्था पर कुछ हद तक मजदूरी की भिन्नता अवश्यम्भावी है। परन्तु इतनी अधिक भिन्नता किसी प्रकार उचित नहीं कही जा सकती। आवश्यकता इस बात की है कि मजदूरी की दरें एक सी हों। ऐसा न होने से मजदूर ऊंची मजदूरी की खोज में एक कारखाने से दूसरे कारखाने को दौड़ते रहते हैं। यदि एक मजदूर एक ही कारख़ाने में अधिक दिनों तक स्थायी रूप से काम कर सके तो वह अधिक कुशल हो सकता है। मज़दूरी की दरों में भिन्नता का एक परिणाम यह होता है कि एक ही औद्योगिक केन्द्र में भिन्न-भिन्न कारख़ानों में एक ही कार्य करनेवाले मज़दूर भी संगठित नहीं हो पाते। सच तो यह है कि मजदूरी की भिन्नता का बहुत बुरा प्रभाव होता है। वस्त्र व्यवसाय में बहुत सी हड़तालों का मूल कारण यही होता है कि मजदूरी की दरें भिन्न हैं। अतएव मजदूरों में शान्ति बनाये रखने के लिए और उन्हें एक कारख़ाने में स्थायीरूप से रखने के लिए यह आवश्यक है कि मजदूरी की यह भिन्नता दूर कर दी जावे।

अभी तक केवल अहमदाबाद में मजदूरी की दरों को एक समान करने का प्रयत्न किया गया है, अन्य केन्द्रों में उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया। अहमदाबाद में लगभग ७० प्रतिशत मजदूरों की मजदूरी का स्टैंडर्ड निर्धारित कर दिया गया है। अहमदाबाद में जो स्टैंडर्ड मजदूरी निर्धारित है, उसका मुख्य कारण यह है कि वहां मज़दूर आन्दोलन अधिक शक्तिवान है और वहां का मजदूर संगठन सबल है।

किन्तु मजदूरी की दरें एक समान कर देने से ही काम नहीं चलेगा। आवश्यकता इस बात की है कि सूती वस्त्र व्यवसाय में भी न्यूनतम मजदूरी कानून द्वारा निर्धारित कर दी जावे। बम्बई टैक्सटाइल लेबर इनक्वायरी कमेटी (बम्बई प्रान्त के सूती वस्त्रों के कारख़ानों में काम

करने वाले मजदूरों की जांच कमेटी-१६४० ने बम्बई प्रान्त में भिन्न-भिन्न केन्द्रों के लिए सूती वस्त्र के कारखानों में न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने की सिफारिश की थी।

जूट मिलों में मजदूरी

जूट का धंधा भी देश का एक महत्व-पूर्ण और प्रमुख धन्धा है, जिसमें लगभग ३५०,००० मजदूर काम करते हैं। जूट के धन्धे को १६३६ के महायुद्ध के पूर्व घोर मन्दी का सामना करना पड़ा था। किन्तु धंधे का नवीन संगठन न करके जूट मिल मालिकों ने मजदूरों के रहन-सहन के दर्जे को नीचा करके मन्दी का सामना किया। जूट मिलें सप्ताह में पांच दिन या चार दिन ही काम करती थी। प्रत्येक मिल अपने दस प्रतिशत कर्घे काम में नहीं लाती थी। ऊपर से मजदूरी की दरें भी कम कर दी गई थीं। इस प्रकार जूट के कारखानों में काम करने वालों की आमदनी बहुत कम हो गई थी। इसी का परिणाम था कि जूट के धंधे में १६२६ और १६३७ में आम हड़तालें हुईं। उस समय मजदूरों ने ३०रु. मासिक न्यूनतम मज़दूरी, मुफ्त रहने की सुविधा, बेकारी अलाउंस, निःशुल्क शिक्षा और सम्बन्धियों को नौकरी मिलने की मांग की थी।

युद्ध आरम्भ होने पर काम के घन्टे बढ़ा कर ६० कर दिये गए और जो कर्घे बन्द कर दिये गए थे, वे भी चला दिये गए। किन्तु शीघ्र ही जूट की मांग न होने पर फिर काम के घन्टे ५४ कर दिये गए और दस प्रतिशत कर्घे बन्द कर दिये गए। १६४३ में जाकर कहीं फिर १० प्रतिशत बन्द कर्घे चलाये गए। अस्तु, हम देखते हैं कि जूट मिल में मज़दूरों की स्थिति अच्छी नहीं। जूट की मांग की स्थिरता न होने के कारण जूट के कारखानों में मजदूरों की मांग घटती-बढ़ती रहती है। इस पर भी जूट के कारखानों में मजदूरी बहुत कम है। रायल लेबर कमीशन ने जब भारतीय मजदूरों की दशा की जांच की थी, उस समय जो मज़दूरी वहां दी जाती थी, लगभग वही मजदूरी वहां मजदूरों को दी जाती है।

यद्यपि जूट के कारखाने कलकत्ता के चालीस मील उत्तर और चालीस मील दक्षिण हुगली नदी के दोनों ओर केन्द्रित हैं और अधिकतर उनका प्रबन्ध अंग्रेजी मैनेजिंग एजेंटों के हाथ में है और सभी कारखाने लगभग जूट का सब सामान बनाते हैं, फिर भी वहां मजदूरी की एक-सी दर नहीं है। एक ही काम के लिए भिन्न-भिन्न कारखानों में मजदूरी भिन्न है। यह बहुधा देखने को मिलता है कि कारखानों के अहातों की दीवार एक दूसरे से मिली हुई हैं, परन्तु उन दोनों कारखानों में मजदूरी की दरें बहुत भिन्न हैं। यही नहीं, वे मिलें जो एक ही मैनेजिंग एजेंट के प्रबन्ध में हैं, उनमें भी मजदूरी भिन्न है। जूट कारखानों में काम करने वाले मज़दूरों की, आज से बहुत दिन हुए तबसे बराबर यह मांग रही है कि जूट के धन्धे में तो एक कार्य के लिए एक-सी मज़दूरी निर्धारित करना अत्यन्त आवश्यक और सरल है; क्योंकि देश के समस्त कारखाने एक ही केन्द्र में हैं। जूट के कारखानों में इसी प्रश्न को लेकर बहुत सी हड़तालें भी हुईं; परन्तु मिल मालिकों ने अभी तक इस ओर ध्यान नहीं दिया।

इसका परिणाम यह होता है कि मज़दूर अधिक मज़दूरी की खोज में एक मिल से दूसरी मिल में चक्कर काटा करता है। कहीं भी स्थायी रूप से रह कर काम नहीं करता। यदि बंगाल जूट मिल ऐसोसियेशन चाहे तो बहुत आसानी से सब जूट मिलों में एक-सी मज़दूरी की दरें प्रचलित कर सकती है। क्योंकि सभी जूट के कारखाने उससे सम्बन्धित हैं।

इंजीनियरिंग तथा लोहे का धंधा

इस धंधे में काम करने वालों को बहुधा बहुत गरमी और खतरे में काम करना पड़ता है। यही नहीं, इस धंधे में कार्य करने वालों पर शारीरिक परिश्रम भी बहुत अधिक पड़ता है। यही कारण है कि संसार के प्रत्येक देश में इस धन्धे में काम करने वालों की मजदूरी अन्य धन्धों में काम करने वालों की अपेक्षा साधारणतः दुगनी होती है। वहां भारतवर्ष

में इस धंधे में काम करने वालों की मजदूरी सूती वस्त्र व्यवसाय में दी जाने वाली मज़दूरी से भी कम है। नीचे दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जावेगा।

	१	२	३
देश	लोहे के धन्धे में प्रति घंटा मजदूरी की दर	वस्त्र व्यवसाय में प्रति घंटा मजदूरी की दर	(१) और (२) का अनुपात
भारत...	रु. ०'१५०	रु. ०'१५२	०'९८७
ब्रिटेन...	१' ३७ शि.	०'७० शि.	१'९६
संयुक्त राज्य... अमेरिका...	०'८२६ डौलर	०'४१२ डौलर	२'०
जापान...	०'४०४ यन	०'१७१ यन	२'२६

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जहाँ अन्य देशों में इस धंधे में मजदूरी अन्य धंधों की अपेक्षा लगभग दुगनी है, वहाँ भारतवर्ष में कुछ कम ही है। यह ऐसी स्थिति है जो कि नितान्त असहनीय है। बिहार लेबर इनक्वायरी कमेटी ने जमशेदपुर के ताता के इस्पात के कारखाने के मजदूरों की दशा की जाँच की थी। कमेटी का कथन था कि ताता के कारखाने में २८६७४ मजदूर काम करते थे, उनमें ७३६५ मजदूर ऐसे थे, जिनकी मजदूरी महीने में १५ से कम थी। ५१२२ मज़दूर ऐसे थे जिनकी मजदूरी १५ से २० रु. मासिक थी। कमेटी ने हिसाब लगा कर देखा था कि उस समय जमशेदपुर में २० रु. मासिक से कम में एक मजदूर अकेला अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकता था। वह २० रु. मासिक में आराम से रह सकता हो, ऐसी बात नहीं थी। वह केवल भोजन तथा अन्य अत्यंत आवश्यक वस्तुओं को पा सकता था। ऊपर के विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि लोहे के धन्धे में कितनी मजदूरी कम है। दूसरे शब्दों में ताता कम्पनी के १२,००० मजदूरों को जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी नहीं मिलती थी।

पिछले वर्षों में ताता के लोहे के कारखाने में (Rationalisation) किया गया। मजदूरों की संख्या कुछ कम हो गई। फिर भी उत्पत्ति क्रमशः १९२३ में २,५०,००० टन से १९३९ में ७२१,००० टन हो गई और पिछले दिनों तो इस कारखाने में मानों सोना बरसा है। लाभ की कुछ न पूछिये– ३० रु. का डिफर्ड शेयर लगभग ३ हजार रुपये में बिकता है, परन्तु आधे मजदूरों को भरपेट भोजन भी नहीं मिलता। यदि इसको शोषण न कहा जावे तो क्या कहा जावे ? कोई भी सभ्य देश इस प्रकार के शोषण को एक क्षण के लिए भी सहन नहीं कर सकता।

जिस कारखाने ने १९३७-३८ में रु. २,३८,८०,००० मुनाफे में अपने हिस्सेदारों को बांट दिये, जो प्रतिवर्ष प्रतिशत लाभ अपने हिस्सेदारों को बांटता है, उसके आधे मज़दूर आधा पेट भोजन करें— यह अत्यन्त लज्जा की बात है। फिर इस धंधे को पिछले २५ वर्षों से संरक्षण मिला हुआ है। सरकार ने बाहर से आने वाले लोहे पर भारी कर बिठा कर खरीददारों को इस्पात का ऊंचा मूल्य देने पर विवश किया है। आवश्यकता तो इस बात की है कि हिस्सेदारों को उचित लाभ बांट देने के उपरान्त जो भी बचे, वह लाभ मजदूरों में बांट दिया जावे।

ऊपर हमने भारत के प्रमुख धंधों में मजदूरों की क्या स्थिति है, उसका विवेचन किया। जो मौसमी कारखाने हैं, उदाहरण के लिये शक्कर कपास के पेंच, जूट के पेंच, चावल साफ करने के कारखाने, बीड़ी के कारख़ाने इत्यादि इनकी दशा तो और भी शोचनीय है। क्योंकि यह कारख़ाने औद्योगिक केन्द्रों में न होकर, कच्चा माल जहां पैदा होता है, वहां होते हैं। खेती में काम करने वाले मजदूर तथा चाय के शहरों में रहने वाले मज़दूर इन कारख़ानों में काम करते हैं। इनका कोई संगठन नहीं है। मालिक जो भी मजदूरी दे दे, वही गनीमत है। इन कारखानों में मजदूरों का जैसा शोषण हो रहा है, वैसा सम्भवतः कहीं भी देखने को नहीं मिलेगा। भविष्य में भी इन मौसमी कारखानों के

मजदूरों का कोई सबल संगठन हो सकेगा, इसमें बहुत संदेह है। इनके शोषण का अन्त तो न्यूनतम मजदूरी कानून बना कर कम से कम मिल मालिक को प्रत्येक मजदूर को कितनी मजदूरी देनी होगी, यह निश्चित कर देने से ही हो सकता है। लेखक का मत है कि इन कारखानों में तो सरकार को तुरन्त ही एक आज्ञा निकाल कर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देनी चाहिए। भारतवर्ष में यों ही मजदूरी बहुत कम है और जिन धंधों में मजदूर संगठित नहीं हैं, वहां की दशा तो अत्यन्त शोचनीय है।

भारतीय मज़दूरों के रहन सहन का दर्जा

ऊपर दिये हुए विवरण से यह तो स्पष्ट हो ही गया होगा कि भारत में मजदूरी बहुत कम है और उसको ऊंचा उठाने के लिए न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने की नितान्त आवश्यकता है। मजदूरों की संख्या अधिक होने से और उनकी मांग कम होने से यदि मजदूर काम पाने के लिए बहुत कम वेतन पर कार्य करना स्वीकार कर लेते हैं तब क्या मालिक को उनकी इस दयनीय स्थिति का लाभ उठाने देना न्याय है। जिस मजदूरी से मज़दूर को भर पेट भोजन भी प्राप्त नहीं होता वह आधे पेट रह कर अपने हाड़ मांस को कारखानों में सुखाता है उस मज़दूरी को देना देश में जुर्म बना देना चाहिए। परन्तु न्यूनतम मज़-दूरी के प्रश्न को लेने से पहले हमें भारतीय मजदूर के रहन सहन के बारे में जान लेना आवश्यक है, क्योंकि न्यूनतम मजदूरी का इससे घनिष्ट सम्बन्ध है।

सच तो यह है कि भारतीय मजदूर के रहन सहन का दर्जा बहुत गिरा हुआ है। इसका परिणाम यह होता है कि उसका स्वास्थ शीघ्र नष्ट हो जाता है और उसकी कार्यक्षमता घट जाती है। किन्तु भारतीय मिल मालिकों का यह विश्वास है कि यदि भारतीय मजदूर की मजदूरी बढ़ा दी जावे तो वह उसका उपयोग अपने रहन सहन के दर्जे को ऊंचा

उठाने में नहीं करते। मिल मालिकों का यह विश्वास है कि भारतीय मज़दूर का रहन सहन का दर्जा निश्चित है, उसमें परिवर्तन नहीं होता। यदि उनकी मज़दूरी बढ़ा दी जावेगी तो या तो मज़दूर महीने में अधिक दिन गैर हाज़िर रहने लगेंगे अथवा बढ़ी हुई आमदनी को शराब तथा अन्य बेकार की बातों पर व्यर्थ में व्यय कर देंगे। अस्तु मिल मालिकों की यह निश्चित धारणा है कि मज़दूरी बढ़ाने से मज़दूरों को कोई लाभ नहीं होगा। हां, कारखाने की उत्पत्ति में कमी अवश्य हो जावेगी।

यह तर्क बहुत ही गलत है। कतिपय अत्यन्त पिछड़ी हुई जातियों में यह देखने में आता है कि वे अपनी बढ़ी हुई आमदनी को शराब पर व्यय कर देते हैं अथवा काम पर नहीं आते। किन्तु उसका यह कारण कदापि नहीं है कि उनमें अपने जीवन को अधिक सुखी और सम्पन्न बनाने की भावना काम नहीं करती। उसका कारण यह है कि उनका न केवल आर्थिक शोषण ही हुआ है वरन उनका सामाजिक शोषण इतना अधिक हुआ है कि वे यह कल्पना ही नहीं करते कि उनकी स्थिति में सुधार भी हो सकता है। अस्तु उनको अधिक मजदूरी देकर उसको किस प्रकार व्यय करना चाहिए यह भी बतलाना आवश्यक है। यह तर्क कि उनको अधिक मजदूरी ही न देना चाहिए मिल मालिकों की शोषण की प्रवृत्ति का द्योतक है। अधिकांश भारतीय मजदूरों की दशा इससे सर्वथा भिन्न है। वे अधिक आय प्राप्त करना चाहते हैं, और यदि उनकी मज़दूरी बढ़ जाती है तो वे अपने रहन सहन का दर्जा भी ऊंचा उठाते हैं। अस्तु मिल मालिकों के तर्क में तनिक भी सार नहीं है।

भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रों में यदि हम मजदूरों के पारिवारिक बजट जमा करें तो हमें ज्ञात होगा कि जो वस्तुयें कल तक भारतीय मजदूरों में विलासिता की वस्तुयें मानी जाती थीं वे ही आज आवश्यक वस्तुयें बन गई हैं। यही नहीं जिन मजदूरों की आमदनी अधिक है उनका भोजन वस्त्र इत्यादि अनिवार्य आवश्यकताओं पर अपेक्षाकृत कम व्यय होता है और फुटकर व्यय अधिक होता है। बम्बई में जहां भारत

के अन्य औद्योगिक केन्द्रों की अपेक्षा मजदूरों की आय अधिक है उनके बजट में मनोरंजन और शिक्षा सम्बन्धी काम बढ़ता पाया गया है। यह इस बात का प्रमाण है कि उनके रहन सहन का दर्जा ऊंचा उठ रहा है। विदेशी व्यवसायियों का यह अनुभव रहा है कि ऊंची मज़दूरी देना मालिक के लिए सस्ता और लाभदायक है। क्योंकि ऊंची मज़दूरी पाने से मज़दूर का रहन सहन का दर्जा ऊंचा उठता है और उसकी कार्य शक्ति बढ़ती है जिससे मालिक को लाभ होता है। यही कारण है कि विदेशों में मिल मालिक अधिक मजदूरी देने में विश्वास करते हैं परन्तु भारतीय व्यवसायी कम मज़दूरी देने में ही अपना लाभ देखते हैं। कुछ भारतीय व्यवसायियों का भी मत अब बदल रहा है, उन्होंने मज़दूरी बढ़ा कर देखा कि उससे कारखाने में उत्पादन अधिक हुआ और उनको अधिक लाभ हुआ। फिर भी भारत में यह कहावत पूर्ण तरह से सत्य है कि "सस्ता मज़दूर सबसे अधिक महंगा होता है।"

भारतीय मज़दूरों के परिवारों के बजट का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनकी आय का ५० प्रतिशत से अधिक केवल भोजन पर ही व्यय हो जाता है फिर भी जितनी कैलौरी उसको मिलना चाहिए वह उसको नहीं मिल पाता और उसका स्वास्थ्य क्रमशः क्षीण हो जाता है। विशेषज्ञों का कथन है कि प्रति दिन एक मज़दूर को कम से कम ३००० कैलौरी मिलनी चाहिए परन्तु उन मज़दूरों को छोड़ कर कि जिनकी आमदनी बहुत अधिक है अधिकांश भारतीय मजदूरों को इतनी कैलौरी प्राप्त नहीं होती। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूरों के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए जितनी कैलौरी की कम से कम आवश्यकता होती है उतनी कैलौरी भारतीय मज़दूर को प्राप्त नहीं होतीं। यद्यपि वह अपनी आधी से अधिक मज़दूरी केवल भोजन पर ही व्यय कर देता है।

भारतीय मज़दूर के पास बहुत कम वस्त्र होता है। यों तो गरम देश होने के कारण वस्त्रों की कमी मज़दूर की कार्यक्षमता को हानि नहीं

पहुंचाती परन्तु जाड़ों के दिनों में उत्तर भारत में शीत अधिक पड़ता है उस समय अवश्य वस्त्रों की कमी से मज़दूर को कष्ट होता है। निर्धनता के कारण अधिकांश मज़दूर जूते नहीं पहिन पाते इसका परिणाम यह होता है कि उन्हे हुकवर्म रोग हो जाता है और पैर की गाड़ियां तथा तलवे की खाल फट जाती है। हां, जिन मजदूरों की आमदनी अधिक है उनका वस्त्र तथा जूतों पर अधिक व्यय होता है क्योंकि उन्हें अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान रखना पड़ता है।

फुटकर व्यय (स्वास्थ्य, शिक्षा और मनोरंजन पर)

भारतीय मजदूरों के बारे में एंजिल का नियम पूरी तरह से लागू होता है। यदि हम भारतीय मजदूरों के पारिवारिक बजटों का अध्ययन करें तो हमें ज्ञात होगा कि फुटकर व्यय का अनुपात आमदनी के अधिक होने से बढ़ता है। ऊंचे दर्जे के रहन सहन का सब से प्रबल प्रमाण यह है कि स्वास्थ्य शिक्षा और मनोरंजन पर अधिक व्यय किया जावे। यह संतोष की बात है कि भारतीय मज़दूर शिक्षा पर कुछ व्यय करने का प्रयत्न करने लगा है। भारत में धार्मिक तथा सामाजिक समारोहों पर कभी-कभी निर्धन मजदूर को बहुत अधिक व्यय करना पड़ता है। जहां तक यह समारोह उसके नीरस जीवन में परिवर्तन और मनोरंजन के क्षण उत्पन्न करते हैं वहां तक इनका उपयोग है, परन्तु वह कभी-कभी अपनी शक्ति के बाहर इन समारोहों पर व्यय करता है और उसके कारण उसकी आर्थिक स्थिति ख़राब हो जाती है। परन्तु इससे भी अधिक हानिकर व्यय भारतीय मजदूर नशीली वस्तुओं और विशेष कर शराब और ताड़ी पर करता है।

आसाम के चाय के बागों का मजदूर अपनी आमदनी का १२·८ प्रतिशत, जूट मिलों का मजदूर अपनी आय का ११·६ प्रतिशत शराब पर व्यय करता है। बम्बई लेबर आफिस ने इस सम्बन्ध में वहां एक जांच कराई थी। उस जांच का परिणाम यह निकला कि बम्बई का

मजदूर अपनी कुल आमदनी का ८ से १० प्रतिशत शराब पर व्यय करता है। उस जांच से यह भी पता चला है कि वहां ७२ प्रतिशत मजदूर परिवार शराब पीते हैं। शोलापुर में ४३ प्रतिशत और अहमदाबाद में २७ प्रतिशत मजदूर परिवार शराब पीते हैं। बिहार की कोयले की खानों के मजदूरों में मद्यपान सबसे अधिक प्रचलित है। वहां ६० प्रतिशत मजदूर शराब पीते हैं और लगभग पचास प्रतिशत आय शराब पर व्यय कर देते हैं। वहां क्रमशः मजदूर स्त्रियां भी अधिकाधिक शराब पीने लगीं हैं। १९३९ में बिहार की कांग्रेसी सरकार ने झरिया जिले तथा हजारीबाग़ और रांची जिलों के कुछ भागों में शराब बंदी करदी थी; परन्तु बाद को कांग्रेस मंत्रिमंडल के हट जाने पर, नौकरशाही शासन में फिर वहां शराब बिकने लगी। आवश्यकता इस बात की है कि शराब बंदी के साथ-साथ वहां पर शराब के विरुद्ध प्रचार किया जाय और वहां चाय तथा दूध की खपत के लिये प्रोत्साहन दिया जावे। भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रों में जांच करने पर पता चला है कि सभी केन्द्रों में मद्यपान बढ़ रहा है। यह अत्यन्त अवांच्छनीय स्थिति है। इसको जितना शीघ्र रोका जा सके, रोकना सरकार का कर्तव्य है। इसमें मिल-मालिकों तथा ट्रेड यूनियनों का सहयोग अवश्य लेना चाहिए। मद्यपान के बढ़ने से मज़दूर की कार्यक्षमता घटती है और धंधे को हानि पहुंचती है। यदि मिलें मज़दूरों को चाय अथवा दूध देने का प्रबंध कर सकें तो इससे शराब कम होगी, साथ ही मज़दूर की कार्यक्षमता भी बढ़ेगी। इस ओर सरकार, मिल-मालिकों तथा मज़दूर नेताओं सभी को शीघ्र ध्यान देना चाहिए। अभी तक इस महत्वपूर्ण समस्या की ओर लोगों का बहुत कम ध्यान गया है।

मद्यपान को केवल शराब बंदी से समाप्त करना कठिन है। उस दशा में गैर कानूनी ढंग से शराब खींची जाने लगती है। बात यह है कि मजदूर दिन भर अथक परिश्रम करने से अत्यधिक थक जाता है। उसका शरीर तो थका होता ही है, उसका मन भी थक जाता है। अस्तु, वह ताड़ी

या शराब की दुकान पर जाकर थोड़ी शराब पी लेता है और उससे स्फूर्ति का अनुभव करता है। उसके थके हुए शरीर और मन में उत्साह और स्फूर्ति उत्पन्न होती है। अस्तु, मजदूर को कुशल मजदूर बनाने के लिए स्वास्थ्यप्रद मनोरंजन के साधन उपलब्ध करना अत्यन्त आवश्यक है। सरकार को चाहिए कि जहां मजदूर अधिक संख्या में रहते हों, वहां कठोरता के साथ शराब बंदी कर दे और मिल-मालिकों का तथा मजदूर सभाओं का यह कर्तव्य है कि उनको शराब की बुराइयां बता कर चाय अथवा दूध पीने के लिए प्रोत्साहित करे। मालिक कुछ व्यय करके मजदूरों को चाय और दूध पिलावें। इसके साथ ही मनोरंजन के साधन भी मिल-मालिकों तथा मजदूर सभाओं को उपलब्ध करना चाहिए। फुटबाल, और भारतीय खेल का प्रचार करना और उनके लिए सुविधा प्रदान करना मिल-मालिकों का कर्त्तव्य होना चाहिए। मजदूरों की चालों में रेडियो की व्यवस्था करना और ड्रामा, भजन-मंडली, कथा तथा सिनेमा का भी प्रबन्ध होना चाहिए। इससे यह लाभ होगा कि थका हुआ मजदूर शराब की भट्टी पर स्फूर्ति की खोज में नहीं जावेगा. और वह अधिक कार्यशील बनेगा।

सच तो यह है कि भारतीय मजदूर के लिए मद्यपान एक ऐसा भयंकर रोग है, जो उसकी कार्यशीलता को तो नष्ट करता ही है, साथ ही उसको निर्धन और ऋणी भी बनाता है। अतएव इस समस्या की ओर शीघ्र ध्यान देना चाहिए।

मजदूर का ऋण

भारतवर्ष के कारखानों में जो मजदूर काम करते हैं, उनकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो, ऐसी बात नहीं है। यद्यपि उनकी आर्थिक स्थिति के बारे में कोई प्रमाणिक आंकड़े प्राप्त नहीं हैं, परन्तु जो कुछ हमें ज्ञात है उससे इतना तो स्पष्ट ही है कि उनमें से बहुत संख्या में मजदूर कर्जदार हैं। मजदूर के ऋणी होने के बहुत से कारण हैं। मजदूर के

ऋणी होने का पहला कारण तो यह है कि जब किसान अथवा ग्रामीण गांव में रह कर अपना निर्वाह नहीं कर पाता तो वह उस औद्योगिक केन्द्र की ओर भागता है, जहां उसके गाँव के लोग काम करते हैं। जब वह गांव छोड़ कर औद्योगिक केन्द्र को जाता है, तब उसके पास किराये के अतिरिक्त कुछ नहीं होता। यह किराया भी वह महाजन से उधार लेकर, अपनी कोई वस्तु बेंच कर या गिरवो रख कर अथवा अपने किसी सम्बन्धी से रुपया उधार लेकर जुटाता है। अतएव जब वह गांव छोड़ता है, तभी से कर्जदारी आरम्भ हो जाती है। औद्योगिक केन्द्रों में जा कर उसे तुरन्त ही किसी कारखाने में काम मिल जावे ऐसा नहीं होता। वह अपने गांव वालों के पास जाकर ठहरता है और महीने पन्द्रह दिन और कभी-कभी इससे भी अधिक की दौड़-धूप के बाद किसी सरदार को अच्छी रकम देकर नौकरी ठोक की जाती है। इतने दिनों औद्योगिक केन्द्र में रहने और सरदार अथवा जाबर को जो रिश्वत देनी होती है, उसके लिए भी कर्ज लेना पड़ता है। नौकरी लग जाने पर भी मजदूर को पहली तनखाह लगभग सवा महीने बाद मिलती है। किंतु नौकरी लग जाने के बाद उसकी साख कुछ बढ़ जाती है। जिस चाल या बस्ती में वह रहता है, उस बस्तो को सौदा बेंचने वाला बनिया या दूकानदार उसे महीने भर सौदा उधार देता रहता है। अधिकतर तो ऐसा होता है कि मजदूर दूकानदार का क्रीत दास हो जाता है। बहुत से स्थानों पर तो दूकानदार मजदूर का बैंक होता है। मजदूर जो कुछ भी वेतन लाता है, वह दूकानदार को दे देता है और वह दूकानदार से चीजें लेता रहता है। जब उसे किसी विशेष कार्य के लिए अधिक रुपये की आवश्यकता होती है तो वह दूकानदार से उधार भी ले लेता है। इस प्रकार दूकानदार मजदूर का स्वामी बन जाता है और मजदूर उसका ऋणी बन जाता है। जहां जाबर या मिल का फोरमैन या चार्जमैन लेन-देन करता है, वहां मज़दूरों की आर्थिक स्थिति और भी दयनीय होती है। क्योंकि वह मनमाना सूद वसूल करते हैं और उनका रुपया मारा

जाने का कोई भय नहीं होता। अस्तु, ऋणी होने का पहला कारण तो यह है कि मजदूर के पास नौकरी मिलने तक निर्वाह और आवश्यक व्यय करने के लिए रुपया ही नहीं होता।

ऋणी होने का दूसरा कारण वेतन की कमी और निर्वाह के लिए खर्च की अधिकता है। आज जब कि सब चीजों का मूल्य बढ़ गया है, मजदूर का खर्चा भी बेहद बढ़ गया है। किन्तु मजदूरी उसी अनुपात में नहीं बढ़ी है। इसका परिणाम यह होता है कि मजदूर को ऋण लेकर काम चलाना पड़ता है।

किन्तु एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कारण उसके ऋणी होने का उसकी फिजूलखर्ची भी है। वह सामाजिक कृत्यों तथा उत्सवों पर आवश्यकता से अधिक व्यय करता है। बम्बई में इस सम्बन्ध में कुछ जांच की गई तो पता चला कि एक मजदूर विवाह में, २५० रु. के लगभग युद्ध के पूर्व व्यय करता था। बहुत से मजदूर परिवारों की तो यह एक वर्ष की कमाई थी। मद्रास में विवाहों के कारण मजदूर को जो ऋण लेना पड़ा, उसका अनुपात कुल ऋण की तुलना में ४६ प्रतिशत है, कानपुर में ३६ प्रतिशत, जमशेदपुर में ३१ प्रतिशत और बिहार की कोयले की खानों में ३८ प्रतिशत है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मजदूर सामाजिक कृत्यों पर अत्यधिक व्यय करता है।

मजदूर की बेकारी भी उसको ऋणी बनाने का एक प्रमुख कारण है। जिन दिनों वह बेकार रहता है, उसे कोई काम नहीं मिलता। वह अपने महाजनों की दया पर ही निर्भर रहता है। वे भी इस आशा में कि नौकरी लग जाने पर इस आसामी से खूब लाभ कमाया जा सकेगा, उसको ऋण देते रहते हैं। १९३० में बम्बई के मज़दूरों का ४८ प्रतिशत ऋण बेकारी के कारण था।

शराब भी मजदूर के ऋणी होने का एक मुख्य कारण है।

अतएव मजदूर के ऋण को दूर करने के लिए इस बात की आवश्यकता है कि मिलों में जो भरती करते समय रिश्वत लेने की परिपाटी

चल पड़ी है, वह कठोरतापूर्वक बन्द कर दी जावे। ऐसा प्रबन्ध किया जावे कि आवश्यकता से अधिक मजदूर औद्योगिक केन्द्रों में न आवें और कानून बनाकर मृत्यु, विवाह और जन्म इत्यादि सामाजिक कृत्यों पर व्यय को निर्धारित कर दिया जावे, जिससे कि सामाजिक कृत्यों पर मज़दूर अंधाधुंध व्यय न कर सके। साथ ही मज़दूरों के क्षेत्र में शराब-बन्दी कर दी जावे। उनमें चाय और दूध पीने की प्रथा चलाई जावे और शराब के विरुद्ध प्रचार किया जावे।

१९३७ में बिहार लेबर इनक्वायरी कमेटी ने बिहार के मज़दूरों के सम्बन्ध में जांच की थी, उसका परिणाम इस प्रकार था:—

बिहार के कोयले की खानों के मजदूरों का ऋण

आय समूह.	प्रतिशत ऋणी परिवार.	ऋणी परिवार का औसत ऋण. रु. आ. पा.
५ रु. से नीचे	३८%	१६— ०— ९
५ से १० रु. तक	५०%	१९—१३—३
१० से १५ रु. तक	५०%	३४— ४—३
१५ से २० रु. तक	४७%	२८— २—७
२० से ३० रु. तक	३३%	३७—११—५
३० से ४० रु. तक	३७%	४३— ८—४
४० से ५० रु. तक	३१%	१५५—१२—४
५० रु. से ऊपर	—	—

जमशेदपुर के कारखाने के मजदूरों का ऋण

आय समूह.	प्रतिशत ऋणी परिवार.	ऋणी परिवार का औसत ऋण. रु. आ. पा.
५ रु. से नीचे	—	
५ रु. से १० रु. तक	३५·७%	७३—१२—१०
१० रु. से १५ रु. तक	६३·९%	५३—१४— ५
१५ रु. से २० रु. तक	६१·३%	७१— १— ०

२० रु. से ३० रु. तक	७१·१%	१०५—१२—१०
३० रु. से ४० रु. तक	७६·८%	१८७— ६— ५
४० रु. से ५० रु. तक	८२·६%	२६१— ६— ७
५० रु. से ऊपर	७६·६%	२०८— ८— ०

ऊपर दी हुई तालिकाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि मज़दूरों का बहुत बड़ा प्रतिशत ऋणी है। यद्यपि अन्य केन्द्रों के सम्बन्ध में इस प्रकार के आंकड़े हमें प्राप्त नहीं हैं, परन्तु वहां की भी दशा उससे भिन्न नहीं होगी।

किसी-किसी केन्द्र में मिलों ने अपने मज़दूरों को ऋण देने, उनमें मितव्ययिता की भावना जागृत करने के लिए मज़दूरों के लिए सहकारी साख समितियां स्थापित की हैं। यह समितियां उचित सूद पर ऋण देती हैं और अनावश्यक ऋण को रोकती हैं। यही नहीं, मज़दूरों में यह समितियां मितव्ययिता की भावना जागृत करती हैं। किन्तु अभी तक कुछ ही मिलों ने इस ओर ध्यान दिया है। बर्ड और हलिजर कंपनी की मैनेजिंग एजेंसी में जो जूट के कारखाने हैं, उनके लिए एक बैंक खोल रक्खा है, जो दो महीने की तनख़्वाह तक १०½ प्रतिशत सूद पर ऋण देता है। कुछ मिलें अपनी दूकानें भी खोलती हैं, जहां से मज़दूरों को सस्ते मूल्य पर वस्तुएँ मिलती हैं। किन्तु अधिकांश मज़दूर बनिये के कर्जदार होते हैं और वह बनिया उन्हें सौदा उधार देता है। इस लिए मज़दूर इन दूकानों का लाभ नहीं उठा पाते।

अनुसंधान से पता लगा है कि अधिकांश मज़दूर इन दुकानदारों के ही ऋणी होते हैं। यह दुकानदार आटा-दाल इत्यादि सभी आवश्यक वस्तुएँ मज़दूर को उधार देते हैं। इन बिहार की कोयले की ख़ानों का मजदूर अधिकतर इनका ऋणी होता है और उसको ३७·५ प्रतिशत सूद देना पड़ता है। ये दुकानदार मज़दूर की दयनीय दशा का खूब लाभ उठाते हैं। मनमाने ऊंचे दाम लेना तो साधारण सी बात है। हिसाब नक़ली बनाना और रक़म को बढ़ा कर दिखाना साधारण सी बात है।

बहुत-सी मिलों ने सहकारी उपभोक्ता स्टोर खोल रक्खे हैं, जहां से मज़दूर अपनी आवश्यकताओं की वस्तु सस्ते दामों पर ले सकते हैं। परन्तु मजदूर इन दूकानदारों से ही चीज़ें मोल लेना पसंद करता है, क्योंकि वह उधार दे देता है। इस प्रकार ये दूकानदार सहकारी स्टोरों की प्रतिद्वन्दिता में सफल हो जाते हैं।

दूकानदार से भी अधिक भयंकर महाजन काबुली पठान है जो कि १५० से ३०० प्रतिशत तक सूद लेता है और अपने रूपये की वसूली के लिए बलप्रयोग और लाठी को काम में लाता है। कारखानों के फाटकों के पास और चाय के बागों के निकट तनख़ाह के दिन वह लाठी लेकर घूमता है और अपने आसामी को पकड़ कर उसकी तनख़ाह छीन लेता है। काबुली जिस प्रकार मजदूरों का शोषण करता है वह किसी से छिपा नहीं है परन्तु प्रान्तीय सरकारों ने मजदूर को रक्षा के लिए कोई कानून नहीं बनाया। मध्यप्रान्तीय सरकार ने १९३७ में जो ऋणी रक्षा कानून बनाया था वैसा कानून प्रत्येक प्रान्त में बन जाना चाहिए। उस कानून के अनुसार कर्जदार को मारना-धमकाना, कर्जदार का पीछा करना, अथवा उसके रहने के स्थान पर धरना देना या घूमना जुर्म बना दिया गया है। और इस कानून की अवहेलना करने वालों को ३ मास की सजा या ५०० रु. जुर्माने का दंड दिया जा सकता है। बम्बई इत्यादि अन्य प्रान्तों में यह कानून तो बना दिया गया है कि वेतन मिलने वाले दिन कोई व्यक्ति यदि कारखाने के आस पास घूमता नजर आवेगा तो उसका चालान किया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार के कानून से ही कुछ नहीं होगा। मध्य-प्रान्त के कानून के अनुसार एक कानून बनना आवश्यक है। देश में जो भी ऋण अदायगी सम्बन्धी कानून बने हैं वे किसानों के लिए ही बने हैं। उनका लाभ कारखानों के मजदूरों को नहीं मिलता। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार के कानून कारखानों के मज़दूरों के लिए भी बनाये जावें। होना यह चाहिए कि मजदूरों के कर्जों की जांच की जावे और क़ीमतों के

अत्याधिक बढ़ जाने से जो उन पर कर्जे का भार बढ़ गया है उसको कम करने के लिए कानून बना कर कर्जे की रक़म को कम से कम आधा कर दिया जावे और फिर उस बचे हुए ऋण को सहकारी साख समितियां महाजनों को चुका कर मजदूर को ऋण मुक्त कर दें। सरकार और मिल मालिक इन समितियों को पूंजी उधार दे दें और समितियां मज़दूरों से किश्तों में रुपया वसूल कर लें। तभी मज़दूर इस भयंकर शोषण से बच सकता है।

इस शोषण के कारण मज़दूर की कार्यक्षमता नष्ट होती है और वह मनोरंजन तथा अन्य हितकर कार्यों का लाभ भी नहीं उठा पाता। आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्तीय सरकारें लेबर विभाग के द्वारा मज़दूरों के ऋण की जांच करवा कर यह मालूम कर ले कि उनका ऋण कितना है। कानून बना कर ऋण को कम से कम आधा कर दिया जावे। प्रत्येक ऋणी मजदूर को साख समिति का सदस्य बना दिया जावे और सरकार तथा मिल मालिक उस रक़म को समिति को ३ प्रतिशत सूद पर दे दें। समिति मज़दूर के लेनदारों को कम की हुई रक़म चुका दे और मज़दूर की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रख कर उस पर मासिक किश्त बांध दे। समिति को किश्त मिल मालिक वेतन में से काट कर समिति को दे दे। समिति मजदूर से ४ या ५ प्रतिशत सूद ले। इस प्रकार मजदूरों को ऋण मुक्त किया जा सकता है।

केवल एक बार मज़दूरों के ऋण को अदा कर देने से उनकी स्थिति में सुधार नहीं हो जावेगा। उनमें जो सामाजिक तथा धार्मिक कृत्यों पर अंधाधुंध व्यय करने, शराब इत्यादि नशीली वस्तुओं पर धन फेंकने की प्रवृत्ति है, उसको रोकने के लिए उनमें मितव्ययिता की भावना जागृत करनी होगी, इनके विरुद्ध प्रचार करना होगा और फिर उनको कम से कम इतना वेतन दिलाने का प्रयत्न करना होगा कि जिससे वे अपने रहन सहन को सुधार सकें और मनुष्यों जैसा जीवन व्यतीत कर सकें। जब तक मजदूर इस प्रकार ऋण मुक्त नहीं किया जावेगा, तब

तक शिक्षा और अन्य हितकर कार्यों से उसकी स्थिति में सुधार होना सम्भव नहीं है। क्योंकि आज जो उसका महाजनों द्वारा अनवरत शोषण हो रहा है वह उसमें अपनी स्थिति को सुधारने की भावना ही जागृत होने नहीं देता। इसका परिणाम यह है कि उसमें कोई उत्साह नहीं रहता और उसकी कार्यक्षमता नष्ट हो जाती है। अतएव मजदूर की स्थिति को सुधारने के लिए उसको ऋण मुक्त करना आवश्यक है।

आठवां परिच्छेद

न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wage)

मज़दूर और मिल-मालिकों के सम्बन्धों में न्यूनतम मज़दूरी कानून द्वारा एक नवीन अध्याय जुड़ गया है। अभी तक यही माना जाता था कि मज़दूर अपनी स्वेच्छा से मालिक से मज़दूरी के सम्बन्ध में मोल भाव करता है और जिस मज़दूरी पर वह काम करता है, उस पर उसे करने देना चाहिए। राज्य के इसमें हस्तक्षेप करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि मज़दूर अपने हित को स्वयं देख सकता है। हां, विचारकों ने इस बात को अवश्य स्वीकार किया था कि मज़दूर मालिकों से बहुत निर्बल हैं अतएव मोल-भाव ठीक ढंग से नहीं कर सकते। परन्तु मज़दूरों का संगठन हो जाने पर उनकी यह निर्बलता भी कुछ सीमा तक दूर हो गई और अब वे सम्मिलित रूप से मोल-भाव करते हैं, और मालिक से उचित वेतन प्राप्त करने में कुछ हद तक सफल हो जाते हैं। यही कारण था कि मज़दूरों को अपना संगठन बनाने का अधिकार दिया गया। इतना होने से मजदूरों की दयनीय दशा में कुछ तो सुधार अवश्य हुआ। परन्तु मजदूर-संगठन से मजदूरों की सभी कठिनाइयां दूर नहीं हुई और न्यूनतम मजदूर कानून बनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। कारण यह है कि सभी देशों में ऐसे बहुत से धंधे हैं, जिनमें मजदूर संगठित नहीं हैं अथवा

कुछ विशेष परिस्थितियों के परिणाम-स्वरूप वहां मजदूरों का संगठन कठिन है। जिन धंधों में मजदूरों के संगठन स्थापित हो गये हैं, वहां भी एक बहुत बड़ी संख्या में मजदूर असंगठित ही हैं। यह तो ब्रिटेन, संयुक्त-राज्य अमेरिका, जर्मनी इत्यादि उन्नत राष्ट्रों की दशा है। पिछड़े हुए पूर्वी राष्ट्रों का तो कहना ही क्या है, वहां तो अभी मजदूरों के संगठन का श्रीगणेश ही हुआ है। अतएव उन लोगों का यह विचार गलत था कि केवल मजदूरों का संगठन उनके शोषण को रोकने के लिए पर्याप्त है और राज्य को उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है। सच तो यह है कि न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने से भी मजदूरों का शोषण नहीं रुकता, हाँ केवल इतना लाभ अवश्य हो जाता है कि मजदूरों की मजदूरी उससे कम नहीं की जा सकती।

कारखानों में काम करने के घण्टे, न्यूनतम सुविधा तथा रक्षा का प्रबन्ध कानून बनाकर कर दिया गया है और सभी उन कानूनों से परिचित हो गए हैं। अस्तु, उनका अब कोई विरोध नहीं करता, किन्तु अभी तक न्यूनतम मजदूरी कानून का विरोध किया जाता है। विशेष कर भारत-वर्ष में तो उसका मिल मालिकों की ओर से गहरा विरोध होता रहा है। अस्तु, हम यहाँ सैद्धान्तिक रूप से इस प्रश्न पर विचार करेंगे।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि अधिकांश मजदूर संगठित नहीं हैं, इस कारण वे जो भी मजदूरी मिल जाती है, उसको स्वीकार कर लेते हैं। साथ ही वे आपस में एक दूसरे से स्पर्द्धा करके मज़दूरी की दर को और भी घटा देते हैं। यही नहीं, कुछ धंधे ऐसे हैं जो छोटी मात्रा में तथा गृहों में होते हैं और उनमें अधिकतर स्त्रियां काम करती हैं। उनकी दशा तो इतनी दयनीय है कि उसका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। कम मजदूरी पाने के कारण वे यूनियन का चन्दा तक देने में असमर्थ होती हैं, अस्तु, उनमें संगठन हो ही नहीं पाता।

अब प्रश्न यह है कि यदि मजदूर को इतना कम वेतन दिया जावे कि वह जीवन की आवश्यक वस्तुओं को न जुटा सके तो उसका परिणाम

क्या होगा। उसका स्वास्थ्य गिरेगा और देश में रोग बढ़ेंगे। अस्तु सरकार को स्वास्थ्य और चिकित्सा पर अधिक व्यय करना होगा। दूसरे शब्दों में जो व्यय धंधे को वहन करना चाहिए, वह मिल मालिक कर देने वालों पर डाल देता है। यदि सरकार उतना प्रबन्ध नहीं कर पाती तो मजदूर शीघ्र क्षीण होकर मर जाता है और अपने अशक्त जीवन के दिनों में राज्य अथवा समाज पर आर्थिक भार बनता है। राज्य को उसके लिए निर्धन गृह तथा अन्य संस्थाओं को चलाना पड़ता है। यही नहीं कि मिल मालिक इस प्रकार उचित व्यय को वहन नहीं करते, वरन उससे होने वाली राष्ट्रीय हानि की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता।

हमें यह सिद्धान्त तो स्वीकार कर ही लेना होगा कि मज़दूर मनुष्य जैसा जीवन व्यतीत कर सके इतना वेतन देना मालिक के लिए अनिवार्य बना दिया जावे। कुछ लोग यह कहते हैं कि ऐसा करने से बहुत से धन्धे चल ही नहीं सकेंगे, उनमें लाभ कम होगा और फिर कोई भी व्यवसायी उनमें पूंजी न लगावेगा। पहले तो यह धोखा देने की बात है। फिर भी यदि यह तर्क के लिए मान भी लिया जावे कि कुछ धन्धे ऐसे हो सकते हैं कि जो उतना वेतन नहीं दे सकते तो उन धंधों को चलाने की कोई आवश्यकता नहीं है जिनमें काम करने से मनुष्य को पशुवत् जीवन व्यतीत करने पर विवश होना पड़े। और न यही उचित है कि लाभ तो मिले मिल मालिकों को और धन्धे का कुछ व्यय सरकार अपने ऊपर ले। अर्थात् दूसरे शब्दों में वह कर दाताओं पर पड़े। अतएव प्रत्येक व्यवसायी के लिए अनिवार्य कर देना चाहिए कि वह कम से कम इतनी मजदूरी दे कि मजदूर अपना जीवन-निर्वाह कर सके।

अब प्रश्न यह होता है कि न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने का आधार क्या होगा। क्या इतनी मजदूरी न्यूनतम-मज़दूरी निर्धारित कर दी जावे कि जो मनुष्य को जीवित रखने के लिए यथेष्ट हो अथवा इतनी मज़दूरी निर्धारित की जावे कि जिससे मज़दूर की क्षमता बढ़े और वह आवश्यक सुख-सुविधा प्राप्त कर सके। यहां यह भली भांति समझ लेने

की बात है कि न्यूनतम मजदूरी कानून कोई ऐसा चमत्कार नहीं है कि उसके लगते ही मजदूर के जीवन में काया-पलट हो जावेगी। यदि न्यूनतम मजदूरी इतनी कम निर्धारित की गई कि जिससे मजदूर केवल अपने प्राण को शरीर में रखने में सफल हो सका तो उससे मजदूर की दशा में कोई परिवर्तन नहीं होने का जब तक मजदूरी का कानून उतनी मजदूरी निर्धारित नहीं कर देता कि जिससे मजदूर की कार्यक्षमता बढ़ सके और वह जीवन के लिये आवश्यक साधारण सुख सुविधायें प्राप्त कर सके, तब तक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने से कोई लाभ नहीं। उदाहरण के लिए न्यनतम मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि मजदूर पौष्टिक भोजन कर सके, उसके रहने का मकान ऐसा हो जो स्वास्थ्य के लिए हानि पहुंचाने वाला न हो। उसको वस्त्र इत्यादि आवश्यक वस्तुओं को मिलने में कठिनाई न हो और शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, मनोरंजन के साधन उपलब्ध हों। अस्तु, प्रत्येक देश में मजदूरों को इतना वेतन तो अवश्य ही मिलना चाहिए कि वह ऊपर की आवश्यक सुख-सुविधायें प्राप्त कर सके। अस्तु, कानून से न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इससे कम वेतन निर्धारित न किया जाय, नहीं तो उससे कुछ भी लाभ न होगा।

न्यूनतम मज़दूरी कानून का इतिहास

न्यूनतम मजदूरी कानून का जन्म-स्थान आस्ट्रेलिया है। यद्यपि आस्ट्रेलिया नया और एक अत्यन्त समृद्धिशाली देश है, परन्तु वहां भी मज़दूरों का घोर शोषण होता था। कम वेतन, लंबे घंटे, तथा गंदे स्थानों पर काम करने का वहां प्रचलन था। वहां के प्रमुख पत्र 'एज' ने इसके विरुद्ध तीव्र आन्दोलन किया और उसका फल यह हुआ कि १८८४ में वहां एक कमीशन बैठा। उस कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में बतलाया कि मज़दूरों से अत्यन्त लम्बे घंटे काम लिया जाता है और उनको बहुत कम वेतन दिया जाता है। इसका फल यह हुआ कि

देश में इसके विरुद्ध अत्यन्त क्षोभ उत्पन्न हुआ और कुछ समय उपरान्त वहां न्यूनतम मज़दूर कानून बना दिया गया।

१८९४ में न्यूज़ीलैंड में हड़तालों के लिये वांछित रूप से पंचायत कराने के सम्बंध में कानून बनाया गया। इस कानून का उद्देश्य हड़तालों को रोकना था। किन्तु उस कानून के अन्तर्गत जिला समझौता बोर्डों को यह अधिकार दे दिया गया कि वे उस जिले में न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करदें। यदि किसी जिले के मज़दूर अपना वेतन बढ़वाना चाहें तो वे जिला समझौता बोर्ड को प्रार्थना-पत्र दे सकते हैं और बोर्ड उनका वेतन नियत कर देगा।

आस्ट्रेलिया में सर्व प्रथम विक्टोरिया में न्यूनतम मज़दूरी कानून १८९६ में पास हुआ था। उस समय कानून के विरोध करने वालों ने कहा था कि इसका परिणाम यह होगा कि सारा धंधा दूसरी रियासतों में चला जावेगा। केवल बहुत कुशल मज़दूरों को ही काम मिलेगा और सब बेकार हो जावेंगे। और इस प्रकार का कानून व्यवहार में लागू नहीं किया जा सकेगा। किन्तु फिर भी कानून पास हो गया और 'मज़दूरी बोर्ड' स्थापित हो गए। प्रारम्भ में केवल कुछ ही धंधों में मज़दूरी निर्धारित की गई थी, किन्तु अब सभी धंधों और पेशों में न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित कर दी गई है। १९०० और १९१० के बीच में आस्ट्रेलिया की अन्य रियासतों ने भी न्यूनतम मज़दूरी कानून पास कर दिये हैं और वहां भी सभी धंधों और पेशों में न्यूनतम मज़दूरी कानून प्रचलित कर दिये गए हैं।

ब्रिटेन में १९०९ में सर्व प्रथम विक्टोरिया के कानून के आधार पर पहली बार न्यूनतम मज़दूरी क़ानून बनाया गया और वह भी केवल उन धंधों के लिए लगाया गया, जोकि असंगठित थे और जिन में मज़दूरी बहुत कम थी। किन्तु क्रमशः अन्य धंधों में भी जिन में मजदूरों का अत्यधिक शोषण होता था, न्यूनतम मजदूरी कानून लगा दिया गया।

क्रमशः न्यूनतम मजदूरी कानून सभी योरोपीय देशों में पास हो गये और कनाडा तथा संयुक्त-राज्य अमेरिका में भी न्यूनतम मजदूरी कानून बना दिये गए। अभी सब धंधों में न्यूनतम मजदूरी कानून से निर्धारित नहीं की गई है, किन्तु क्रमशः सभी धंधों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

न्यूनतम मज़दूरी की दर

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि न्यूनतम मज़दूरी की दर निश्चित करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि मज़दूर को इतना वेतन मिल सके कि वह जीवन की सभी आवश्यक सुख-सुविधायें पा सके। किन्तु न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय यह भी विचार कर लेना चाहिए कि मजदूर को एक परिवार का भरण-पोषण करना पड़ता है। अस्तु, मजदूरी की दर निश्चित करते समय केवल उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को ही ध्यान में नहीं रखना चाहिए वरन उसके परिवार की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना चाहिए। साथ ही मजदूर कुछ समय बेकार भी रह सकता है, उसका भी ध्यान मजदूरी निर्धारित करते समय कर लेना चाहिए।

धंधे की आर्थिक दशा

जब न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जावे, तो धन्धे की दशा को ध्यान में रखा जावे या नहीं, यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। बहुधा किसी धन्धे विशेष के व्यवसायी यह कहते हैं कि धन्धे की आर्थिक दशा इतनी ख़राब है कि यह जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी नहीं दे सकता। यदि इस धन्धे में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जायेगी, तो धन्धा मजदूरी न दे सकेगा और धन्धा नष्ट हो जावेगा। प्रश्न यह है कि ऐसे धन्धों के बारे में क्या किया जावे। यदि ऐसे धन्धों में मजदूरी कम निर्धारित की जावे, अथवा कोई मजदूरी न निर्धारित की जाय, तो उसका अर्थ यह हुआ कि व्यवसायियों को मजदूरों का शोषण करने की खुली छुट्टी दे

दी गई है और उससे मजदूरों का जो नैतिक और शारीरिक पतन होता है, उसका व्यय राज्य पर अस्पताल, निर्धन-गृह तथा सुधार-गृह स्थापित करने के कारण पड़ता है। लेखक का तो मत यह है कि प्रत्येक धन्धे को जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी तो देना ही चाहिए। किसी भी धन्धे को इस उत्तरदायित्व से मुक्त नहीं करना चाहिए, फिर चाहे वह धन्धा चले या न चले। कुछ देशों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय धन्धे की आर्थिक दशा का भी ध्यान रक्खा जाता है।

सुस्त और अकुशल मजदूर

जब न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाती है तो बहुत सुस्त और अकुशल मजदूर नौकर नहीं रक्खे जावेंगे। ऐसी दशा में कुछ मजदूरों को नौकरी मिलना कठिन हो सकता है। मालिक ऐसे मजदूरों को क्यों नौकर रक्खे कि जो पूरा काम नहीं कर सकते और जिनको क़ानून द्वारा निर्धारित मजदूरी देनी होगी। कुछ देशों में इस प्रकार के मजदूरों को न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी देने की आज्ञा क़ानून में दे दी गई है। किन्तु इससे यह भय रहता है कि मालिक इस सुविधा का लाभ उठा कर अधिकतर ऐसे मजदूर रख लें और जो कुशल मजदूर भी हैं उनको भी यह कह कर कि वे सुस्त और अकुशल मजदूर हैं, कम वेतन दें। इस सम्भावना को दूर करने के लिए कानूनों में इस बात का विधान कर दिया गया है कि प्रत्येक कारखाने में एक निश्चित प्रतिशत से सुस्त और अकुशल मजदूर जो न्यूनतम मजदूरी से कम पावेंगे, नहीं रक्खे जा सकते और उनको लायसैंस लेना होगा।

न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने का ढंग

न्यूनतम मजदूरी दो प्रकार से निर्धारित की जाती है। एक तो कानून में ही एक दर निश्चित कर दी जाती है और उसके अनुसार मज़दूरी देनी पड़ती है। परन्तु अधिकांश देशों में इस प्रकार मजदूरी

की दर निश्चित नहीं होती। वहां प्रत्येक धंधे के लिए प्रथम ट्रेड बोर्ड स्थापित कर दिये जाते हैं। ट्रेड बोर्ड उस धंधे की स्थिति को देख कर उस धंधे में एक निश्चित समय के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देता है। जब स्थिति में कोई परिवर्तन होता है तो फिर बोर्ड उस दर में परिवर्तन कर देता है।

जब कि न्यूनतम मजदूरी कानून बनाये गए थे, उस समय बहुत से विचारकों का कहना था कि मजदूरी आर्थिक नियमों के आधार पर निर्धारित होती है, न कि क़ानून द्वारा, और इस प्रकार कानून द्वारा मज़दूरी निर्धारित करने का प्रयत्न अवश्य ही असफल होगा। परन्तु जिन देशों में न्यूनतम मजदूरी कानून लगाये गए, उनका अनुभव हमें बतलाता है कि न्यूनतम मजदूरी कानून एक व्यावहारिक योजना है और वह सफलता-पूर्वक काम में लाई जा सकती है।

मजदूरी पर प्रभाव

न्यूनतम मजदूरी कानून बनाने से अधिकतर मजदूरों की मजदूरी बढ़ी है। जहां पहले बहुत कम वेतन मिलता था, वहां अब वेतन अधिक मिलता है। न्यूनतम मजदूरी के विरोध में यह बहुधा कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी बन जाती है। मिल-मालिक उससे अधिक मजदूरी नहीं देगा। इससे उन मजदूरों को हानि पहुँचने की सम्भावना है कि जो साधारणतः अधिक मजदूरी पा सकते हैं। परन्तु जहां-जहां न्यूनतम मजदूरी कानून लागू किये गए, वहां ऐसी बात देखने में नहीं आई। आस्ट्रेलिया में मजदूरी की साधारण दर न्यूनतम मजदूरी से बीस प्रतिशत अधिक है।

न्यूनतम मजदूरी के विरुद्ध यह तर्क भी उपस्थित किया जाता है कि इसका परिणाम यह होगा कि बहुत से मजदूर निकाल दिये जावेंगे। क्योंकि वे मालिक के लिए कानून द्वारा निर्धारित मजदूरी पर लाभ दायक न होंगे। दूसरे मिल-मालिक अपरेंटिस रख कर अपना काम

कुछ व्यवसायियों का कहना है कि न्यूनतम मजदूरी कानून बन जाने का परिणाम यह होगा कि मजदूर काम कम से कम करेगा और उत्पादन घट जावेगा, क्योंकि मजदूरों को यह तो मालूम रहेगा कि उसको निर्धारित मजदूरी से कम तो मालिक दे ही नहीं सकता। इसका परिणाम यह होगा कि मजदूर की कार्यक्षमता कम हो जावेगी और उत्पादन कम होगा, धंधों की उन्नति रुक जावेगी। यद्यपि इसकी सम्भावना हो सकती है किन्तु व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ है। एक तो मालिक इस प्रकार का कानून बन जाने के उपरान्त मजदूर के कार्य की देख भाल अधिक सतर्कता से करता है और उससे अधिक काम लेना चाहता है। दूसरे मजदूर भी अधिक वेतन मिलने के फलस्वरूप अधिक काम करते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि न्यूनतम मजदूरी कानून से धंधों और मजदूरों को लाभ अधिक हैं।

भारतवर्ष में न्यूनतम मजदूरी

यदि किसी देश को न्यूनतम मजदूरी कानूनों की सबसे अधिक आवश्यकता है तो वह भारतवर्ष को है। इसके नीचे लिखे कारण हैं:—(१) भारतवर्ष के धन्धों में मजदूरी बहुत कम दी जाती है(२)मिल मालिकों को जब भी आर्थिक मन्दी का सामना करना पड़ता है अथवा कुप्रबन्ध के कारण हानि की सम्भावना होती है तो मजदूरी की दर को घटा कर वे उस हानि को पूरा कर लेते हैं। देश में जनसंख्या का भूमि पर इतना अधिक भार है कि मजदूर को जो भी मजदूरी दी जावे वह उस पर काम करने के लिए तैयार हो जाता है। (३) भिन्न-भिन्न धन्धों में और एक ही धन्धे में मजदूरी की दर भिन्न होने के कारण जो हड़तालें होती हैं और बहुत कम मजदूरी होने के कारण धन्धों में जो आये दिन संघर्ष चलता है, वह देश की आर्थिक उन्नति के लिए हानिकर है तथा मजदूरों को विवश करता है कि वे हड़तालें करें। जब तक कि देश में न्यूनतम मजदूरी कानून नहीं बन जाता और न्यूनतम मजदूरी निर्धारित

नहीं करदी जाती तब तक यह दोष दूर नहीं होंगे। अस्तु देश की औद्योगिक उन्नति के लिए न्यूनतम मजदूरी कानून बनना नितान्त आवश्यक है। यह एक ऐसा आवश्यक सुधार है जो अविलम्ब हो जाना चाहिए।

सर्व प्रथम १६२८ में अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन ने इस आशय का एक प्रस्ताव पास किया था कि जिन धन्धों में सामूहिक मोल-भाव नहीं हो सकता, अर्थात मजदूरों का प्रबल संगठन न होने के कारण उचित मजदूरी नहीं मिल पाती और जिन धन्धों में मजदूरी बहुत कम है, वहां न्यूनतम मजदूरी कानून द्वारा निर्धारित कर देनी चाहिए और उसके लिए आवश्यक प्रबन्ध कर देना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ ने जिन अवस्थाओं में न्यूनतम मजदूरी कानून बनाये जाने का समर्थन किया था, वे सभी अवस्थायें भारत में उपलब्ध हैं। यहां मजदूरी बहुत कम है और मजदूरों का सबल संगठन न होने के कारण वे मालिकों से उचित वेतन पाने में सर्वथा असमर्थ हैं। इसके अतिरिक्त खेती में बढ़ती हुई जनसंख्या के काम न पा सकने के कारण वे सब धन्धों में एक दूसरे से होड़ करके मजदूरी को कम कर देते हैं। मिल मालिक इस स्थिति का खूब ही लाभ उठाते हैं। ऐसी दशा में भारतवर्ष में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के इस प्रस्ताव को लागू करना नितान्त आवश्यक था।

ऐसी दशा में जब भारतवर्ष में शाही मजदूर कमीशन के सामने मजदूर प्रतिनिधियों ने न्यूनतम मजदूरी की माँग की तो उनका विश्वास था कि कमीशन उसको स्वीकार करेगा। किन्तु मजदूर कमीशन ने इस माँग को यह कह कर टाल दिया कि अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन ने जो यह प्रस्ताव किया था कि जहां मजदूरी कम हो, वहाँ न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी जावे उसका यह तात्पर्य कदापि नहीं था कि किसी देश की मजदूरी की तुलना पश्चिमीय देशों में प्रचलित

मजदूरी को दर से की जावे, वरन् उसका अर्थ यह था कि उस देश में प्रचलित मजदूरी की दर से यदि किसी धन्धे में मजदूरी कम हो तो उसमें न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करदी जावे। क्योंकि भारतवर्ष में अधिकांश जन-संख्या खेती के धन्धे में लगी हुई है और खेती में काम करने वालों की मजदूरी कारखानों तथा अन्य धन्धों में काम करने वालों से बहुत कम है। अस्तु, जब तक खेती में काम करने वालों की मजदूरी इतनी कम है तब तक कारखानों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का प्रश्न ही नहीं उठता और न कारखानों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का उस दशा में कोई अर्थ ही है। खेती में आज की स्थिति में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना सम्भव नहीं है। अस्तु, शाही कृषि कमीशन ने न्यूनतम मजदूरी की मांग को अस्वीकार कर दिया।

किन्तु यह विचार धारा शीघ्र ही बदल गई। १९३६ में आम चुनाव हुए और कांग्रेस ने अपनी चुनाव घोषणा में मजदूरों के लिए उचित वेतन की व्यवस्था का वचन दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि जब कांग्रेस सरकारें प्रान्तों में स्थापित हो गईं तो प्रान्तीय सरकारों ने उस ओर ध्यान देना आरम्भ किया। सर्व प्रथम १९३७ में बम्बई सरकार ने निम्नलिखित आशय की घोषणा की।

प्रान्तीय सरकार उन धन्धों में जिनमें जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी नहीं मिलती न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के प्रश्न पर गम्भीरता पूर्वक विचार कर रही है। सरकार इस दृष्टि से सर्व प्रथम इस बात को जाँच करवाना चाहती है कि जीवन निर्वाह योग्य मजदूरी से प्रचलित मजदूरी कितनी कम है और उसके क्या कारण हैं तथा मजदूरी किस प्रकार ऊँची की जा सकती है।

संयुक्त प्रान्त की कांग्रेस सरकार ने १९३८ में एक मजदूर कमेटी बिठाई थी। उक्त कमेटी ने भी बम्बई-सरकार की उक्त घोषणा का समर्थन इन शब्दों में किया था। "न्यूनतम मजदूरी सिद्धान्त का अर्थ

मजदूर को जीवन-निर्वाह योग्य मजदूरी देना है और उस दृष्टि से भारतीय धन्धों में मजदूरी बहुत कम है।" उक्त कमेटी ने कानपुर के मिल मजदूर और 'सी' श्रेणी के कैदी के भोजन के चार्टों की तुलना करते हुए यह बतलाया था कि कानपुर का मिल मजदूर कैदी से १-२ छटाँक भोजन कम पाता है और मजदूर का भोजन कैदी की तुलना में घटिया और कम पौष्टिक होता है। अन्य औद्योगिक केन्द्रों की दशा भी इससे भिन्न नहीं है। अतएव यह सिद्ध हो गया कि भारतीय मजदूरों की मजदूरी जीवन निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं है।

अब हम यहां कानपुर के मिल मालिकों के मत को भी दे देना चाहते हैं। क्योंकि मिल-मालिकों के जो तर्क हैं, वे सभी प्रान्तों में एक-से ही हैं। कानपुर के मिल-मालिक संघ ने सिद्धान्ततः न्यूनतम मजदूरी का तो विरोध नहीं किया, किन्तु उन्होंने इस बात की माँग की कि वह उनकी केवल कुछ शर्तें पूरी होने पर ही लागू की जावे। वे शर्तें ऐसी थी कि यदि उनका पालन किया जाता तो न्यूनतम मज़दूरी कभी भी निर्धारित ही नहीं की जा सकती थी। अपने आवेदन-पत्र में उन्होंने लिखा था कि संघ फैक्टरियों में काम करने वाले मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने का विरोधी नहीं है। परन्तु उस समय तक कानपुर में न्यूनतम मजदूरी कभी भी निर्धारित नहीं की जानी चाहिए जब तक कि अन्य औद्योगिक केन्द्रों में भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं करदी जाती। क्योंकि इससे कानपुर के सूती वस्त्र-व्यवसाय के धन्धे को गहरा धक्का लगेगा। साथ ही किसी एक धन्धे में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देना भी उचित न होगा जब तक कि सरकार सभी धन्धों में उसे लागू न करे। इसके अतिरिक्त न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय देश के उद्योग-धन्धों की स्थिति तथा सरकार की आयात-निर्यात कर नीति का फिर से अध्ययन करना और उसमें उचित संशोधन करना आवश्यक होगा।

संक्षेप में उन्होंने कहा कि जब सभी प्रान्तों और देशी राज्यों में

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करदी जावे, तभी कानपूर में भी की जावे। यह बहुत सम्भव है कि कुछ प्रान्तों में जहाँ प्रतिक्रियावादी दल का बहुमत हो, इस प्रकार का कानून न बनाया जावे और कम से कम देशी राज्यों में तो कुछ समय तक न्यूनतम मजदूरी कानून बनाये जाने की कोई सम्भावना नहीं है; उस दशा में कहीं भी न्यूनतम मजदूरी कानून लागू नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार उनका यह कहना कि जब तक सब धन्धों में न्यूनतम मजदूरी लागू न की जावे किसी एक धन्धे में उसको प्रचलित करना उचित न होगा—एक ऐसा तर्क है जिसका अर्थ होगा कि न्यूनतम मजदूरी कभी भी प्रचलित न की जावे। क्योंकि अभी बहुत समय तक खेती में न्यूनतम मजदूरी लागू नहीं की जा सकती।

इसमें कोई भी संदेह नहीं कि धंधों की आर्थिक दशा और सरकार की औद्योगिक तथा कर-नीति पर धंधों की उन्नति बहुत कुछ निर्भर है। परन्तु केवल मज़दूरों को उचित वेतन देने के लिए यह शर्त लगाना कहाँ तक उचित है। यह कहना कि धन्धों की आर्थिक-दशा का ध्यान रख कर ही न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करना चाहिए, एक भयंकर तर्क को स्वीकार करना है। यदि कोई धंधा अधिक लाभ नहीं देता तो उसका यह भी कारण हो सकता है कि उसकी व्यवस्था ठीक नहीं हो रही है। ऐसी दशा में यदि व्यवसायी इस तर्क का सहारा लेना चाहते हैं तो राज्य को उनके संगठन और व्यवस्था के सम्बन्ध में जाँच करने का अधिकार होना चाहिये। फिर यदि कोई ऐसा धंधा है जो जीवन-निर्वाह योग्य वेतन मज़दूरों को नहीं दे सकता तो ऐसा धंधा यदि नष्ट हो जावे तो कोई हानि नहीं है। संयुक्तप्रान्तीय कमेटी ने कानपुर के लिये उस समय १५ रु. न्यूनतम मज़दूरी निर्धारित करने की सिफारिश की थी।

सन् १९४० में बम्बई टैक्सटाइल लेबर कमेटी ने भी प्रान्त में सूती वस्त्र-व्यवसाय में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की सिफारिश की थी। कमेटी का कथन था कि बम्बई, अहमदाबाद और शोलापूर में क्रमशः

वहां की परिस्थिति को देखते हुए सूती वस्त्रों के कारख़ानों में भिन्न-भिन्न मजदूरी निर्धारित कर दी जावे।

बिहार कमेटी ने जमशेदपुर में १८ रु., कोयले की खानों में २०रु., शक्कर के कारखानों में १२ रु. तथा अन्य कारखानों में १३ रु. न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की सिफारिश की थी।

१९३९ में सर्वप्रथम बम्बई कारपोरेशन ने एक प्रस्ताव पास करके अपने नौकरों को कम से कम २५ रु. (अलाऊंस इत्यादि को छोड़ कर) वेतन देना स्वीकार किया और १९४० में संयुक्तप्रान्तीय सरकार ने शक्कर के कारखानों में ६ आना प्रतिदिन न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी।

किन्तु भारत-वर्ष में सर्वप्रथम न्यूनतम मजदूरी लागू करने का श्रेय अखिल भारतीय चर्खा संघ को है, जिसने महात्मा गांधी के आदेश से बहुत पहले आठ आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरों को मजदूरी देना प्रारम्भ कर दी थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि क्रमशः देश में न्यूनतम मजदूरी कानून के सम्बन्ध में अनुकूल वातावरण बनता गया और सरकारी विचार भी बदल गया, उसी बीच में महायुद्ध प्रारम्भ हो गया। महायुद्ध के काल में इस विचार को और भी समर्थन मिला। यद्यपि संयुक्तप्रान्त, बिहार, और बम्बई की लेबर कमेटियों की सिफारिशें कार्यरूप में परिणत न हो सकीं, क्योंकि प्रान्तों में कांग्रेस-मंत्रिमंडलों ने त्यागपत्र दे दिया, फिर भी हर-एक विचारवान व्यक्ति को न्यूनतम मजदूरी कानून की आवश्यकता अनुभव होने लगी।

भारत सरकार और न्यूनतम मजदूरी कानून

१९४५ में भारत सरकार के मजदूर सदस्य ने केन्द्रीय धारा-सभा में यह घोषणा कर दी कि भारत सरकार शीघ्र ही न्यूनतम मजदूरी कानून बना कर धंधों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर देगी। उक्त घोषणा के अनुसार सरकार ने एक बिल तैयार करके ट्रेड-यूनियनों तथा मिल

मालिकों के संघों के पास सम्मति के लिए भेजा। इस बिल के अन्तर्गत सभी उद्योग धंधों, व्यापार तथा कृषि में भी काम करने वाले मजदूरों का न्यूनतम वेतन निर्धारित करने की व्यवस्था है। इस बिल में इस बात का भी विधान है कि भारत सरकार द्वारा कानून पास होने के उपरान्त दो वर्षों के अन्दर प्रान्तीय सरकारें धंधों तथा खेती में काम करने वाले मजदूरों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दे। कितनी मजदूरी निर्धारित की जावे, इसका निर्णय करने के लिए प्रान्तीय सरकारें कमेटियां बिठावेंगी, जिनम आधे सदस्य मिल-मालिकों के तथा आधे सदस्य मजदूरों के प्रतिनिधि होंगे।

यह बिल एसेम्बली में पेश कर दिया गया, किन्तु अभी इस पर विचार नहीं हो सका है। आशा है कि शीघ्र ही भारत में सभी धंधों में न्यूनतम मजदूरी कानून लागू हो जावेगा।

किन्तु मजदूरी कानून बनाते समय इस बात का ध्यान रक्खा जावे की मजदूरी इतनी निर्धारित की जावे कि जो मजदूर की सुख-सुविधा के लिए आवश्यक हो। अच्छा तो यह है कि प्रत्येक धंधे के लिए ट्रेड बोर्ड स्थापित किया जावे, जो उस धंधे में न्यूनतम मजदूरी कितनी हो, यह निर्धारित करे और उससे सम्बंधित समस्याओं का निर्णय करे।

नवां परिच्छेद

मजदूरों का संगठन

जब कारीगर अपने घरों में सामान तैयार करते थे, तब आधुनिक ढंग के मजदूर संघों का सर्वथा अभाव था। सच तो यह है कि उस समय मजदूर संघों की आवश्यकता ही नहीं थी। कारण यह था कि

कारीगर स्वयं कोई पूंजीपति नहीं था। वह छोटी मात्रा में उत्पादन-कार्य करता था। अधिकतर वह स्वयं अपने श्रम तथा अपने परिवार वालों की सहायता से सामान तैयार करता था और व्यापारियों को अथवा समीपवर्ती बाजार में ग्राहकों को बेच देता था। पहले तो वह मजदूर रखता ही नहीं था और यदि कोई युवक उस धन्धे को सीखने के उद्देश्य से उसके यहाँ काम करता भी था तो कारीगर उसका शोषण करने की कल्पना भी नहीं कर सकता था। कारण यह था कि वह मजदूर शिष्य उसी के गाँव का होता था तथा सम्भवतः उसके मित्र अथवा पड़ोसी का होता था। अस्तु सामाजिक प्रभाव के कारण मालिक अपने शिष्य मजदूर के साथ दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त कारीगर स्वयं मजदूर शिष्यों के साथ काम करता था, अतएव वह मजदूर के जीवन से, उसकी कठिनाइयों से अनभिज्ञ नहीं होता था। उसका दृष्टिकोण सहानुभूति का होता था। केवल इन्हीं कारणों से कारीगर मजदूर शिष्यों के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता था, वरन उसका स्वार्थ भी इसी में निहित था। जहां कारीगर मजदूर शिष्य को अपनी नौकरी से हटा कर उसे बेकार कर सकता था, वहां उसके कठोर व्यवहार के कारण यदि मजदूर शिष्य (जो अधिक नहीं होते थे) उसका कार्य छोड़ देते, तो उसका व्यवसाय ठप्प हो सकता था। दूसरे शब्दों में मालिक मजदूरों के लिए जितना आवश्यक था, मजदूर भी मालिक के लिए उतने ही आवश्यक थे। उन दिनों मालिक मजदूरों से बहुत लम्बे समय तक काम ले सके यह भी सम्भव नहीं था; क्योंकि बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था। इसलिये रात्रि को कार्य नहीं हो सकता था। कार्य के घंटे केवल दिन में ही निर्धारित होते थे। सूर्य का यथेष्ट प्रकाश जब तक रहे तभी तक कार्य हो सकता था। उस समय में से भोजन तथा विश्राम का समय निकाल कर जो समय बचता था, उसी में कार्य होता था। एक प्रकार से प्रकृति ने कार्य के उचित घन्टों को स्वयं निर्धारित कर दिया था। कारीगर मजदूरों से अधिक घन्टे काम लेना भी चाहे तो नहीं

हो सकता था। मजदूरों को एक सुविधा और भी थी कि सारा कार्य तो हाथों से होता था। मजदूर कार्य की गति को स्वयं निर्धारित कर सकते थे। कार्य की गति को निर्धारित करना कारीगर के हाथ में नहीं था।

अस्तु उन दिनों मजदूर की स्थिति ऐसी दयनीय नहीं थी, उसका शोषण इतना सरल नहीं था। इसके अतिरिक्त कारीगर भी कोई पूंजीवाला नहीं था। धन्धे में पूंजी की इतनी कम आवश्यकता होती थी कि मजदूर शिष्य कुछ दिनों बाद स्वयं स्वतंत्र कारीगर बन कर अपना धन्धा अलग चलाता था। अतएव मजदूर शिष्य को थोड़े दिनों ही मजदूरी करनी पड़ती थी। वास्तव में उस समय कारीगरों और उनके मजदूर शिष्यों के स्वार्थों में इतना संघर्ष नहीं था, जितना कि कारीगरों और उन व्यापारियों के स्वार्थों में जिनको कारीगर माल बेंचता था। अधिकतर तो कारीगर स्वयं अपने माल को गांव या कस्बे में बेंच देता था, किन्तु जो कारीगर बहुत बहुमूल्य वस्तुयें तैयार करते थे, उन्हें व्यापारियों के हाथ अपना माल बेचना पड़ता था। परन्तु उन व्यापारियों के विरुद्ध कारीगर कोई संगठन कर ही नहीं सकते थे। क्योंकि कारीगर तो भिन्न भिन्न स्थानों पर बिखरे होते थे, वे कभी संगठित हो ही नहीं सकते थे। उनके संगठित न हो सकने का दूसरा कारण यह भी था कि कारीगर व्यापारी का नौकर नहीं था। व्यापारी उसे आर्डर देता और माल तैयार करवाता था। अस्तु, व्यापारी से आर्डर प्राप्त करने के लिए कारीगर स्वयं आपस में प्रतिस्पर्द्धा करते थे। यही कारण था कि उन दिनों मजदूरों का कोई व्यापक संगठन नहीं बन सका।

किन्तु औद्योगिक क्रांति के उपरान्त जब बड़ी मात्रा में उत्पादन कार्य होने लगा, बड़े-बड़े कारखाने खोले गये तो स्थिति बदल गई। कारीगर को अपना घर छोड़ कर कारखानों में काम करने के लिए जाना पड़ा शक्ति संचालित यंत्रों पर कार्य करने के कारण कार्य की गति का निर्धारित करना उसके हाथ में नहीं रहा, वरन मिल मालिक के हाथ में चला गया। बिजली के प्रकाश में कारखानों में रात्रि को भी काम करना

सम्भव हो गया। फिर मालिक हजारों मजदूरों को नौकर रखता है अतः उसके लिए एक या दो मजदूरों का कोई महत्व नहीं रहता। यदि एक या दो मजदूर इस विचार से कि मालिक का व्यवहार कठोर है, वह वेतन कम देता है, उसकी नौकरी छोड़ देते हैं तो मालिक का काम नहीं रुक सकता। अतएव आज की अवस्था में मिल मालिक के हाथ में शोषण की अनन्त शक्ति आ गई है।

जहां फैक्टरी पद्धति के प्रादुर्भाव से मजदूरों की तुलना में मिल-मालिक बहुत ही शक्तिवान हो गया है, वहां उसी पद्धति में भावी मज-दूर आन्दोलन और मजदूर संगठन के बीज मौजूद थे। जब प्रातःकाल कारखाने का भोंपू बोलता है और दूर-दूर से मजदूर झुंड के झुंड एक साथ सब दिशाओं से आकर कारखाने के फाटक पर इकट्ठे होते हैं, उस समय वे आपस में कारखाने के सम्बन्ध में ही बात-चीत करते हैं। उनके क्या दुख-दर्द हैं, उनके लिए किन सुविधाओं की आवश्यकता है, इत्यादि प्रश्नों पर वे आपस में बात-चीत करते हैं। दिन भर कारखाने में साथ साथ काम करते और सांयकाल को कारखाने की छुट्टी की सीटी बजने पर जब थके हुए मजदूर धीरे-धीरे अपने घरों की ओर हजारों की संख्या में लौटते हैं तो स्वभावतः वे अपनी स्थिति, कारखाने में होने वाले दुर्व्य-वहार, कम वेतन और मालिकों के शोषण के सम्बन्ध में बात-चीत करते हैं। यहीं से आधुनिक मजदूर-आन्दोलन और मजदूर-संगठन का जन्म हुआ है।

आरम्भ में मजदूर-आन्दोलन ब्रिटेन में हुआ। क्योंकि सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति उसी देश में हुई थी और वहीं फैक्टरियां स्थापित हुई थीं। किन्तु उस समय व्यवसायी पूंजीपतियों का शासन में बोल-बाला था, अतएव राज्य ने कानून बना कर मजदूरों के क्लबों और संघों को गैर कानूनी घोषित कर दिया। उनके विरुद्ध षड्यंत्र का दोष लगाया गया और उनके नेताओं को कठोर दंड दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि मजदूरों ने गुप्त संगठन खड़े किये। नेता लोग गुप्त रहते, साधारण

मजदूर उनको जानता भी नहीं था, किन्तु उसकी आज्ञा का पालन होता था। प्रत्येक सदस्य को सदस्य बनते समय शपथ लेनी पड़ती थी। इस प्रकार जहां-जहां आरम्भ में मजदूर-आन्दोलन के विरुद्ध कानून बनाये गए वहां-वहां उसी प्रकार के गुप्त संगठन खड़े हो गये।

जर्मनी में जब मजदूर-संगठन के विरुद्ध कानून बनाया गया तो वहां भी मजदूरों के गुप्त संगठन खड़े हो गये, गुप्त रूप से वहां प्रबल आन्दोलन चलाया गया। मजदूर कार्यकर्ता लगातार अपने सिद्धान्तों और विचारों का प्रचार करते थे। इसका परिणाम यह हुआ है कि वहां दो क्रान्तिकारी संगठन स्थापित हुये "कानून विरोधियों का संघ (Federation of out laws) तथा कम्यूनिस्ट संघ। इसी संघ ने प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो (घोषणा पत्र) प्रकाशित किया था।"

क्रमशः इंग्लैन्ड में मजदूरों के संगठन के विरुद्ध जो कानून बने थे वे तोड़ दिये गए। यद्यपि बहुत दिनों तक फिर भी मजदूरों पर कुछ न कुछ कानूनी प्रतिबंध लगे रहे उनको संगठन करने की सुविधा मिल गई। इस समय कार्ल मार्क्स के विचारों के कारण मजदूर आन्दोलन में बहुत उग्रता आ चुकी थी। क्रमशः मजदूर आन्दोलन सबल होने लगा और वह राजनैतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हो गया। इंग्लैंड में तो मजदूर दल आज शासन की बागडोर संभाले हुए है।

सन १९०१ में टैफ.वेल रेलवे में एक हड़ताल हुई और कम्पनी ने मजदूरों के विरुद्ध क्षति पूर्ति का दावा कर दिया। न्यायालय से यूनियन के विरुद्ध फैसला हो गया। हाऊस आफ लार्डस ने यह निर्णय किया कि सदस्यों के कार्यों के लिए यूनियन उत्तरदायी है। यह स्थिति मजदूर संगठन की दृष्टि से भयावह थी, अस्तु इस बात के लिए प्रयत्न किया गया कि ट्रेड यूनियनों को इस उत्तरदायित्व से मुक्त कर दिया जावे। १९०६ में हड़तालों के संबंध में एक कानून बन जाने से मजदूर संघों की यह कठिनाई भी जाती रही।

मजदूर संगठन का ढाँचा

मजदूर संघों का रूप भिन्न-भिन्न होता है किन्तु मोटे रूप में दो प्रकार के मजदूर संघ (ट्रेड यूनियन) होते हैं। एक क्रैफ्ट के अनुसार (दूसरे धंधे के अनुसार आरम्भ में क्रैफ्ट अथवा क्रिया के अनुसार) मजदूर संघों की स्थापना हुई थी। अर्थात् एक क्रिया में काम करने वालों की एक यूनियन हो। उदाहरण के लिए यदि वस्त्र तैयार करने के धंधे में बुनकरों की एक यूनियन हो, कत्तियों का दूसरा यूनियन हो तो उसको हम क्रैफ्ट यूनियन अर्थात क्रिया के अनुसार यूनियन कहेंगे। क्रिया के आधार पर जो यूनियन बनाई जाती हैं उनकी विशेषता यह होती है कि जो भी मजदूर एक क्रिया को करते हैं फिर वे चाहे जिस धंधे में लगे हों और चाहे जिस मालिक के यहां काम करते हों एक यूनियन में सगठित किये जाते हैं। उदाहरण के लिये भारतवर्ष में अहमदाबाद का मजदूर संघ क्रैफ्ट यूनियनों का एक संघ है।

क्रिया के आधार पर संगठित यूनियन अर्थात क्रैफ्ट यूनियन के विपरीत धंधों के आधार पर संगठित यूनियन होती हैं। इस यूनियन की विशेषता यह होती है कि जो भी मजदूर उस धंधे विशेष में क़ाम करता है फिर वह चाहे किसी भी विभाग या क्रिया में क्यों न काम करता हो उस यूनियन का सदस्य हो सकता है। उदाहरण के लिए रेलवेमैन यूनियन, वस्त्र व्यवसाय की यूनियन इत्यादि इस प्रकार की यूनियनें हैं।

यूनियन संगठित करने का एक तीसरा सिद्धान्त भी हो सकता है अर्थात एक ही मालिक की अधीनता में जो लोग काम करते हैं उनकी यूनियन संगठित की जावे। उदाहरण के लिए एक म्यूनिसीपैलिटी के सभी विभागों के कर्मचारी फिर वे चाहे स्वास्थ्य, निर्माण, शिक्षा, सफाई किसी भी विभाग के क्यों न हों एक यूनियन में संगठित हों, इस प्रकार की यूनियन बहुत कम देखने में आती हैं।

स्त्रियाँ और मजदूर संगठन

आरम्भ में स्त्री मजदूरों का कोई संगठन नहीं था। मजदूरों की यूनियनें उन्हें संगठित करने का विशेष प्रयत्न नहीं करती थीं। किन्तु प्रथम महायुद्ध में जब धंधों में बहुत बड़ी संख्या में मजदूर स्त्रियाँ काम करने लगीं तो मजदूर नेताओं का उनको संगठित करने की ओर ध्यान गया। क्योंकि इनके असंगठित रहने से पुरुषों की मजदूरी पर बुरा प्रभाव पड़ सकता था।

आज सभी औद्योगिक देशों में स्त्रियां भी यूनियनों की सदस्य हैं और ट्रेड यूनियन की कार्य-कारिणी समिति में उन्हें विशेष प्रतिनिधित्व दिया जाता है। यद्यपि भारतवर्ष में वे अभी तक संगठित नहीं हो पाई हैं। परन्तु इतना सब होने पर भी सभी देशों में अधिकतर स्त्रियां मजदूर असंगठित ही हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि मजदूर स्त्रियां बहुत थोड़े समय के लिए कारखानों में काम करने आती हैं। विवाह करने के उपरान्त वे काम नहीं करतीं। अस्तु, वे यूनियन की सदस्य होने के लिए उतनी उत्सुक नहीं होती। जिन धंधों में विवाह के उपरान्त भी काम करती हैं, उनमें उनका संगठन शक्तिवान है।

यूनियनों का संघ

प्रत्येक धन्धे में जो भिन्न-भिन्न औद्योगिक केन्द्रों की यूनियन हैं, वे अपना एक संघ बना लेती हैं। उदाहरण के लिए बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर, कानपुर, इत्यादि केन्द्रों की यूनियन मिल कर अखिल भारतीय टैक्सटाइल लेबर फैडरेशन बनाले। इस प्रकार उस धन्धे में काम करने वाले सभी मजदूर एक भारतीय संघ की अधीनता में काम करेंगे।

किन्तु केवल भिन्न-भिन्न धन्धों के राष्ट्रीय संघों से ही समस्या हल नहीं हो जावेगी। बहुत सी मजदूरों की समस्यायें और प्रश्न ऐसे होते हैं, जो कि सभी धन्धों में काम करने वाले मजदूरों के लिए एक

समान महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसके अतिरिक्त मजदूरों के राजनीतिक अधिकारों को प्राप्त करने के लिए तथा उनके हितों की रक्षा करने के लिए एक मंच आवश्यक होता है। अतएव प्रत्येक देश में मजदूरों की कांग्रेस (ट्रेड यूनियन कांग्रेस) होती है, जिससे सभी मजदूर-संघ और ट्रेड-यूनियन सम्बन्धित रहती हैं।

मजदूर संघों का कार्य

मजदूर संघों की स्थापना का मुख्य उद्देश्य श्रम-जीवियों की सर्वांगीण उन्नति है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मजदूर सभायें और मजदूर संघ बहुत से उपाय काम में लाते हैं, उनके कार्यों की तालिका बहुत लम्बी है। किन्तु वे सब कार्य तीन श्रेणियों में बांटे जा सकते हैं। १. रचनात्मक कार्यक्रम २. पूँजीपति से अधिक से अधिक सुख सुविधायें मजदूरों के लिए प्राप्त करना और उसके साथ निरन्तर संघर्ष करना। ३. राजनैतिक कार्यक्रम जिसका उद्देश्य मजदूरों का शासन-यन्त्र पर आधिपत्य स्थापित करके समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना होता है।

१. रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत मजदूरों की सुख-सुविधा के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, मनोरंजन, बेकारी तथा बीमारी में आर्थिक सहायता, रहने की सुविधा, सहकारी उपभोक्ता स्टोर तथा नौकरी दिलाने के लिए ब्यूरो स्थापित करना, इत्यादि सभी कार्य ट्रेड-यूनियन करती है।

२. पूंजीपतियों से बात-चीत करके मजदूरों के लिए उचित वेतन, अच्छा व्यवहार, कारखाने में अन्य सुविधायें प्राप्त करना और आवश्यकता पड़ने पर अपनी मांगों को स्वीकार कराने के लिए पूंजीपतियों से संघर्ष करना।

३. राजनैतिक कार्यक्रम के अन्तर्गत अपने प्रतिनिधियों को व्यवस्थापिका सभाओं में भेज कर मजदूरों के हितों को कानून बनाकर सुरक्षित करना तो मजदूर आन्दोलन का तात्कालिक उद्देश्य होता है। परन्तु अपने उद्देश्यों का प्रचार करके तथा शासन की बागडोर अपने

हाथ में लेकर देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना उसका अन्तिम लक्ष्य होता है।

प्रत्येक देश में मजदूर आन्दोलन अपनी शक्ति के अनुसार अपने अंतिम लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है। जिस देशमें आन्दोलन अधिक सबल है, वह लक्ष्य के उतने ही अधिक समीप पहुँच गया है। भारतवर्ष में अभी हम बहुत दूर हैं। आगे हम भारतवर्ष के मज़दूर आन्दोलन का अध्ययन करेंगे।

भारतीय मज़दूर संगठन

बम्बई में पहली सूती कपड़े की मिल १८६३ में स्थापित हुई और १८७० तक केवल थोड़ी सी ही मिलें स्थापित हो सकीं। किन्तु १८७० के उपरान्त बम्बई नगर तथा प्रान्त में तेजी से मिलें स्थापित होने लगीं और उनमें अधिकाधिक मजदूर काम करने लगे। मजदूरों में स्त्रियां और बच्चे भी यथेष्ट संख्या में भर्ती किये गये। स्त्रियां और बच्चे भी इन कारखानों में लगभग उतने ही घण्टे काम करते थे, जितने कि प्रौढ़ पुरुष। उनमें से कुछ बच्चे बहुत छोटी उमर के थे। स्त्रियों और बच्चों की उपस्थिति के कारण फैक्टरियों के नियंत्रण का प्रश्न उठा और यही प्रश्न मजदूर आन्दोलन का कारण बना।

किन्तु तत्कालीन मजदूर आन्दोलन को लंकाशायर के मिल-मालिकों से बहुत बल मिला। लंकाशायर के सूती कपड़े के मिल मालिकों ने भारतीय मिलों की प्रगति को रोकने के उद्देश्य से भारत मंत्री के द्वारा भारत सरकार तथा बम्बई सरकार पर फैक्टरी-कानून बनाने के लिए दबाव डालना आरम्भ किया। विवश होकर २५ मार्च १८७५ को बम्बई सरकार ने एक कमीशन मजदूरों की दशा की जांच के लिये बिठाया, किन्तु कमीशन ने फैक्टरी कानून बनाने की कोई आवश्यकता नहीं समझी। कमीशन की ऐसी रिपोर्ट ने मैंचेस्टर के मिल-मालिकों को फिर सतर्क कर दिया। वे भारत में फैक्टरी-कानून बनाये जाने के लिए फिर आन्दोलन

करने लगे और इधर भारत में मिल-मालिकों ने फैक्टरी-कानून के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इसी समय श्री सोराबजी सापुरजी बंगाली के नेतृत्व में मजदूरों के हितैषियों ने मजदूरों के हितों के लिए आन्दोलन आरम्भ कर दिया। और यहां से ही भारतीय मजदूर आन्दोलन का आरम्भ होता है।

श्रीयुत सोराबजी सापुरजी बंगाली ने मजदूरों के प्रश्न को बम्बई धारा-सभा के सामने लाने के उद्देश्य से एक बिल तैयार किया, किन्तु कमीशन की रिपोर्ट के आधार पर बम्बई सरकार ने उस बिल को धारा-सभा के सामने उपस्थित करने की मनाई करदी। श्री बंगाली ने मैंचेस्टर के मिल-मालिकों से सहायता की प्रार्थना की और अपने बिल के मसविदे की प्रतियां उन्हें भेज दीं। ब्रिटेन के पत्रों में श्री बंगाली की प्रार्थना प्रकाशित होने पर वहां फिर आन्दोलन प्रारम्भ हुआ और कामन्स-सभा में ४ एप्रिल १८७९ को एक प्रस्ताव भारत में फैक्टरी-कानून बनाने के लिए पास हो गया।

उस आन्दोलन का फल यह हुआ कि भारत सरकार ने १८८१ में पहला फैक्टरी-कानून पास किया, जिसके अनुसार ७ वर्ष से कम की आयु का बच्चा कारखानों में काम नहीं कर सकता था और १२ वर्ष तक के बालक दिन में केवल ८ घण्टे काम कर सकते थे।

किन्तु इस ऐक्ट से कोई भी संतुष्ट नहीं हुआ। मजदूरों के हितैषी चाहते थे कि कानून में स्त्री मजदूरों पर भी नियंत्रण किया जाता और बालक मजदूरों को और अधिक संरक्षण प्रदान किया जाता। अस्तु, कानून के बनने के साथ-साथ भारतवर्ष और ब्रिटेन दोनों ही देशों में उसके विरुद्ध आन्दोलन होने लगा।

इसके फलस्वरूप बम्बई सरकार ने १८८४ में एक मजदूर कमीशन मजदूरों की दशा की जांच करने के लिए बिठाया। इधर भारतीय मिल मालिकों ने भी नये मजदूर पक्षीय आन्दोलन का विरोध करना आरम्भ

कर दिया। मिल मालिकों के प्रचार की असत्यता प्रमाणित करने के लिए मजदूरों के हितैषियों तथा मजदूरों को यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि मजदूरों का भी संगठन किया जावे और उनकी आवाज भी सरकार तक पहुँचाई जावे। इस आवश्यकता के फलस्वरूप भारत को उसका प्रथम मजदूर नेता नारायण मेघजी लोखांडे प्राप्त हुआ।

श्री लोखांडे ने पहला काम यह किया कि बम्बई में मजदूरों का एक सम्मेलन किया। सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य मजदूरों की मांगों को कमीशन के सामने रखना था। सम्मेलन २३ और २६ सितम्बर १८८४ को हुआ और मजदूरों की ओर से एक आवेदन पत्र तैयार किया गया जिस पर ५५०० मजदूरों ने हस्ताक्षर किये थे।

उस आवेदन पत्र में नीचे लिखी मुख्य मांगें रक्खी गई थीं:— १. रविवार को छुट्टी रहे २. प्रतिदिन दोपहर को आधे घंटे का विश्राम दिया जाय; ३. मिलों में ६½ बजे प्रातःकाल काम शुरू हो और सूर्य डूबने पर समाप्त कर दिया जाय ४. पिछले महीने का वेतन अगले महीने की १५ तारीख तक अवश्य मिल जाय। ५. यदि किसी मजदूर को गहरी चोट लग जावे तो उसके अच्छे होने तक पूरा वेतन दिया जाय और यदि मजदूर जीवन भर के लिए बेकार हो जावे तो उसे उचित हर्जाना दिया जावे।

कमीशन ने मजदूरों की इन मांगों पर विचार किया और अपनी रिपोर्ट दे दी, किन्तु भारत सरकार ने उस पर कोई कार्यवाही करना अस्वीकार कर दिया।

मैंचेस्टर के व्यवसायियों का प्रस्ताव

भारत सरकार के फैक्टरी कानून में संशोधन न करने का परिणाम यह हुआ कि विलायत में फिर आन्दोलन आरम्भ हुआ। लंकाशायर के फैक्टरी इंस्पैक्टर जोन्स महोदय, जो बम्बई के सूती कपड़े के कारखानों

को देखने के लिए आये थे, इग्लैंड लौटने पर उन्होंने बम्बई मिलों के विरुद्ध बहुत से लेख वहां के पत्रों में लिखे और भारतीय मजदूरों की दीन-दशा का वर्णन खूब अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में किया। भारत मंत्री ने भारत सरकार का उन आरोपों की ओर ध्यान आकर्षित किया। इधर भारत में सूती कपड़े की मिलों की निरन्तर वृद्धि से शंकित होकर मैंचेस्टर के व्यवसायियों ने एक प्रस्ताव पास करके भारत में ब्रिटिश कानून लागू करने की मांग की। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय जनमत और विशेषकर मिल मालिक क्षुब्ध हो उठे और भारत में मजदूर कानून के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हुआ।

भारतवर्ष में नये फैक्टरी कानून के विरुद्ध जो आन्दोलन हो रहा था, उसमें मजदूर की आवश्यकताओं की घोर उपेक्षा की जाती थी। मिल मालिक यह कहते नहीं थकते थे कि स्वयं मजदूर मिल मालिक के विरुद्ध कोई संरक्षण नहीं चाहते हैं। अतएव अपनी कठिनाइयों को सरकार के समक्ष उपस्थित करने के उद्देश्य से बम्बई के मजदूरों ने २४ अक्टूम्बर १८८६ को गवर्नर जनरल के पास एक आवेदन-पत्र भेजा जिसमें उन्हीं मांगों को दोहराया गया था कि जो १८८४ के मजदूर सम्मेलन ने स्वीकार की थी।

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि जोन्स ने भारतीय कारखानों के सम्बन्ध में जो दोषारोपण किये थे, उनकी ओर भारतमन्त्री ने भारत सरकार का ध्यान आकर्षित किया था। किन्तु भारत सरकार ने उन दोषों को अस्वीकार कर दिया। किन्तु साथ ही १८८१ के फैक्टरी कानून का संशोधन करना स्वीकार कर लिया। परन्तु भारत-सरकार बम्बई फैक्टरी कमीशन की सिफारिशों के आधार पर नया फैक्टरी कानून बनाना चाहती थी, परन्तु मैंचेस्टर के व्यवसायी अधिक कड़ा फैक्टरी कानून चाहते थे। अस्तु, भारत सरकार ने जो बिल बनाया, वह रोक दिया गया।

मिल मजदूरों की सभा

इस समय एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना हुई। २४ एप्रिल १८६० को १०,००० मिल मजदूरों की एक बड़ी सभा हुई, जिसमें दो स्त्री मजदूरों ने भी भाषण दिये और रविवार को छुट्टी की माँग की। उसी सभा में रविवार की साप्ताहिक छुट्टी के लिए एक मैमोरियल तैयार किया गया और बम्बई मिल-मालिक संघ के पास भेजा गया। मिल मालिक संघ ने अपनी १० जून १८६० की साधारण बैठक में मजदूरों की इस मांग को स्वीकार कर लिया। मजदूरों की यह पहली विजय थी।

इसी बीच में मजदूर आन्दोलन भी जड़ पकड़ता जा रहा था। श्रीयुत लोखांडे मज़दूर आन्दोलन के जनक और उसकी आत्मा थे। उन्होंने १८६० में बम्बई के मजदूरों का एक संघ स्थापित किया, जिसका नाम "बम्बई मजदूर संघ" था। उस संघ के सभापति श्री लोखांडे स्वयं थे और उसके मंत्री श्री डी. सी. अथेड थे। यह भारत का प्रथम मजदूर संघ था।

मजदूर-पत्र

श्री लोखांडे ने बम्बई मजदूर-संघ की स्थापना के साथ ही एक पत्र भी प्रकाशित किया, जिसका मुख्य उद्देश्य मजदूरों के प्रश्न को उपस्थित करना और उनकी मांगों का प्रचार करना था। इस पत्र का नाम "दीनबंधु" था। भारत का यह पहला मजदूर पत्र था। अभी तक मजदूर आन्दोलन केवल मजदूरों की कष्ट-गाथा को सरकार तथा मिल-मालिकों तक पहुँचा कर उनसे कुछ सुविधाओं की भिक्षा मांगना भर था। अभी तक मजदूर आन्दोलन में वह उग्रता दिखलाई नहीं देती थी कि जो भारतीय मजदूर आन्दोलन में बाद में दिखलाई दी।

मज़दूरों की नवीन मांगें

इसी समय भारत मंत्री के आदेश पर भारत सरकार ने एक मजदूर कमीशन बिठाया जिसके एक सदस्य मजदूरों के परम हितैषी श्री सोराबजी

सापुरजी बंगाली थे। कमीशन की सहायता के लिए तीन स्थानीय सदस्य और नियुक्त किये गए जिनको रिपोर्ट पर हस्ताक्षर करने का अधिकार नहीं था। बंगाल तथा संयुक्तप्रान्त का प्रतिनिधित्व इस कमीशन में श्री बाबू रसिकलाल घोष (कलकत्ता) तथा कानपुर की लाल इमली मिल के फोरमैन श्री रामजी मानिक जी ने किया था और बम्बई के स्थानीय सदस्य लोखांडे थे। इन स्थानीय सदस्यों ने कलकत्ता कानपुर तथा बम्बई से मजदूरों की गवाहियां कराई और कष्टों को सुनाने का प्रयत्न किया।

रिपोर्ट तैयार होने के पूर्व बम्बई मिल मजदूर संघ ने नीचे लिखी मांगें कमीशन के सामने उपस्थित की। १. मजदूरों को रविवार की छुट्टी मिलनी चाहिए। २. काम के घंटे ६ बजे प्रातःकाल और ५.३० सायंकाल के बीच में होना चाहिए। ३. यदि सम्भव हो तो दिन में एक घन्टे का पूरा विश्राम दिया जाय नहीं तो आध घन्टे का विश्राम अवश्य दिया जावे। ४. महीने की १५ तारीख को तनख़ाह अवश्य मिलनी चाहिए। ५. ६ से १४ वर्ष की आयु के बालक आधा दिन काम करें। ६. स्त्रियां केवल ७ बजे प्रातः काल से लेकर ५ बजे सांयकाल तक काम करें। ७. बीमार होने तथा चोट लगने पर मजदूरों को आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध होना चाहिए। ८. प्रत्येक कारखाने में एक अस्पताल होना चाहिए। ९. प्रत्येक मिल में बालक मजदूरों की शिक्षा के लिए एक स्कूल होना चाहिए। श्री लोखांडे ने कहा कि यदि मजदूरों की ऊपर लिखी मांगों को नये फैक्टरी ऐक्ट में समावेश कर लिया जावे तो मजदूरों को फिर कोई शिकायत नहीं रहेंगी।

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट १२ नवम्बर १८९० को दी और उसके आधार पर भारत सरकार ने एक बिल लैजिस्लेटिव कौंसिल में उपस्थित किया और १९ मार्च १८९१ को नया फैक्टरी कानून बन गया, जिसकी तीन बातें उल्लेखनीय थीं। पहले स्त्रियों के लिए दिन में ११ घन्टे काम करने का समय निर्धारित किया गया। दिन में १½ घन्टा विश्राम

का दिया गया और तीसरी मुख्य बात यह भी कि बालक मजदूरों की आयु ७-१२ से बढ़ा कर ६-१४ कर दी गई।

१६०४ और १६०५ में संयुक्तराज्य अमेरिका के गृह-युद्ध के कारण वहाँ कपास की फसल उत्पन्न नहीं की गई और भारतीय सूती वस्त्र व्यवसाय को दैवी प्रोत्साहन मिल गया। बहुत सी नई मिलें स्थापित हुई और मिलों में अधिक समय तक काम होने लगा। भारत में अंग्रेजी पत्रों ने इसके विरुद्ध फिर आन्दोलन किया, क्योंकि वे पत्र अंग्रेजों के थे और वे मैंचेस्टर के व्यवसायियों के समर्थक थे। बम्बई के मिल मजदूरों ने भी एक प्रार्थना पत्र भारत सरकार को इस आशय का भेजा कि पुरुषों के काम के घन्टे भी निर्धारित कर दिये जावें।

इसी समय बंग-भंग आंदोलन आरम्भ हुआ और बंगाल के कुछ नेताओं ने मजदूरों का पक्ष लिया और उन्हें अपनी हड़तालों में सहायता दी। १६०६ में लंकाशायर के कारखानों के मजदूरों के संघ ने भारत मंत्री के पास एक शिष्ट मंडल भेजकर भारत में पुरुषों के काम के घंटों को नियन्त्रित करने की प्रार्थना की। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत सरकार ने फिर एक मजदूर कमीशन बिठाया। उस जांच कमीशन ने सूती कारखानों में पुरुषों के काम के घन्टों को १२ निश्चित कर देने की सिफारिश की। अस्तु, भारत सरकार ने १६११ में तीसरा फैक्टरी कानून पास कर के सूती कपड़े के कारखानों में पुरुषों के काम करने के घन्टे १२ तथा बालकों के ६ निर्धारित कर दिये।

इसी समय मजदूरों के प्रथम नेता श्री लोखांडे तथा मजदूरों के परम हितैषी श्री बंगाली की मृत्यु हो गई। किन्तु उन्होंने जिस मजदूर आन्दोलन की देश में जड़ जमाई थी, वह मरा नहीं। मजदूरों ने उस आन्दोलन को जीवित रक्खा, यद्यपि नेतृत्व न होने के कारण आन्दोलन की प्रगति रुक गई। १६०६ में बम्बई के मजदूरों ने फिर एक बहुत बड़ी सभा कर के मिल मालिकों की कुछ अनुचित कार्यवाहियों की

निन्दा की और कानून द्वारा पुरुषों के काम के घन्टों को निश्चित कर देने की मांग का समर्थन किया।

१९११ में बम्बई के मजदूरों का दूसरा संगठन स्थापित हुआ। इस संघ का नाम "कामगार हितवर्धक सभा" था। इस सभा ने भारत सरकार को एक मैमोरियल भेज कर पुरुषों के लिए १२ घन्टे का दिन, चोट लगने या मर जाने पर क्षति पूर्ति, बालकों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध और रहने के लिए अच्छे मकानों की मांग रक्खी, इस सभा ने "कामगार समाचार" नाम से एक साप्ताहिक पत्र भी निकाला। यह सभा आज भी सफलता पूर्वक कार्य कर रही है।

शर्तबन्द कुली प्रथा का समाप्त होना

१८३४ में हब्शियों को दास बना कर ब्रिटिश उपनिवेशों में काम लेने की प्रथा का अन्त हो गया और निग्रो जाति के लोग दासता से मुक्त कर दिये गए। अस्तु, उन उपनिवेशों की उन्नति के लिए कुलियों की आवश्यकता हुई और भारत में शर्तबन्द कुलियों को भरती करके वहां ले जाया जाने लगा। मारिशस, ट्रिनीडाड, जमैका, नैटाल, दक्षिणी अफ्रीका, ब्रिटिश गायना, डच गायना, फिजी, स्ट्रेट सैटिलमेंट और मलाया में भारतीय शर्तबंद कुली भेजे जाने लगे।

शर्तबंद कुली प्रथा के अन्तर्गत जहां किसी अपढ़ और निर्धन भारतीय ने अपने को भरती करवाया, उसको विदेशों में जाने के लिए विवश होना पड़ता था। भरती करने वाले उन्हें धोखा देकर अंगूठा लगवा लेते थे, फिर उन्हें ज्ञात होता था कि पांच वर्षों के लिए उन्हें विदेशों में काम करने के लिए जाना होगा। विदेशों में इन शर्तबंद मज़दूरों की दशा अत्यन्त शोचनीय होती थी। उनके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया जाता था कि जिससे अपमान भी अपमानित होता और लज्जा को भी लज्जा लगती थी। उनका जीवन दासों से भी गया-बीता था। मालिक दासों के साथ अच्छा व्यवहार करता था, क्योंकि वह उसकी सम्पत्ति होता था और मर

जाने से उसकी हानि होती थी, किन्तु शर्तबंद कुलियों के शीघ्र मर जाने से उनकी कोई आर्थिक हानि तो होती नहीं थी; अस्तु, उन्हें रहने के लिए अत्यन्त गंदे स्थान दिये जाते थे। उनका वेतन इतना कम होता था कि वे कभी कुछ बचा ही नहीं सकते थे। उन्हें कोड़ों से मारा जाता और बिना किसी विशेष कारण के मालिक की इच्छा पर जेल में भेज दिया जाता था। कुलियों का सामाजिक जीवन भी अत्यन्त पतित होता था। कुली प्रथा के नियम के अनुसार १०० पुरुषों के पीछे केवल ४० स्त्रियां भरती की जाती थीं; अस्तु, उनका नैतिक पतन होना अवश्यम्भावी था। इन उपनिवेशों में कुलियों का जीवन ऐसा दुखी रहता था कि बहुत से उस से छुटकारा पाने के लिए आत्महत्या कर लेते थे

यों तो सभी उपनिवेशों में भारतीयों की दशा दयनीय थी, किन्तु दक्षिण अफ्रीका में कुछ ऐसी समस्यायें उठ खड़ी हुईं, जिनसे भारत में बहुत असंतोष और क्षोभ उत्पन्न हुआ और उपनिवेशों में भारतीयों की गिरी हुई दशा प्रकाश में आगई। जब भारतीयों के परिश्रम से दक्षिण अफ्रीका का उपनिवेश गोरों के रहने योग्य हो गया तो गोरों ने भारतीयों को वहां से हटा देने का निश्चय किया और क्रमशः भारतीयों के विरुद्ध नये-नये क़ानून बनना आरम्भ हो गए। महात्मा गांधी के नेतृत्व में वहां सत्याग्रह आन्दोलन छिड़ा। इस आन्दोलन के फलस्वरूप उपनिवेशों में रहने वाले भारतीयों के प्रति भारत की जनता में गहरी सहानुभूति उत्पन्न हुई और शर्तबंद कुली प्रथा को समाप्त कर देने के लिए यहां आन्दोलन होने लगा। अन्त में १९१७ में यह प्रथा समाप्त हो गई।

योरोपीय महायुद्ध और मज़दूर संगठन

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि मज़दूरों का पहला संघ १८९० में स्थापित हुआ और १९१० में कामगार हितवर्धक सभा बनी। इसी समय कुछ भारतीयों ने जो इंग्लैंड में रहते थे और उनके अंग्रेज मित्रों ने जो कि भारतीय मज़दूरों की समस्या में रुचि रखते थे, भारतीय

मज़दूर हितैषिणी लीग (Indian workers welfare league) १९११ में स्थापित की। किन्तु इन मज़दूर सभाओं का मज़दूरों पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि भारतीय मज़दूर अपनी छिपी हुई शक्ति और अपने वास्तविक हितों से अनभिज्ञ थे, मिल-मालिकों की ओर उनकी भावना "माँ बाप" की थी।

किन्तु योरोपीय महायुद्ध (१९१४–१९१९) ने इस भावना में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। महायुद्ध के फलस्वरूप रहन-सहन बहुत खर्चीला हो गया, किन्तु मजदूरी उस अनुपात में नहीं बढ़ी। युद्ध के समय भारतीय मिलों को कल्पनातीत लाभ हुआ और औद्योगिक उन्नति तेजी से हुई। मिल मालिकों में बहुत एकता और संगठन था, इस कारण मजदूरों की दशा और भी दयनीय हो गई। परन्तु युद्ध के कारण देश में औद्योगिक, राजनैतिक तथा सामाजिक उथल-पुथल हुई और भारतीय मजदूर जाग पड़ा। जीवन की आवश्यक वस्तुओं के अत्यन्त मंहगे हो जाने और मजदूरी के अधिक न बढ़ने से मजदूर क्षुब्ध हो उठा। ऊपर से गरीब मजदूर और किसानों से लड़ाई के लिए जबरदस्ती चंदा लिया जाता था, फौजों में भरती भी दबाव के कारण होती थी, इससे भारतीय जनता क्षुब्ध थी ही। उधर महात्मा गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया। ब्रिटिश सरकार का दमन, जलियांवाला बाग का गोली-काण्ड इत्यादि कुछ घटनायें ऐसी हुईं कि भारतीय लोग अत्यन्त क्षुब्ध हो गये। उधर ब्रिटिश उपनिवेशों में भारतीय मजदूरों के साथ जैसा बुरा व्यवहार किया जा रहा था, उससे भारतवासी बहुत रुष्ट थे ही। अस्तु, भारत का मजदूर उग्र होता जा रहा था। उधर रूस की बोलशैविक क्रान्ति ने तो संसार भर के मजदूरों में नवीन उत्साह का संचार कर दिया। युद्ध के समाप्त होने पर जो सैनिक हटाये गए, वे कारखानों इत्यादि में काम करने गये। वहां की दशा और पश्चिमी देशों के मजदूरों की दशा की तुलना करने पर उन्हें आकाश-पाताल का अन्तर दिखा। वे अपने साथ जो विदेशों से नया ज्ञान और नये विचार लाये थे, उन्होंने अन्य साथी मजदूरों में भर दिये।

इसके अतिरिक्त योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त भारतवर्ष में राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ-साथ राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं का ध्यान मजदूरों की ओर भी गया और उन्हें शिक्षित-वर्ग का नेतृत्व प्राप्त हो गया। विशेषकर कम्युनिस्ट पार्टी जो कि बाद को भारत में भी काम करने लगी और संगठित हुई उसने मजदूरों को संगठित करने का विशेष रूप से कार्य किया।

इन सब कारणों से युद्ध के उपरान्त देश में ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि मजदूरों का संगठन किया जा सके। यही नहीं, जिन कठिनाइयों का भारतीय मजदूर उस समय सामना कर रहे थे, उसका केवल एक ही उपाय था और वह था– उनका संगठन। अस्तु १९१८ के उपरांत देश में मजदूर सभाओं का तेजी से संगठन हुआ।

सबसे पहली औद्योगिक ट्रेड यूनियन (मजदूर-सभा) २७ एप्रिल १९१८ में मद्रास के सूती कपड़े के कारखानों के मजदूरों की स्थापित हुई। इसकी स्थापना श्री बी. पी. वाडिया ने की। १९१९ में मद्रास प्रांत में चार ट्रेड यूनियनें काम कर रहीं थीं, जिनके सदस्यों की संख्या २० हजार थी।

मद्रास से यह संगठन की लहर अन्य प्रान्तों में फैली और देखते-देखते बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों में मजदूर सभायें तेजी से स्थापित हो गईं। कुछ ही दिनों में देश के प्रत्येक धंधे में मजदूरों का संगठन हो गया।

इस नव चैतन्य का एक दूसरा फल यह हुआ कि भारतीय मजदूर विद्रोही हो उठा और सारे देश में मालिक और मजदूरों का संघर्ष छिड़ गया। मजदूर उग्र हो गया और उसकी मालिक के प्रति 'मां-बाप' की भावना तिरोहित हो गई।

जहां हड़तालों के रूप में मजदूरों का मालिकों से संघर्ष चल रहा था, वहां कुछ रचनात्मक कार्य भी हुआ। दिसम्बर १९१९ में बम्बई में मजदूरों का एक सम्मेलन हुआ, जिसमें बम्बई की ७५ मिलों के मजदूर

उपस्थित थे। उस सम्मेलन ने एक मैमोरेंडम तैयार किया, जिसमें काम के घंटों को घटाने, विश्राम के समय को बढ़ाने और मजदूरों के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की मांग की गई थी।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण कार्य अहमदाबाद में हुआ। २५ और २६ फरवरी १६२० को महात्मा गांधी ने क्रमशः कत्तियों और बुनकरों की यूनियन स्थापित की। आगे चल कर महात्मा गांधी ने अन्य सभी विभागों में काम करने वाले मजदूरों की प्रथम यूनियन स्थापित कर दी और अहमदाबाद के सूती कपड़े के कारखानों के मजदूरों का एक बहुत सबल संगठन खड़ा हो गया।

मजदूर सभाओं का संघ

जब कि भारत में औद्योगिक ट्रेड यूनियनें स्थापित हो रही थीं उसी समय उनमें एक केन्द्रीय संगठन में सम्बद्ध होने की प्रवृत्ति आरम्भ हो गई। इसका कारण यह था कि सभी यूनियनों के नेतृत्व करने वाले एक ही व्यक्ति थे। इसके अतिरिक्त मजदूरों के नेताओं ने यह भी समझ लिया था कि जब मजदूरों में एकता न होगी, उनका लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। अस्तु, आरम्भ में जिन औद्योगिक केन्द्रों में एक से अधिक यूनियन स्थापित हुई थीं, वहाँ स्थानीय संघ स्थापित हो गए। उदाहरण के लिए मद्रास में सेंट्रल लेबर बोर्ड, तथा बम्बई में बम्बई सेंट्रल लेबर बोर्ड, तथा बम्बई सेंट्रल लेबर फेडरेशन स्थापित हुए। आगे चल कर प्रांतीय तथा अखिल भारतीय संघ की भी स्थापना हुई।

भारतीय अदालतें और ट्रेड यूनियन

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त भारतीय मजदूर की मनोवृत्ति अत्यन्त उग्र हो गई और आये दिन मिल मालिकों तथा मजदूरों में संघर्ष होने लगे। शिक्षित वर्ग का नेतृत्व और सहयोग पाने के कारण मजदूरों का संगठन दृढ़ होता जा रहा था। मिल मालिक इसको सहन नहीं कर सकते थे। वे मजदूरों के इस संगठन और

आन्दोलन को धक्का देकर नष्ट कर देना चाहते थे और उन्हें अवसर भी शीघ्र मिल गया। मदरास की बकिंघम मिल्स के मजदूरों और मालिकों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ, जिसके फलस्वरूप हड़ताल और द्वारावरोध (Lock out) हुआ। कम्पनी ने श्री बी. पी. वाडिया तथा अन्य मजदूर सभा के नेताओं के विरुद्ध हाईकोर्ट में हर्जाने का दावा कर दिया। मदरास की हाई कोर्ट ने मजदूर नेताओं पर ७००० पौंड और मुकदमें के खर्च की डिगरी करदी और मजदूर नेताओं को भविष्य में इस प्रकार की हड़ताल इत्यादि न कराने की आज्ञा दे दी। कम्पनी मजदूर नेताओं से इस शर्त पर हर्जाना वसूल न करने पर तैयार हुई कि श्री वाडिया भविष्य में मजदूर आन्दोलन से कोई भी सम्बन्ध न रक्खेंगे। श्री वाडिया ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और मालिकों के हाथ में ट्रेड यूनियन के विरुद्ध एक अत्यन्त कारगर अस्त्र आ गया।

इस अदालती आदेश का भारतीय मजदूर नेताओं और विशेष कर ब्रिटेन की लेबर पार्टी ने विरोध किया। ब्रिटेन की ट्रेड यूनियन कांग्रेस की पार्लियामेंटरी कमेटी का एक शिष्ट-मंडल तत्कालीन भारत-मंत्री से मिला और उन्हें भारतीय मजदूर आन्दोलन की इस कानूनी कठिनाई से अवगत कराया। भारत-मंत्री ने आश्वासन दिया कि भारत-सरकार शीघ्र ही मजदूर-आन्दोलन की इस कठिनाई को दूर कर देगी। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप १९२६ में ट्रेड यूनियन एक्ट पास हुआ (देखो परिच्छेद पांचवाँ) जिसके अन्तर्गत रजिस्टर होने पर मजदूर सभाओं को हड़ताल कराने का अधिकार मिल गया।

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस

इन सब कठिनाइयों के रहते हुए भी मजदूर आन्दोलन लगातार आगे बढ़ता चला जा रहा था। १९२० में उसका स्वरूप अखिल भारतीय हो गया और उस वर्ष बम्बई में स्वर्गीय लाला लाजपतराय की

अध्यक्षता में प्रथम अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उस अधिवेशन में एक स्थायी समिति बना दी गई जो कि कांग्रेस का उस समय तक काम संभाले जब तक कि कांग्रेस का विधान न तैयार हो जाय। अधिवेशन में घंटों को कम करने, मजदूरी में वृद्धि करने, अच्छे मकानों, औषधि तथा चिकित्सा की सुविधा देने तथा बुढ़ापे और बच्चा पैदा होने पर कुछ अलाउन्स देने के सम्बन्ध में विचार हुआ और प्रस्ताव पास हुए। इस कांग्रेस में इंगलैंड की ट्रेड यूनियन और ब्रिटिश लेबर पार्टी की ओर से श्री वेजवुड महोदय प्रतिनिधि हो कर आये थे। वास्तव में भारतीय मजदूर आन्दोलन १९२० में उस स्थिति में नहीं था कि उसको एक अखिल भारतीय रूप दिया जाता, किन्तु मजदूर आन्दोलन को एक मंच चाहिए था और अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ में मजदूरों के प्रतिनिधियों को भेजने के लिए भी एक केन्द्रीय संस्था की आवश्यकता थी।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन झरिया में ३० नवम्बर १९२१ से २ दिसम्बर १९२१ तक हुआ। उस अधिवेशन में १०,००० प्रतिनिधि आये थे, जो १०० ट्रेड यूनियनों का प्रतिनिधित्व करते थे। प्रतिनिधि सभी प्रान्तों से आये थे। श्री जोसेफ बैपटिस्टा इस अधिवेशन के सभापति थे। अधिकतर वाद-विवाद काम के घन्टों, मजदूरी, हड़तालों तथा मालिक और मजदूरों के संघर्ष के समझौते के तरीकों पर हुआ। एक प्रस्ताव रूस के दुर्भिक्ष के सम्बन्ध में रूस से सहानुभूति प्रदर्शित करने का भी पास हुआ। एक दूसरे प्रस्ताव से ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने संसार के मजदूरों से यह आशा प्रकट की कि भविष्य में वह युध्द नहीं होने देंगे। इस अधिवेशन में कांग्रेस का विधान स्वीकृत हुआ।

कांग्रेस की एक कार्यकारिणी कौंसिल (एक्जीक्यूटिव कौन्सिल) है। इसके अतिरिक्त उनके कार्य को संगठित रूप से आगे बढ़ाने के लिए प्रान्तीय कौन्सिलें हैं। एक्जीक्यूटिव कौन्सिल में सभापति, उप

सभापति, कोषाध्यक्ष, प्रधान मंत्री तथा सहायक मन्त्री पदेन एक्जीक्यूटिव कौन्सिल के सदस्य होते हैं। इनके अतिरिक्त दस और सदस्य हो सकते हैं। जिसमें ट्रेड यूनियन कांग्रेस का भूतपूर्व सभापति जो वार्षिक अधिवेशन पर चुना जावे और सम्बन्धित यूनियनों के प्रतिनिधि जो निम्न लिखित आधारों पर चुने जाते हैं।

एक प्रतिनिधि उन यूनियनों का होता है जिनके १००० सदस्य होते हैं।

दो सदस्य उन यूनियनों के होते हैं जिनके सदस्य १००० से ३००० तक होते हैं।

तीन सदस्य उन यूनियनों के होते हैं जिनके सदस्य ४००० से ५००० के बीच में होते हैं।

४ प्रतिनिधि उन यूनियनों के होते हैं जिनके सदस्य ५००० से ऊपर होते हैं।

जो यूनियन कांग्रेस से सम्बन्धित होती हैं उन्हें अपने नियमों के अनुसार अपने कार्य को करने की पूरी स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक यूनियन को कांग्रेस से सम्बन्धित होने के लिए फीस देनी पड़ती है। छोटी यूनियनों को १० रुपये और बड़ी यूनियनों को ५० रु फीस देनी पड़ती है। जब कोई यूनियन आवश्यक फीस दे और कांग्रेस का विधान और नियम इत्यादि स्वीकार कर ले तब वह कांग्रेस से सम्बधित हो सकती है। कांग्रेस का उद्देश्य भारत के सभी धन्धों और पेशों तथा सभी प्रान्तों के मजदूरों के कामों को एक सूत्र में बांधना है और संसार के किसी भी ऐसे संगठन से वह अपना सम्बन्ध जोड़ सकती है जिसका उद्देश्य मजदूरों का हितवर्धन हो। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रत्येक यूनियन को अपने कार्य में स्वतंत्रता प्रदान कर दी गई; किन्तु यदि कोई यूनियन हड़ताल करे और कांग्रेस से आर्थिक सहायता चाहे तो वह उसी दशा में दी जा सकती है जब कि हड़ताल कांग्रेस के लिये

एक्जीक्यूटिव कौन्सिल की आज्ञा प्राप्त कर ली गई हो। किन्तु व्यवहार में इस नियम को लागू नहीं किया जाता है। कुछ प्रांतों में कांग्रेस की प्रान्तीय कमेटियां स्थापित की गई जो कि कांग्रेस की कार्य-कारिणी समिति की देख-रेख में कांग्रेस के उद्देश्यों का प्रचार करती हैं।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अतिरिक्त रेलवे यूनियनों ने मिल कर अपना एक केन्द्रीय संगठन "अखिल भारतीय रेलवे मैनस् फेडरेशन" स्थापित किया। १६२५ में इस केन्द्रीय संगठन की स्थापना हुई और लगभग सभी रेलवे यूनियनें उससे सम्बन्धित हो गईं। रेलवे मैन्स फेडरेशन भारत का एक प्रबल और प्रमुख मजदूर संघ है। रेलवे बोर्ड ने भी उसको स्वीकार कर लिया है और प्रत्येक ६ महीने के उपरान्त रेलवे बोर्ड फेडरेशन के प्रतिनिधियों को बुला कर मजदूरों से सम्बन्धित प्रश्नों पर बातचीत करता है और रेलवे में काम करने वाले मजदूरों की मजदूरी तथा अन्य समस्याओं पर निर्णय किये जाते हैं।

१६२४ के उपरान्त भारत में मजदूर आन्दोलन के अन्तर्गत कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ने लगा। कम्युनिस्टों के प्रभाव का परिणाम यह हुआ कि भारतीय मजदूर में तीव्र वर्ग चैतन्य उदय हुआ और मजदूर आन्दोलन में उग्रता आ गई। क्रमशः लम्बी हड़तालें होने लगी। सरकार की ओर से दमन होने लगा और मजदूरों में कटुता उत्पन्न हो गई। सरकार के दमन का प्रभाव यह हुआ कि कम्युनिस्टों का मजदूरों पर प्रभाव बढ़ता गया। सरकार ने सर्व प्रथम कम्युनिस्ट आन्दोलन की ओर १६२४ में ध्यान दिया और उनके प्रभाव को नष्ट करने के लिए कानपुर में वाम पक्षीय मजदूर कार्य कर्त्ताओं को पकड़ कर सरकार ने उन पर एक षड्यंत्र का मुकदमा चलाया। इसका परिणाम यह हुआ कि थोड़े समय के लिए कम्युनिस्ट पार्टी को इससे धक्का लगा किन्तु उनका प्रभाव बढ़ता ही गया। बात यह थी कि बहुत से मिल मालिक साधारण मजदूर सभाओं के कार्यकर्त्ताओं की बात नहीं सुनते थे

किन्तु जब कम्युनिस्ट लोग अपने प्रचार के द्वारा मजदूरों में कटुता उत्पन्न करते और उन्हें अत्यन्त उग्र बना देते तब जाकर वे झुक जाते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि बम्बई इत्यादि स्थानों में कम्युनिस्टों का मजदूरों पर बहुत प्रभाव बढ़ गया।

१६२४ में योरोप से और विशेष कर इगलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ कार्यकर्त्ता भारत में आये और उन्होंने यहाँ के औद्योगिक केन्द्रों से अपना सम्बंध स्थापित किया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को और अधिक बल मिला। यही नहीं प्रान्तीय सरकारों ने जब १६२४ के उपरान्त कम्युनिस्टों के विरुद्ध दमन नीति को अपनाया और कम्युनिस्टों को कम्युनिस्ट पार्टी के रूप में कार्य करना कठिन हो गया तो उन्होंने ट्रेड यूनियनों में घुस कर उनके द्वारा कार्य करना आरम्भ कर दिया। १६२७ में उन्होंने एक मजदूर किसान पार्टी स्थापित की। इस पार्टी का उद्देश्य नये मजदूर संघों को स्थापित करना और जो मजदूर सभायें सुधारवादी मजदूर नेताओं के हाथ में थीं उन्हें उनके प्रभाव से निकालना था। कम्युनिस्टों ने इसी वर्ष बम्बई में "गिरनी कामगार यूनियन" नामक ट्रेड यूनियन स्थापित की और देखते-देखते वह एक प्रबल संगठन बन गया। इसमें संदेह नहीं कि उस समय बम्बई के मजदूरों पर कम्युनिस्टों का विशेष प्रभाव था। जब वहां ६ महीने की लम्बी हड़ताल हुई, तो उसका नेतृत्व कम्युनिस्टों ने ही किया था। कम्युनिस्टों के पास यथेष्ट धन भी था क्योंकि उन्हें विदेशों से भी सहायता मिलती थी।

बम्बई में सफलता प्राप्त होने से उन्हें और भी उत्साह हुआ और उन्होंने भारतीय मजदूर आन्दोलन पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने की योजना बनाई। अवसर भी उनके अनुकूल था। नेशनल कांग्रेस (राष्ट्रीय महासभा) अभी तक मजदूर आन्दोलन की ओर से प्रायः उदासीन थी। कहीं-कहीं कोई कांग्रेस का कार्यकर्त्ता मजदूर आन्दोलन में भाग लेता था। किन्तु कांग्रेस का उधर ध्यान ही नहीं था। नरम-

दल के सुधारवादी मजदूर नेताओं को प्रवृत्ति सरकार से भिक्षा मांग कर मजदूरों के लिये कुछ सुविधाएं प्राप्त करने की थी। वे संघर्ष से बचते थे। इस कारण कम्युनिस्टों के लिए मजदूरों पर अपना प्रभाव स्थापित कर लेना बहुत सरल था।

बम्बई के उपरान्त उन्होंने अपना ध्यान बंगाल की ओर फेरा और कलकत्ते में एक प्रचार केन्द्र स्थापित किया। उनका प्रभाव क्रमशः बढ़ रहा था। मजदूर उस समय बहुत ही क्षुब्ध थे, प्रत्येक केन्द्र में मजदूरों और मालिकों के बीच संघर्ष था। उन्होंने इस परिस्थिति का लाभ उठा कर लम्बी हड़तालें करवाईं और उसके फल स्वरूप उनका प्रभाव और भी बढ़ा। अब उन्होंनें ट्रेड यूनियन कांग्रेस को हथियाने की योजना तैयार की। स्वर्गीय श्री सकलतवाला इंगलैंड की कम्युनिस्ट पार्टी के प्रमुख कार्यकर्त्ता १९२७ की मार्च में देहली के ट्रेड यूनियन कांग्रेस अधिवेशन में सम्मिलित हुए। उनकी उपस्थिति का लाभ उठा कर कम्युनिस्टों ने अपने को अधिक सुसंगठित तथा बलशाली बना लिया। इसके उपरान्त १९२८ के मार्च से देहली के ट्रेड यूनियन कांग्रेस में वे एक प्रथक समूह के रूप में प्रकट हुए। अब उन्होंने अपने सिद्धांतों, कार्यक्रम तथा नीति को काँग्रेस द्वारा स्वीकार कराने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया।

इस समय भारतवर्ष में घोर राजनैतिक अशान्ति थी। सायमन कमीशन का बहिष्कार किया जा रहा था। स्वर्गीय श्री मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक सर्व दल सम्मेलन किया गया था जिसमें भारत का भावी शासन विधान तैयार किया गया जो सभी दलों को मान्य था। कम्युनिस्ट भी उस सम्मेलन में एक दल के रूप में सम्मिलित हुए थे और उन्होंने अपने कार्यक्रम तथा नीति के समर्थन में खूब ही प्रचार किया। पं. जवाहरलाल नेहरू इस समय योरोप से लौट कर आये थे। उनकी विचारधारा समाजवादी थी। वे राष्ट्रीय महासभा के केवल

प्रधान मंत्री ही नहीं थे वरन भारत में समाजवादी विचार धारा के पोषक भी थे। अस्तु, उनके प्रभाव का भी कम्युनिस्टों ने लाभ उठाया। दिसम्बर १९२८ में जब ट्रेड यूनियन कांग्रेस का झरिया में अधिवेशन हुआ तो पं जवाहरलाल नेहरू भी कुछ समय के लिए अधिवेशन में गए। अगले वर्ष के लिए पं जवाहरलालजी को ट्रेड यूनियन कांग्रेस का सभापति चुन लिया गया।

कम्युनिस्टों के बढ़ते हुए प्रभाव को देख कर भारत सरकार चौकन्नी हुई और प्रसिद्ध मेरठ षड्यंत्र केस में प्रमुख कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं पर मुकदमें चलाये गए। १९२९ में बम्बई में फिर आम हड़ताल हुई। गिरनी कामगार यूनियन के नेताओं ने मजदूरों को अपने जोशीले भाषणों से उभार दिया। मज़दूरों को दमन का सामना करना पड़ा और क्रमशः मज़दूरों का उत्साह मंद पड़ गया।

१९२९ के दिसम्बर में नागपुर में ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन पं. जवाहरलाल नेहरू के सभापतित्व में हुआ। इस अधिवेशन में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के दक्षिण पक्ष तथा वाम पक्ष में तीव्र मतभेद और संघर्ष उपस्थित हो गया।

उसी समय भारत सरकार ने मजदूरों की दशा की जांच कराने के लिए लेबर कमीशन की नियुक्ति की थी। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में इस बात को लेकर घोर मतभेद था कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस लेबर कमीशन का बहिष्कार करे या नहीं। दक्षिण पक्षीय नेता मज़दूर कमीशन के साथ सहयोग करने के पक्ष में थे और वाम पक्षीय कार्यकर्त्ता उसका बहिष्कार करना चाहते थे। कम्युनिस्टों ने ट्रेड यूनियन कांग्रेस की कार्यकारिणी के सामने लेबर कमीशन का बहिष्कार करने, जिनेवा के वार्षिक अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवी सम्मेलन का बहिष्कार करने तथा ट्रेड यूनियन कांग्रेस का पैन पैसिफिक सैक्रटरियेट सानफ्रैंसिसको तथा मास्को के तृतीय इंटरनेशनल से सम्बंध जोड़ने और अन्तर्राष्ट्रीय ट्रेड-

यूनियन फैडरेशन का सदस्य बनने के प्रस्ताव रक्खे। कार्यकारिणी ने बहुमत से इन प्रस्तावों को स्वीकार कर लिया। कांग्रेस के खुले हुए अधिवेशन में इन प्रस्तावों का पास हो जाना निश्चित था; अस्तु, सुधारवादी दक्षिण पक्षीय मज़दूर प्रतिनिधियों ने कांग्रेस से प्रथक होकर एक नये अखिल भारतीय संघ को जन्म दिया जिसका नाम "आल इन्डिया फेडरेशन" रक्खा गया। अस्तु, नागपुर अधिवेशन के उपरान्त भारतीय मज़दूर आन्दोलन में फूट और दरार पड़ गई। इस मतभेद का प्रभाव यह हुआ कि मज़दूर आन्दोलन कुछ शक्तिहीन और शिथिल हो गया।

जब मजदूर आन्दोलन में फूट पड़ गई तो रेलवे फेडरेशन ने दो में से किसी भी अखिल भारतीय संगठन ट्रेड-यूनियन कांग्रेस या लेबर फेडरेशन से अपना सम्बन्ध नहीं रक्खा। अस्तु, रेलवे यूनियनें भारतीय संगठन से प्रथक होकर अपनी केन्द्रीय संस्था रेलवे मैनस् फेडरेशन के नेतृत्व में कार्य करने लगीं। अगले वर्ष के लिए ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सभापति श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गए। किन्तु ट्रेड यूनियन कांग्रेस में फिर भी एकता स्थापित न हो सकी।

श्री दीवान चमनलाल, एन. एम. जोशी, गिरी शिवाराव, एस. सी. जोशी और नायडू के नेतृत्व में इन्डियन लेबर फेडरेशन की स्थापना हुई और १ दिसम्बर १९२९ को नागपुर में दीवान चमनलाल के सभापतित्व में फेडरेशन का अधिवेशन हुआ और उसमें इन सुधारवादी मजदूर नेताओं ने लेबर कमीशन और राऊंड टेबिल सम्मेलन से सहयोग करने का प्रस्ताव स्वीकार किया।

इधर आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस में भी मतभेद उग्र रूप धारण कर रहा था। बात यह थी कि वामपक्षीय मजदूर कार्यकर्त्ताओं में भी दो दल थे। एक दल तो शुद्ध कम्युनिस्टों का था, जो उन उपायों को काम में लाना चाहता था कि जो तृतीय इण्टरनेशनल के बतलाये हुए तरीकों से काम करना चाहता था।

किन्तु एक दल उन कार्यकर्त्ताओं का भी था जो श्री एम. एन. राय के नेतृत्व में उनकी नीति का समर्थन करता था। श्री एम. एन. राय उस समय गुप्त रूप से भारत में आगए थे और सरकार की दृष्टि से छिप कर रह रहे थे। उनके नेतृत्व में एक दल ट्रेड-यूनियन कांग्रेस पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता था। किन्तु शीघ्र ही श्री एम. एन. राय गिरफ्तार हो गए और उन्हें लम्बे समय के लिए कैद कर दिया गया। अस्तु, एम. एन. राय. के अनुयायियों को अपने नेता के नेतृत्व से वंचित होना पड़ा। यद्यपि वे छिप कर ही कार्य कर रहे थे फिर भी उनकी गिरफ्तारी से उनके दल को क्षति पहुँचा। उधर १९३० में कांग्रेस का आन्दोलन आरम्भ हुआ और उसके परिणाम स्वरूप सारे सार्वजनिक कार्य अस्त-व्यस्त हो गए। और जब १९३१ में कलकत्ते में ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो वहां कम्युनिस्ट और रायवादियों में टक्कर हुई और ट्रेड यूनियन कांग्रेस के फिर दो भाग हो गए और उसमें फिर फूट हो गई।

कलकत्ता के ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में इस प्रश्न को लेकर झगड़ा उठ खड़ा हुआ कि बम्बई की गिरनी कामगार यूनियन के वास्तविक प्रतिनिधि कौन हैं। दो प्रतिद्वन्द्वी दल अपने को गिरनी काम-गार यूनियन का प्रतिनिधि घोषित करते थे। एक दल के नेता श्री एस. वी. देशपांडे ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रधान मंत्री थे और दूसरे दल के कांग्रेस के उप प्रधान जी. एल. कन्डालकर थे। उनमें से प्रत्येक दल कांग्रेस की कार्यकारिणी में बैठने का दावा करता था। अन्त में इस प्रश्न को एक कमेटी (Credentials Committee) को सौंप दिया गया, जिसने श्री कन्डालकर दल के पक्ष में अपना मत दिया। जब खुले अधिवेशन के पूर्व कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक हुई तो श्री देशपांडे के दल ने खूब ही शोर मचाना आरम्भ किया और भयंकर लड़ाई उठ खड़ी हुई। अस्तु, सभापति महोदय को कार्यकारिणी की मीटिंग तथा खुले अधिवेशन को भी स्थगित करना पड़ा।

इसके उपरान्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन ७ जुलाई १९३१ को कलकत्ते में श्री सुभाषचन्द्र बोस की अध्यक्षता में हुआ। अधिवेशन में लगभग ३० प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनमें सकलतवाला, तथा गैलाचर को ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए भारत सरकार द्वारा पासपोर्ट न दिये जाने की निन्दा की गई, एक प्रस्ताव द्वारा रूस की सरकार को वहां के मजदूरों की दशा को सुधारने के उपलक्ष्य में बधाई दी गई। एक तीसरे प्रस्ताव में मेरठ षड्यंत्र के कैदियों को छोड़ने की मांग की गई और एक प्रस्ताव के द्वारा मजदूरों से अपने शोषण को रोकने के लिए नीचे लिखी मांगों पर दृढ़ता पूर्वक डटे रहने की अपील की :—

(अ) जनता को सारी सत्ता सौंप दी जावे।

(क) भारत के देशी राज्यों और शोषणकर्त्ता जमींदारों को नष्ट कर दिया जावे।

(ख) किसानों को सब प्रकार के शोषण से मुक्त कर दिया जावे, जिससे कि वे सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

(ग) भूमि, खानों, बैंकों तथा बिजली-पानी इत्यादि के धन्धों का राष्ट्रीयकरण किया जावे।

(घ) विदेशी सरकार के द्वारा लिया हुआ ऋण अस्वीकार कर दिया जावे।

(ङ) प्रत्येक कुशल मजदूर को ५० रु. न्यूनतम मजदूरी और अकुशल मजदूर को ४० रु. मजदूरी दी जावे। काम के घंटों को घटा कर ४४ प्रति सप्ताह कर दिया जावे। मजदूरों के लिए स्वास्थ्यप्रद परिस्थिति उपस्थित की जावे। बीमारी, बुढ़ापे और बेकारी का बीमा किया जावे।

(च) देश के आर्थिक जीवन का नियंत्रण मजदूर और किसान करें, जिससे कि देश की स्वतंत्रता का लाभ पूंजीपतियों को न मिल कर मजदूर और किसानों को मिले।

श्री देशपांडे के दल ने जो कांग्रेस से प्रथक हो गया था, अपना एक अलग अधिवेशन कलकत्ते में मटियाबुर्ज में किया। उसमें १० या १२ यूनियनों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। उस अधिवेशन में लेबर कमीशन की रिपोर्ट और गांधी इरविन समझौते का बहिष्कार करने, जैनेवा के अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ का बहिष्कार करने तथा देश के किसानों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के प्रस्ताव पास किये गये।

जब कि मजदूर आन्दोलन में इस प्रकार फूट पड़ी हुई थी उस समय कुछ लोग मजदूरों में फिर से एकता स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। रेलवे मैनस् फैडरेशन ने एक एकता सम्मेलन बुलाया और उसके सामने एक कार्यक्रम रक्खा जिसको वास्तव में श्री एम. एन. राय ने बताया था। यह एकता सम्मेलन बम्बई में मई १९३१ में हुआ। इस सम्मेलन में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रतिनिधि भी बुलाये गये, किन्तु कम्युनिस्ट लोग इसके विरुद्ध थे। उन्होंने एकता सम्मेलन में सुधारवादी मजदूर नेताओं तथा रायवादी कार्यकर्त्ताओं का घोर विरोध किया। इस एकता सम्मेलन में एक दल दूसरे दल को गाली देता रहा फिर भी एक उप समिति इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बना दी गई। बहुत बार प्रयत्न होने पर एकता सम्मेलन का एक अधिवेशन १९३२ की जुलाई में हुआ जिसमें ट्रेड यूनियन फैडरेशन, रेलवे मैनस् फैडरेशन के प्रतिनिधि तथा कुछ कम्युनिस्ट जो कि बाहर बच गए थे, सम्मिलित हुए थे। उस समय कम्युनिस्ट दल के प्रमुख नेता मेरठ षड़यंत्र केस के फल स्वरुप कैदखाने में थे। इस सम्मेलन में कुछ ऐसे निर्णय किए गए जिन पर दक्षिण पक्ष तथा वाम पक्ष दोनों ही मिल सकते थे। सम्मेलन ने नीचे लिखे निर्णय किये जिसके आधार पर मजदूरों की एकता स्थापित की जा सकती थी।

(१) ट्रेड यूनियन वर्ग संघर्ष का एक साधन है; अस्तु, उसका मुख्य कार्य उनके अधिकारों और हितों को प्राप्त करना और उसकी रक्षा

करना है। और यद्यपि पूंजीवादी पद्धति में पूंजीपतियों और मजदूरों का समन्वय नहीं किया जा सकता फिर भी इस परिवर्तन काल में पूंजीपतियों से बात-चीत करके मजदूरों के हितों की रक्षा करने का कार्य ट्रेड यूनियन करेंगी।

(२) यदि मालिकों से सहयोग करने से लाभ होता हो, तो उसको छोड़ा नहीं जावेगा।

(३) ट्रेड यूनियन आन्दोलन भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के आन्दोलन में भाग लेगा किन्तु उसका उद्देश्य देश में समाजवादी सरकार स्थापित करना होगा।

(४) ट्रेड यूनियन कांग्रेस समाचार पत्रों की स्वतंत्रता, भाषण की स्वतंत्रता, सभा की स्वतंत्रता तथा संगठन करने की स्वतंत्रता में विश्वास रखती है और उसका समर्थन करती है।

(५) ट्रेड यूनियन कांग्रेस जैनेवा के अन्तर्राष्ट्रीय श्रमजीवी सम्मेलनों में प्रतिनिधि भेजेगी।

(६) मजदूर आन्दोलन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कांग्रेस शान्तिमय, न्यायपूर्ण तथा प्रजातांत्रिक ढंग से काम करेगी।

ऊपर दिये हुए निर्णय के आधार पर एक विधान बनाया गया और देहली में ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा ट्रेड यूनियन फैडरेशन का सम्मिलित अधिवेशन हुआ, किन्तु कोई भी दल एकता सम्मेलन के बनाये हुए विधान को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि एप्रिल १९३३ में नेशनल फैडरेशन आफ लेबर नामक संस्था को जन्म दिया गया। ट्रेड यूनियन फैडरेशन ने अपने कलकत्ता अधिवेशन में एकता सम्मेलन के निर्णय को स्वीकार कर लिया और नेशनल ट्रेड यूनियन फैडरेशन के नाम से नेशनल फैडरेशन आफ लेबर में सम्मिलित हो गई। परन्तु यह प्रयत्न सफल नहीं हुआ और

नेशनल फैडरेशन आफ लेबर अधिक दिनों नहीं चल सका । अन्त में दोनों ओर के प्रयत्न सफल हुए और १९३८ में दोनों पक्षों में समझौता हो गया और नागपुर में नेशनल ट्रेड यूनियन फैडरेशन ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सम्मिलित हो गई ।

एक बार फिर ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर एकता स्थापित हो गई । केवल अहमदाबाद लेबर असोसिएशन उससे संबंधित नहीं हुई । समझौते की एक शर्त यह थी कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय या विदेशी श्रमजीवी सगठन से अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगी । किन्तु व्यक्तिगत यूनियनों को विदेशी श्रमजीवी संघों से सम्बन्ध स्थापित करने की स्वतंत्रता दे दी गई है । जहां तक राजनैतिक प्रश्नों तथा हड़ताल का प्रश्न है यह निश्चय हुआ कि तीन चौथियाई बहुमत होने पर ही कोई निर्णय किया जा सकेगा । परन्तु व्यक्तिगत यूनियनें कांग्रेस के आदेश को मानने या न मानने के लिये स्वतंत्र हैं ।

ट्रेड यूनियन कांग्रेस की जनरल कौन्सिल में प्रत्येक के बराबर प्रतिनिधि (अर्थात ४४) रहेंगे । कांग्रेस का विधान नेशनल ट्रेड यूनियन फैडरेशन का ही रहेगा । कांग्रेस का झण्डा लाल होगा किन्तु उसमें हंसिये और हथौड़े का चिन्ह नहीं रहेगा ।

बात यह थी कि इस समय मजदूर आन्दोलन में एकता न होने के कारण मजदूरों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी । मिल मालिक और सरकार का सम्मिलित बल उनके विरुद्ध था और मजदूर अशक्त और असहाय हो रहे थे । ऐसी परिस्थिति में मजदूर नेताओं को एकता की आवश्यकता प्रतीत हुई । परिस्थितियों ने उन्हें एकता के लिये विवश कर दिया ।

जब मजदूर आन्दोलन में एकता स्थापित करने के प्रयत्न चल रहे थे, उस समय भारतीय राजनैतिक गगन में एक और राजनैतिक दल

का उदय हुआ जो कांग्रेस का अंग होते हुए भी देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करना चाहता था। वह कांग्रेस समाजवादी दल के नाम से प्रसिद्ध हुआ। १९३१ के राष्ट्रीय आन्दोलन में जब कांग्रेस के कार्यकर्त्ता जेलों में थे, तो उनमें से बहुत से कांग्रेस की तत्कालीन नीति के खोखलेपन को समझ गए, किन्तु साथ ही उन्होंने देखा कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद से मोर्चा लेने के लिए कांग्रेस के नेतृत्व में ही संयुक्त मोर्चा बनाना आवश्यक है। किन्तु ब्रिटिश सरकार के हाथ से सत्ता छीन लेने के उपरान्त देश में समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने के लिए जनता को तैयार करना भी आवश्यक था। अस्तु, पटना में आचार्य नरेन्द्र देव के सभापतित्व में प्रथम कांग्रेस समाजवादी दल का अधिवेशन हुआ और तब से कांग्रेस में कांग्रेस समाजवादी दल एक शक्तिवान वाम पक्षीय दल के रूप में कार्य करने लगा। स्वभावतः कांग्रेस समाजवादी दल का ध्यान मजदूरों की ओर गया और उन्होंने मजदूर आन्दोलन में भाग लेना आरम्भ किया। अभी तक कांग्रेस मजदूरों की ओर अधिक ध्यान नहीं देती थी परन्तु कांग्रेस समाजवादियों ने मजदूरों के संगठन के कार्य को हाथ में लिया और शीघ्र ही बहुत सी यूनियनें उनके अधिकार में आगईं। मजदूर आन्दोलन में एकता स्थापित करने में कांग्रेस समाजवादी दल का भी विशेष हाथ था।

मजदूर आन्दोलन में एकता स्थापित होने ही पाई थी कि १९३९ में द्वितीय विश्व व्यापी युद्ध छिड़ गया और कांग्रेस के नेतृत्व में फिर राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ा। कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने त्याग पत्र दे दिये और व्यक्तिगत सत्याग्रह आरम्भ हुआ। उस समय भारतीय कम्युनिस्ट इस युद्ध को साम्राज्यवादी युद्ध के नाम से पुकारते थे और प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति को इसका विरोध करना कर्तव्य बतलाते थे। कांग्रेस समाजवादी तो आरम्भ से ही इस युद्ध से भारत का कोई सम्बंध नहीं मानते थे और उन्होंने कांग्रेस पर प्रभाव डालना आरम्भ किया कि

वह भारत की स्वतंत्रता का संग्राम छेड़दे। परन्तु श्री एम. एन. राय को इस युद्ध में अपने और अपने दल (रेडिकल पार्टी) के लिए एक स्वर्ण अवसर दिखलाई दिया। कम्युनिस्ट पार्टी अभी तक गैर कानूनी थी। अधिकांश कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता जेलों में बंद थे, जो बाहर थे वे छिपे हुए कार्य कर रहे थे, कांग्रेस जन भी जेलों में बंद हो गए और कांग्रेस पर सरकार का दमन अस्त्र काम करने लगा। श्री. एम. एन. राय ने देखा कि राजनैतिक शक्ति अपने हाथ रखने और देश में अपने दल का प्रभाव बढ़ाने का अवसर उपस्थित हो गया है, अस्तु, उन्होंने ब्रिटिश सरकार से गठ बंधन कर लिया और वे विश्व व्यापी युद्ध को फासिस्ट विरोधी युद्ध कह कर उसका समर्थन करने और देश के प्रति देश-द्रोह करने लगे। ट्रेड यूनियन कांग्रेस में उनका कोई विशेष प्रभाव न था। अस्तु, उन्होंने इंडियन लेबर फैडरेशन नामक अखिल भारतीय संस्था को जन्म दिया और जो यूनियनें उनके प्रभाव में थीं, उससे संगठित हो गईं। सरकार ने लेबर फैडरेशन तथा प्रचार सम्बंधी कार्यों के लिए श्री राय को कल्पनातीत मोटी रक़में देना आरम्भ कर दिया। बात यह थी कि देश के अन्दर ब्रिटिश—साम्राज्यवाद के विरुद्ध तीव्र क्षोभ उत्पन्न हो गया था। सरकार को ऐसे व्यक्तियों और समूहों की आवश्यकता थी जो देश द्रोह करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद की जड़ को देश में जमाये रखने के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के एजन्ट का काम कर सकें। कुछ समय उपरान्त जब हिटलर ने सोवियत रूस पर भी आक्रमण कर दिया तो भारतीय कम्युनिस्टों के लिए यह युद्ध एक रात में ही साम्राज्यवादी युद्ध से बदल कर जनता का युद्ध बन गया और वे सब प्रकार से युद्ध में सहायता और उसका समर्थन करने लगे। अब रायवादी तथा कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता मजदूरों से हड़ताल न करने और उत्पादन को बढ़ाने के लिए कहते। मजदूरों की दशा इस समय अच्छी न थी परन्तु फिर भी कम्युनिस्ट तथा राय-वादी कार्यकर्त्ता उनको धोखे में रख कर उन्हें युद्ध में सहयोग करने के लिए कहते

रहे। केवल अहमदाबाद तथा उन स्थानों पर जहाँ कांग्रेस समाजवादी दल का प्रभाव था मजदूर राष्ट्रीय भावना से ओत प्रोत था। इसी समय कांग्रेस ने ९ अगस्त १९४२ का स्वतंत्रता संग्राम छेड़ दिया। इस जन क्रान्ति से देश का कोना-कोना भड़क उठा। देश अपनी दासता की बेड़ियों को काटने का अन्तिम प्रयास कर रहा था किन्तु अहमदाबाद, मद्रास, जमशेदपुर इत्यादि स्थानों को छोड़ कर जहां कांग्रेस या कांग्रेस समाजवादी कार्यकर्त्ताओं का प्रभाव था मजदूरों का इस जन क्रान्ति में विशेष गौरव पूर्ण भाग नहीं रहा। कांग्रेस समाजवादी कार्यकर्त्ता जेलों में ठूंस दिये गए। अस्तु, ट्रेड-यूनियन कांग्रेस का नेतृत्व सर्वथा कम्युनिस्टों के हाथ में चला गया। एक प्रकार से मजदूर नेताओं ने सरकार से गठबंधन कर लिया और हड़ताल इत्यादि न करने के लिए प्रयत्न करते रहे।

जब युद्ध के उपरान्त कांग्रेस पर से पाबंदी उठा ली गई और कांग्रेस समाजवादी कार्यकर्त्ता फिर बाहर निकले तो अनायास ही बहुत-सी मजदूर सभाओं पर उनका प्रभाव होगया, क्योंकि रायवादी तथा कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता बहुत कुछ मज़दूरों का भी विश्वास खो चुके थे। प्रान्तीय चुनावों में मज़दूरों की सीटों के लिए कम्युनिस्ट, रायवादी और कांग्रेस उम्मीदवारों में अधिकांश कांग्रेस उम्मीदवार ही चुने गए। पोस्टल हड़ताल, तथा रेलवे हड़ताल की तैयारी में कांग्रेस समाजवादियों का विशेष हाथ था। परन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी सरकारों की स्थापना के उपरान्त मज़दूरों पर अपना प्रभाव जमाये रखने के लिए सभी दल भरसक प्रयत्न करने लगे। प्रत्येक दल मज़दूरों पर अपना प्रभाव रखना चाहता था।

इसी समय श्री गुलजारीलाल नन्दा ने महात्माजी के आदर्श पर हिन्दुस्तान मज़दूर संघ की स्थापना की। बम्बई में हिन्दुस्तान मज़दूर संघ की स्थापना का उद्देश्य अहमदाबाद मजदूर संघ के आदर्श पर मज़दूरों का संगठन करना है। संघ यह मानता है कि मालिक और मज़-

दूर के हित अन्ततः एक हैं अतः उनके संबन्धों को अधिक अच्छा बनाना और मज़दूरों के हितों की वृद्धि और उनकी रक्षा करना उसका मुख्य कार्य है। हिन्दुस्तान मजदूर संघ के सम्बन्ध में अभी कुछ कह सकना कठिन है परन्तु उसे महात्मा गांधी की सहानुभूति तथा आशीर्वाद प्राप्त है, इससे यह तो स्पष्ट ही है कि वह शीघ्र ही एक शक्तिवान संस्था बन जावेगी।

अहमदाबाद मजदूर संघ

भारतवर्ष में अहमदाबाद मज़दूर संघ अपने ढंग की अनोखी और सबसे अधिक महत्वपूर्ण ट्रेड यूनियन है। अतः उसके सम्बन्ध में यहां विस्तार पूर्वक कुछ लिखना आवश्यक है। मज़दूर कमीशन ने भी अहमदाबाद मज़दूर संघ की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। इस संस्था को जनवरी १९२० में महात्मा गांधी ने स्थापित किया और बहुत समय तक मज़दूर संघ को महात्माजी का सीधा नेतृत्व प्राप्त था। मज़दूर संघ के अन्तर्गत सात ट्रेड यूनियन हैं:—थ्रासल वर्कर्स, फ्रेम कार्ड ब्लो वर्कर्स, बुनकर, एंजिन मशीन चलाने वाले, जाबर और मुकद्दम, वाइन्डर और रेपरर्स। प्रत्येक यूनियन की अपनी कार्य कारिणी है। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय कार्य कारिणी समिति है और साथ ही एक सलाहकार समिति भी है। इन समितियों के अतिरिक्त प्रतिनिधियों की स्थायी समितियां हैं जो कि संघ के भिन्न-भिन्न कार्यों की देख भाल करती हैं और एक प्रतिनिधियों का सम्मिलित बोर्ड है जो कि समस्त धंधों में मज़दूरों के हितों की देख भाल करता है। वेतन अदायगी कानून (Payment of wages act) पास होने के पूर्व मजदूर संघ का मिल मालिकों से यह समझौता था कि वे मजदूरों के वेतन में से मजदूर संघ का चंदा काट कर संघ को दे देंगे। अहमदाबाद की मिलों के लगभग आधे मजदूर संघ के सदस्य हैं। संघ के मुख्य उद्देश्य नीचे लिखे हैं:-(१) अहमदाबाद की मिलों में काम करने वाले मजदूरों का संगठन करना,

(२) मजदूरों में संगठन और भाईचारे की भावना भरना, (३) आन्तरिक प्रयत्न से मजदूरों के जीवन और उनके दर्जे को उन्नत करना, (४) उनके लिए उचित मजदूरी काम के घन्टे और अन्य प्रकार की सहायता करना, (५) सदस्यों की कठिनाइयों को दूर कराने का प्रयत्न करना और मालिकों और मजदूरों में झगड़ा उठ खड़ा होने पर मजदूरों और मालिकों से बातचीत करके झगड़े को निबटाने का प्रयत्न करना और समझौता न होने पर अन्त में पंचों से फैसला करवाना जिससे हड़ताल करने की आवश्यकता न पड़े। (६) यदि हड़ताल करनी ही पड़े, तो उसे शीघ्र ही मजदूरों के हितों की रक्षा करने के उपरान्त समाप्त कर देना और मालिकों के द्वारा द्वारावरोध (Lock-out) न होने देना। (६) मजदूरों के हित की वृद्धि के लिए कानूनों का उपयोग करना। (१०) और अन्त में सूती वस्त्र व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण करना।

मजदूर संघ के दफ्तर में मजदूरों की शिकायतों को लिखने का प्रबंध है। जिस मिल के सम्बन्ध में शिकायत होती है उसके अधिकारियों को लिखा जाता है। यदि वे उस शिकायत को दूर नहीं करते हैं, तो प्रतिनिधि बोर्ड निर्णय देता है या मंत्री चाहता है तो मिल मालिक ऐसोसियेशन को लिखता है और यदि मिल मालिक ऐसोसियेशन से वह झगड़ा नहीं निपटता तो, फिर वह मामला पंचों को दे दिया जाता है।

महात्मा गांधी स्थायी रूप से पंच बोर्ड में थे। महात्मा गांधी के महान् व्यक्तित्व के फल स्वरुप बहुत से झगड़े तो यों ही निपट जाते थे। महात्मा गांधी के अतिरिक्त कुमारी अनसूया ताराबाई तथा श्री बैंकर महोदय ने अहमदाबाद मजदूर संघ को सबल बनाने तथा अहमदाबाद में मजदूरों का संगठन करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। यह उन्ही दोनों के त्याग और तपस्या का परिणाम है कि अहमदाबाद में मजदूर इतने अधिक सुसंगठित हैं।

यदि पंचायत के फैसले को भी कोई पक्ष नहीं मानता अथवा मिल मालिक किसी झगड़े को पंचों के भी सुपुर्द नहीं करना चाहते तो अन्त में संघ हड़ताल का भी आयोजन करता है। हड़ताल के सम्बंध में मजदूर संघ का नीचे लिखा हुआ नियम है:—

"यदि मालिक किसी झगड़े का पंचों से फैसला करवाने के लिए तैयार नहीं होते अथवा पंच फैसले को मानने से इनकार करते हैं, तो मजदूर संघ का प्रतिनिधि-मंडल (बोर्ड ऑफ रिप्रजैंटेटिवज़) दो तिहाई बहुमत से उस मिल में हड़ताल करवाने का निश्चय कर सकता है"

यदि प्रतिनिधि मंडल यह अनुभव करे कि स्थिति ऐसी है कि साधारण हड़ताल (General Strike) की जावे तो प्रत्येक मजदूर को मत पत्र (Ballot) दे दिया जावेगा और यदि मत देने वालों के तीन चौथियाई और सारे मजदूरों का दो तिहाई बहुमत हड़ताल के पक्ष में हो तभी साधारण हड़ताल की जावेगी।

इसके अतिरिक्त मजदूर संघ एक ऐसा कोष भी रखता है (Victimisation fund) जिससे उन मजदूरों को आर्थिक सहायता दी जाती है जो कि संघ का कार्य करने के कारण मिलों में से निकाल बाहर किये जाते हैं। इस कोष के अतिरिक्त संघ मजदूरों की ओर से उनके चोट इत्यादि लगने अथवा किसी मजदूर के मर जाने पर क्षति पूर्ति कानून के अन्तरगत मालिकों से क्षतिपूर्ति की रकम वसूल करने की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेता है और उस रक़म को वसूल करके मजदूरों के बैंक में जमा कर देता है। इस बैंक को मजदूर संघ ने मजदूरों में रुपया बचा कर रखने की भावना को जागृत करने के उद्देश्य से स्थापित किया है। आवश्यकता पड़ने पर यह बैंक मजदूरों को उचित सूद पर ऋण भी देता है।

मजदूरों की चिकित्सा के लिए एक अच्छा हास्पिटल भी स्थापित किया गया है, जिसमें रोगियों के रहने के लिए वार्ड भी हैं और स्त्रियों के लिए भी अलग वार्ड हैं जहां जच्चा खाना भी है।

संघ मजदूरों की शिक्षा के लिए दिन के तथा रात्रि के कई स्कूल चलाता है। इसके अतिरिक्त लड़कों के लिए आश्रम और लड़कियों के लिए कन्या गृह भी हैं, जहां लड़के और लड़कियां रह कर अध्ययन करती हैं। सब मिला कर संघ २५ से अधिक शिक्षण संस्थाओं को चलाता है।

मजदूर संघ ने मजदूरों के स्वास्थ्य की उन्नति करने के लिए अखाड़ों का प्रबंध किया है, इसके अतिरिक्त अन्य खेलों तथा ड्रिल का भी प्रबंध है। साथ ही संघ ने चलते-फिरते पुस्तकालय भी स्थापित कर रक्खे हैं जिनसे मजदूरों का ज्ञान वर्धन होता है।

पिछले दिनों से संघ ने मादक द्रव्यों के विरुद्ध मजदूरों में खूब प्रचार किया और मजदूरों में शराब तथा ताड़ी इत्यादि मादक द्रव्यों का सेवन न करने की भावना जागृत की। शराब पीने वालों से इस प्रकार की प्रतिज्ञा कराई जाती है कि वे भविष्य में कभी भी शराब न पियेंगे। जो एक बार शराब अथवा ताड़ी पीना छोड़ देते हैं उनकी देख भाल रक्खी जाती है जिससे फिर वे दुर्व्यसन में न फंस जावें। ताड़ी और शराब की दूकानों पर स्वयंसेवक नियुक्त किये जाते हैं जो वहाँ जाने वालों के नाम सूची में लिख लेते है। शराब पीने के प्रति रुचि कम उत्पन्न हो उसके लिए भजन मंडली इत्यादि का प्रबंध किया जाता है जिससे कि मजदूरों का मनोरंजन हो और मजदूरों के लिए शरबत इत्यादि का प्रबंध किया जाता है। इस शराब बंदी के आन्दोलन के फल स्वरूप अहमदाबाद के मजदूरों में शराब की खपत बहुत कम हो गई। संघ के अधिकारियों का कहना है कि मजदूरों में शराब की खपत पहले से एक चौथियाई रह गई है।

मजदूर संघ ने मजदूरों के रहने के मकानों की एक जांच करवाई जिसके परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ कि मजदूर ऐसे गंदे मकानों में रहते हैं कि जो मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं हैं। अस्तु, संघ ने अहमदाबाद म्युनिसिपैलटी से एक ऋण लेकर कल्याण गांव नामक एक छोटा

सा सुन्दर उपनिवेश बसाया है। प्रत्येक मजदूर को २५ वर्ष तक प्रति मास दस रुपये देना पड़ेंगे और अन्त में वह उस मकान का मालिक हो जावेगा। प्रत्येक क्वार्टर में तीन कमरे, एक वरांडा और पीछे छोटा-सा उद्यान है और इस उपनिवेश में पुस्तकालय, स्कूल तथा अस्पताल सभी सुविधायें उपस्थित करदी गई हैं।

संघ मजदूर संदेश नामक साप्ताहिक पत्र निकालता है जो सदस्यों को बिना मूल्य दिया जाता है।

किन्तु संघ का कार्य केवल आर्थिक ही नहीं रहा है। जब जब महात्मा गांधी के नेतृत्व में आन्दोलन हुआ है तब-तब संघ ने उस आन्दोलन में सहयोग दिया है।

परन्तु पिछले दिनों से अहमदाबाद में कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ता संघ की शक्ति कम करने का प्रयत्न करते रहे हैं। यद्यपि वहां कम्युनिस्टों का अधिक प्रभाव नहीं है फिर भी वे संघ के विरुद्ध प्रचार करते रहते हैं।

सच तो यह है अहमदाबाद में मजदूर संघ ने मजदूरों के हित के जितने कार्य किये हैं उतने किसी भी भारतीय मजदूर संघ ने नहीं किये। परन्तु कुछ लोगों में विशेष कर कम्युनिस्ट कार्यकर्त्ताओं में यह संदेह की भावना उत्पन्न होगई है कि अहमदाबाद का मजदूर संघ वास्तव में मजदूर संघ नही है वह मजदूरों के हितों का कार्य करने वाला एक केन्द्र मात्र है। महात्मा गांधी की यह मान्यता कि मजदूरों और मिल मालिकों के वास्तविक स्वार्थ एक हैं वास्तव में अहमदाबाद मजदूर संघ की विशेष परिस्थिति का द्योतक है। कम्युनिस्टों का यह कहना कि मजदूर संघ मिल मालिकों से मेल रखता है, इस दृष्टि से ठीक नहीं है। संघ मजदूरों के हितों को सुरक्षित करने का प्रयत्न करता है और साथ ही यदि मिल मालिकों से मिलकर वह मजदूरों के हितों की रक्षा करने में सफल हो तो वह उससे कुण्ठित नहीं होता।

कुछ विशेष कारणों से कम्युनिस्टों को इस प्रकार का झूठा प्रचार का अवसर मिल गया। एक तो यह था कि महात्मा गांधी की सलाह से

अहमदाबाद मजदूर संघ ने किसी अखिल भारतीय मजदूर संगठन (ट्रेड यूनियन कांग्रेस इत्यादि) से अपना सम्बन्ध स्थापित नहीं किया। दूसरे अभी कुछ समय पूर्व तक (१९३८ के पूर्व) अहमदाबाद मजदूर संघ ने ट्रेड यूनियन एक्ट के अन्तर्गत अपने को रजिस्टर भी नहीं करवाया था। एक बात और भी जिससे कि कम्युनिस्टों को संघ के विरुद्ध प्रचार करने का अवसर मिल गया था। संघ ने मिल मालिकों से यह व्यवस्था करली थी कि जो मजदूर संघ के सदस्य थे उनका मासिक चन्दा मिल मालि उनकी मजदूरी में से काट कर संघ को दे देते थे। किन्तु वेतन अदायगी कानून के बन जाने के उपरान्त यह प्रथा बन्द कर दी गई। संघ की ये विशेष बातें महात्मा गांधी के आदर्शवाद के कारण हैं। अतएव यह कहना कि संघ वास्तविक अर्थों में ट्रेड यूनियन नहीं है गलत है।

मजदूर सभाओं के संगठन में कठिनाइयाँ

आज देश में भिन्न भिन्न आदर्शों वाले राजनैतिक दल मजदूरों का संगठन करने का प्रयत्न कर रहे हैं। फिर भी अधिकतर मजदूर सभाओं की स्थापना हड़ताल के समय अथवा हड़ताल के पूर्व होती है। जब किसी मिल या केन्द्र के मजदूर अपनी दयनीय स्थिति से ऊब कर राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की सहायता मांगते हैं तो मजदूर सभा का जन्म होता है। विधान इत्यादि बनाने में कोई भी कठिनाई नहीं होती। राजनैतिक कार्यकर्त्ता अन्य मजदूर सभाओं के विधान की नकल कर लेते हैं और मजदूर सभा की रजिस्टरी ट्रेड यूनियन रजिस्ट्रार से करवा ली जाती है। कार्यकारिणी समिति में आधे सदस्य वे लोग हो सकते हैं कि जो मजदूर नहीं हैं। अच्छा तो यह हो कि मजदूर सभाओं का संचालन स्वयं मजदूर ही करें, परन्तु भारतवर्ष में अभी बहुत दिनों तक यह स्थिति नहीं आ सकती। क्योंकि एक तो कारखानों में शिक्षित मजदूरों का नितान्त अभाव है, दूसरे यदि कोई मजदूर शिक्षित हो भी तथा मजदूर सभा को संगठित करना चाहे तो किसी न किसी अपराध में वह निकाल दिया जाता है। यदि मजदूर मंत्री तेज, उत्साही और उग्र हुआ तब तो

वह निकाल दिया जाता है और यदि वह स्वभाव से समझौते की प्रवृत्ति वाला हुआ तो क्रमशः वह अपने साथी मजदूरों के विश्वास को खो देता है और उसको यूनियन में अपने पद को त्याग देना पड़ता है, यदि वह चाहता है कि फैक्टरी में उसकी उन्नति हो। यह परिस्थिति सभी औद्योगिक केन्द्रों में है। मिल मैनेजर यूनियन के मजदूर कार्य-कर्त्ताओं को पदोन्नति का लोभ देते हैं और इस प्रकार या तो मजदूरों के नेतृत्व को शिथिल कर देते हैं अथवा उग्र मजदूर नेताओं को निकाल देते हैं।

मजदूर सभाओं के सामने दूसरी कठिनाई मासिक चन्दा इकट्ठा करने की उपस्थित होती है। दो या चार आना जो भी यूनियन का चन्दा होता है उसको जमा कराने में बहुत कठिनाई होती है। यदि यूनियन के कार्यालय में चन्दा जमा करने की व्यवस्था की जाती है तब तो मजदूर सदस्य चन्दा नहीं देते और यदि कुछ सदस्यों को चन्दा जमा करने के लिए नियुक्त किया जाता है, तो कभी-कभी वह कार्यकर्त्ता समय पर रुपया नहीं देता और पूरा चन्दा कोषाध्यक्ष के पास नहीं पहुंचता। यदि यूनियन के कार्यकर्त्ता फैक्टरी के अन्दर यूनियन का चंदा जमा करते हैं, तो बहुधा मिल मालिक उन कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्य-वाही करते हैं। केवल अहमदाबाद के मजदूर संघ तथा जमशेदपुर के लोहे तथा स्टील के कारखाने की यूनियन का चन्दा मिल-मालिक मज-दूरों के वेतन में से काट कर यूनियन को दे देते हैं। किन्तु साधारणतः न तो मिल मालिक ही ऐसा करना पसंद करते हैं और न यूनियन ही इसे पसंद करती है। मिल-मालिक यह कार्य करके मजदूरों को संगठित होने देना नहीं चाहते और न इसे वे अपना कार्य ही मानते हैं। अस्तु, वे इस झंझट को उठाना नहीं चाहते। यूनियन मिल-मालिकों पर अपने चंदे को इकट्ठा करने का कार्य सौंप कर उनके आश्रित हो जाना पसंद नहीं करती।

परन्तु मजदूरों को संगठित करने में केवल यही कठिनाइयां नहीं हैं। भारतीय मजदूर अशिक्षित है, अतएव उसको संगठित करना बहुत सरल नहीं है। परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय मजदूर के

नितान्त अशिक्षित होते हुए भी उसने संगठन के महत्व को समझा है और यदि कार्य-कर्त्ता सच्चा और लगन वाला हो तो वह उसके नेतृत्व में संगठित हो जाते हैं। सबसे बड़ी कठिनाई जो कि मजदूर कार्य-कर्त्ताओं को यूनियन बनाने के समय करनी पड़ती है वह है मिल-मालिकों का विरोध। चाहे यूनियन रजिस्टर्ड हो अथवा गैर रजिस्टर्ड मालिक उसको स्वीकार नहीं करते। कभी-कभी तो यूनियन में कार्य करने वालों को कारखाने से निकाल दिया जाता है। कुछ कारखानों के मालिक अधिक कूटनीतिज्ञ होते हैं वे यूनियन को कुछ शर्तों पर स्वीकार करते हैं। पहली शर्त तो यह होती है कि यूनियन रजिस्टर करवाली जावे। यह मालिक केवल अपने मजदूरों से ही बात करना स्वीकार करते हैं बाहर वालों से नहीं। इसके उपरान्त वे क्रमशः और नये-नये बंधनों से यूनियन को बाँधते हैं। उदाहरण के लिए वे बाहर वालों की संख्या को बहुत कम कर देना चाहते हैं कभी-कभी यूनियन को स्वीकार करने में उनकी यह भी शर्त होती है कि यूनियन का कोई विशेष कार्य-कर्त्ता जो कि अत्यन्त उत्साही और उग्र हो उसको कोई पद न दिया जावे और न वह कार्यकारिणी समिति में ही रक्खा जावे। कभी-कभी तो कारखानों के मालिक यूनियन को स्वीकार करने के लिए यह भी शर्त रखते हैं कि मीटिंग में मालिकों की आलोचना नहीं की जावेगी और जब कि किसी बात को लेकर यूनियन और मालिकों की बातचीत चल रही हो तब तक मजदूरों की कठिनाई का सार्वजनिक ढंग से प्रचार नहीं किया जावेगा। इस प्रकार यूनियन यदि मालिकों द्वारा स्वीकृत होती है तो वह बहुत कुछ अपनी स्वतंत्रता को खो देती है।

भारतवर्ष में एक और भी बड़ी कठिनाई है जिसका सामना आये दिन मजदूर कार्य-कर्त्ताओं को करना पड़ता है। जहां कारखानों के मालिकों ने देखा कि यूनियन सबल होती जा रही है और कार्य-कर्त्ता पर मजदूरों का विश्वास जम रहा है वह उस कार्य-कर्त्ता या यूनियन के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं को अच्छी रकम देकर खरीद लेने का प्रयत्न करते

हैं। यदि कार्य-कर्त्ता सच्चे और ईमानदार हुए और नीचे नहीं गिरे तो मिल-मालिक कुछ चरित्रहीन व्यक्तियों को वेतन देकर अथवा परोक्ष-रूप से आर्थिक सहायता देकर एक दूसरी यूनियन खड़ी करवा देते हैं। इस प्रकार मजदूरों में फूट डलवा कर उन्हें शक्तिहीन बना देना उनका बांये हाथ का खेल है। अधिकतर ऐसा देखने में आता है कि यह खड़े किये हुए मजदूर नेता बहुत अधिक गालियां मिल-मालिकों को देते हैं किन्तु समय पर कभी भी मजदूरों का नेतृत्व नहीं करते।

प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रि-मण्डलों की स्थापना के पूर्व मजदूरों का संगठन करने में एक कठिनाई यह थी कि मिल-मालिक पुलिस की सहायता से कार्य-कर्त्ताओं को परेशान करते थे और कभी-कभी तो पुलिस उन पर कोई भीषण आरोप लगा कर कैद कर लेती थी। यद्यपि प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्री मण्डलों की स्थापना से यह कठिनाई दूर हो गई है परन्तु जिन प्रान्तों में कॉंग्रेस मंत्रि-मंडल नहीं हैं, वहाँ यह कठिनाई अब भी है।

देशी राज्यों में तो मजदूरों का संगठन करना आज भी कठिनाई और जोखिम का काम है। अधिकतर राज्य के प्रमुख अधिकारी और कहीं-कहीं तो स्वयं महाराजा कारखाने के लाभ में साझीदार होते हैं। वहां मजदूरों में कार्य करना या मजदूर सभा का संगठन करना, महाराजा के विरुद्ध विद्रोह फैलाने जैसा भयंकर अपराध माना जाता है और कार्य-कर्त्ता शीघ्र ही जेल भेज दिया जाता है।

इतनी कठिनाइयाँ होते हुए भी भारत में मजदूर आन्दोलन प्रबल होता जा रहा है यह संतोष की बात है। यद्यपि आज देश में मजदूर आन्दोलन यथेष्ट बलशाली हो गया है परन्तु फिर भी वह अन्य औद्योगिक देशों की भाँति प्रबल नहीं हो पाया है।

मजदूर आन्दोलन की निर्बलता के कारण

यद्यपि आज भारतीय मज़दूर आन्दोलन पहले से अधिक सबल

और उग्र है, परन्तु फिर भी वह अभी निर्बल ही है। मजदूर आन्दोलन की निर्बलता के मुख्य कारण नीचे लिखे हैं:—

१. मजदूरों का अशिक्षित होना

अधिकांश मजदूर अशिक्षित हैं। संगठन के लाभों को वे शीघ्र नहीं समझ पाते और न वे ट्रेड यूनियनों में पूरा भाग ही ले पाते हैं। अस्तु, मजदूरों में वर्ग चैतन्य उदय करना और उनमें अनुशासन की भावना भरना सरल नहीं है। कभी-कभी ऐसा होता है कि मजदूर कार्यकर्त्ता उनके हितों को दृष्टि में रख कर मिल मालिकों से कोई सम्मानजनक समझौता कर लेता है और उसका कोई विरोधी मजदूरों में यह प्रचार करता है कि वह मालिकों से मिल गया है। निर्बोध मजदूर उसके विरोधी की बातों में आ जाता है।

२. औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों का एक भाषा-भाषी न होना

भारतीय औद्योगिक केन्द्रों में जो मजदूर काम करते हैं, वे एक ही भाषा नहीं बोलते। वे भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलते हैं और उनका रहन-सहन भिन्न होता है, अतएव उनमें वह एकता उत्पन्न नहीं हो पाती, जो एक ही भाषा-भाषी जन समूह में उत्पन्न हो सकती है। यह देखा गया है कि बम्बई अथवा कलकत्ता में प्रत्येक भाषा के बोलने वाले एक समूह में रहते हैं।

३. औद्योगिक केन्द्रों का बिखरा होना

भारत में औद्योगिक केन्द्र बहुत दूर-दूर पर हैं। इस कारण मजदूर आन्दोलन अधिक सबल नहीं हो पाता। यदि मजदूर बस्तियां पास-पास ही हों, औद्योगिक केन्द्र किसी विशेष क्षेत्र में हों तो मजदूर आन्दोलन अधिक सुसंगठित हो सकता है।

४. मजदूरों की निर्धनता

भारतीय मजदूर अत्यन्त निर्धन है। उसके पास इतना भी नहीं

होता कि वह यूनियन का मासिक चंदा दे सके। बिना आर्थिक सहायता के यूनियन सफलता पूर्वक कार्य नहीं कर सकती।

५. मजदूरों का स्थायी रूप से औद्योगिक केन्द्रों में न रहना

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतीय मजदूर आर्थिक विवशता के कारण औद्योगिक केन्द्र में कार्य करने आता है, किन्तु वह औद्योगिक केन्द्र में स्थायी रूप से रहने की भावना अपने मन में कभी भी पोषित नहीं करता। यद्यपि यह बहुत संभव है कि कोई मजदूर जीवन का अधिकांश समय औद्योगिक केन्द्र में ही व्यतीत कर दे; किन्तु वह मन में उस दिन की उत्कंठा से प्रतीक्षा करता है कि जब वह अपनी चिर पोषित अभिलाषा को पूरा करेगा अर्थात् वह गांव को स्थायी रूप से लौट जावेगा। जब भारतीय मजदूर में यह भावना बराबर बनी रहती है कि उसे औद्योगिक केन्द्र में नहीं रहना है तो फिर वह अपनी यूनियन के कार्यों में उतनी रुचि नहीं दिखलाता जितना कि ब्रिटेन का मजदूर। क्योंकि वह जानता है कि उसे अपना समस्त जीवन और उसकी संतानों का जीवन उसी केन्द्र में व्यतीत करना है। भारतीय मजदूर कारखानों की असुविधाओं और कष्टों को दूर कराने, अपने हितों की रक्षा करने में उतना जागरूक और सतर्क नहीं रहता, जितना कि अन्य देशों का मजदूर होता है।

६. मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व योग्य हाथों में न होना

भारतीय मजदूर-आन्दोलन इस कारण भी निर्बल है क्योंकि उसका नेतृत्व योग्य व्यक्तियों के हाथों में नहीं है। लेखक का यह मत कदापि नहीं है कि मजदूर नेता सच्चे और ईमानदार नहीं हैं। उनमें से बहुतों ने मजदूरों के लिए बहुत त्याग किया है। परन्तु फिर भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है, जो अवसरवादी हैं और जो मजदूरों पर अपना प्रभाव जमा कर भारतीय राजनीति में अपना प्रभाव जमाना

चाहते हैं और समय आने पर देश और मजदूरों के प्रति विश्वासघात करते हैं। उदाहरण के लिए पिछले महायुद्ध (१९३९-४५) में सारा देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध खड़ा हो गया। अगस्त १९४२ की क्रांति हुई थी। परन्तु रेडिकल डेमाक्रेटिक पार्टी तथा कम्युनिस्टों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से समझौता करके मजदूरों को उस क्रांति से अलग हो रखा। मजदूर आन्दोलन में जो दरार पड़ी हुई है, उसमें एकता दृष्टिगोचर नहीं होती। वह भी मजदूर आन्दोलन की निर्बलता का कारण है।

मजदूर आन्दोलन के प्रति मालिकों का कड़ा रुख

मिल मालिक मजदूर सभाओं को सहन नहीं करना चाहते। चाय के बागों में तो मजदूरों की लाइनों पर चाय के बागों के अधिकारी पहरा रखते हैं। कोई भी ऐसा व्यक्ति जो कि बाग़ में नौकर है वहां उनकी अनुमति के बिना रात्रि या दिन में नहीं जा सकता। यही कारण है कि चाय के बागों का मजदूर आज भी बिलकुल असंगठित और शक्तिहीन है। जिन कारख़ानों ने अपने मजदूरों को रहने के लिए मकान दिये हैं वे भी 'चालों' और मजदूरों को बस्तियों में चौकीदार नियुक्त कर देते हैं और मजदूरों की चौकसी रक्खी जाती है। यदि मजदूरों में कार्य करने वाले कार्यकर्त्ता वहां आते हैं तो उनकी रोक थाम होती है। यही नहीं जो भी मजदूर यूनियन के कार्य में उत्साह प्रगट करता है, उसको किसी न किसी बहाने निकाल दिया जाता है। अहमदाबाद मजदूर संघ को भी इस दुर्व्यवहार की बहुत शिकायत है। जो कारखाने कस्बों में हैं वहां तो मालिक का और भी अधिक आतंक रहता है।

सरकार का कठोर व्यवहार

अभी तक प्रान्तीय सरकारों का व्यवहार मजदूर कार्यकर्त्ताओं तथा मजदूरों के विरुद्ध अत्यन्त कठोर था। तनिक-सी बात होने पर मिल

मैनेजर के फ़ोन करते ही पुलिस आ धमकती थी और मजदूरों को आतंकित करने के लिए गिरफ्तारियां, लाठी चार्ज और कभी-कभी गोलियां चलाई जाती थीं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि पुलिस ने मजदूरों का पक्ष लिया हो। मजदूर कार्यकर्त्ताओं के पीछे जासूस लगे रहते, उनकी डाक सेन्सर होती, उनको आतंकित किया जाता और मजदूरों पर भी इसका बुरा प्रभाव पड़ता था। किन्तु प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित होने पर और बहुत से प्रान्तों में कांग्रेस मंत्रीमंडल स्थापित हो जाने से इस दिशा में यथेष्ट परिवर्तन हुआ। सरकार अब मजदूरों के प्रति सहानुभूति रखती है। किन्तु जिन प्रान्तों में अभी भी प्रतिगामी दलों की सरकार है, वहां मजदूरों की दशा दयनीय है।

मजदूर आन्दोलन में जाति भेद

यद्यपि अभी तक मजदूरों में जाति द्वेष ने पूरी तरह से घर नहीं किया है, परन्तु मिल मालिक, जातीय संगठन इस विष को मजदूरों में फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। कहीं-कहीं मुस्लिम मजदूर यूनियन स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है और हड़तालों के समय मिल मालिक सवर्ण हिन्दुओं और अछूतों तथा हिन्दू-मुसलमानों में भेद उत्पन्न करने का भरसक प्रयत्न करते हैं। अवश्य ही यदि मजदूर आन्दोलन में यह विष घर कर गया तो आन्दोलन की नींव ही हिल जावेगी। यदि मजदूर कार्य-कर्त्ता मजदूरों को आर्थिक आधार पर संगठित करें तो यह विष मजदूरों में फैल नहीं सकता।

भारतीय ट्रेड यूनियन केवल हड़ताल कमेटी है

भारत में मजदूर आन्दोलन की एक निर्बलता यह है कि ट्रेड यूनियन का केवल एक ही कार्य है। वह अधिकांश में हड़ताल कमेटी का काम करती है। बहुधा ट्रेड यूनियन का निर्माण ही हड़ताल करवाने के उद्देश्य से होता है, जब किसी मिल में मजदूरों में मालिकों के कठोर व्यवहार से अथवा मजदूरी की कमी के कारण वातावरण क्षुब्ध हो

उठता है, तो उत्साही कार्यकर्त्ता उनकी यूनियन स्थापित करके मालिकों को नोटिस दे देते हैं और यदि कोई सम्मानपूर्ण समझौता न हुआ तो हड़ताल करदी जाती है। हड़ताल के दिनों में यूनियन के सदस्य बहुत बड़ी संख्या में होते हैं और यूनियन का प्रभाव भी बहुत होता है। यदि हड़ताल सफल हुई तो यूनियन स्थायी बन जाती है, यद्यपि लोगों का उत्साह फिर कम हो जाता है और वह अर्ध सुप्त अवस्था में पहुँच जाती है। यदि दुर्भाग्यवश हड़ताल असफल हो गई तो यूनियन भी समाप्त हो जाती है।

अभी तक जो पुरानी यूनियन हैं वे भी अधिकतर हड़तालों का आयोजन करने तक ही अपने कर्तव्य की इति श्री मानती हैं। अहमदाबाद, बम्बई इत्यादि स्थानों की पुरानी यूनियनों को छोड़ कर देश में बहुत कम यूनियनें ऐसी हैं, जो मजदूरों की दैनिक समस्याओं को हल करने के लिए रचनात्मक कार्य करती हैं। हड़ताल तो मजदूर का अन्तिम शस्त्र है। इसके अतिरिक्त मजदूर की शिक्षा, स्वास्थ्य, रहने की समस्या, मनोरंजन, बेकारी, तथा बीमारी में अलाउंस मिलने की व्यवस्था इत्यादि ऐसी बहुत सी समस्यायें हैं जिनकी ओर ट्रेड यूनियनों को ध्यान देने की आवश्यकता है। जैसे-जैसे मजदूर आन्दोलन में योग्य नेतृत्व का प्रादुर्भाव हो रहा है; वैसे ही वैसे उनका इन आवश्यक प्रश्नों की ओर ध्यान जा रहा है। आशा है कि भविष्य में ट्रेड-यूनियन रचनात्मक पक्ष को भी उतना ही महत्व देगी जितना महत्व संघर्ष को देती है।

राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि मजदूरों के दो अखिल भारतीय संगठन काम कर रहे थे। एक ट्रेड यूनियन कांग्रेस और दूसरा श्री एम. एन. राय के अनुयायियों द्वारा संगठित लेबर फैडरेशन, यद्यपि लेबर फैडरेशन का मजदूरों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं है। ट्रेड यूनियन कांग्रेस में तीन प्रकार के कार्यकर्त्ता थे कम्युनिस्ट, कांग्रेस समाजवादी, और

गांधी विचारधारा को मानने वाले मजदूर कार्यकर्त्ता जो हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ की नीति के अनुसार मजदूरों में कार्य करते थे। युद्ध काल में कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं के जेल में बन्द होने के कारण ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ गया था। केन्द्रीय कार्यालय उनके हाथ में होने के कारण कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं का उसमें प्रभावशाली होना कठिन था। उनका कम्युनिस्टों पर दोषारोपण यह था कि वे अवास्तविक मजदूर सभाओं को रजिस्टर्ड करके ट्रेड यूनियन कांग्रेस में अपना बहुमत बनाये रखते हैं। अस्तु, मई १६४७ में जब सरदार वल्लभभाई पटेल की अध्यक्षता में हिन्दुस्तान मज़दूर सेवक संघ का वार्षिक अधिवेशन देहली में हुआ, तो वहां पर ही राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना कर दी गई और हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ के प्रभाव में जो मजदूर सभायें थीं वे उससे सम्बन्धित हो गईं।

समाजवादी मजदूर कार्यकर्त्ताओं के सामने राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना से एक समस्या खड़ी हो गई। वे कम्युनिस्टों द्वारा प्रभावित ट्रेड यूनियन कांग्रेस में तो रह नहीं सकते थे, साथ ही राष्ट्रीय-ट्रेड यूनियन कांग्रेस में भी उनके लिए रह सकना कठिन था। क्योंकि उनका विचार था कि वल्लभभाई पटेल, श्री गुलजारीलाल नंदा के नेतृत्व में राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन वास्तव में मजदूरों के स्वार्थों की रक्षक नहीं बन सकती और न उनके हितों की पूरी रूप से रक्षा ही कर सकती है क्योंकि उस पर सरकार का बहुत प्रभाव रहेगा। सरकारी मंत्रियों के प्रभाव में पलने वाली राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस देश में मजदूर और किसान राज्य के लिए युद्ध नहीं कर सकती। अस्तु, समाजवादी दल ने यह निश्चय किया कि वह इन दोनों संगठनों से स्वतंत्र रह कर स्वतंत्र रूप से मजदूर संगठन का कार्य करेगा। उनकी योजना यह है कि पहले प्रत्येक धंधे के संगठित मजदूरों की अखिल भारतीय फैडरेशन स्थापित कर दी जावे और फिर एक स्वतंत्र अखिल भारतीय मजदूर

संगठन अपने नेतृत्व में स्थापित किया जावे।

आज भारतवर्ष के मजदूर आन्दोलन की बाग डोर चार भिन्न राज-नैतिक आदर्श वाले दलों के हाथ में है- कम्युनिस्ट, ट्रेड यूनियन कांग्रेस के द्वारा; हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ, राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के द्वारा; रायवादी, लेबर फैडरेशन के द्वारा और समाजवादी अपने स्वतंत्र संगठन के द्वारा मजदूरों का संगठन कर रहे हैं।

दसवां परिच्छेद

मजदूरों और पूंजीपतियों का सम्बन्ध

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष में आधुनिक ढंग के कारखानों तथा खानों की स्थापना १८६० के उपरान्त हुई थी और अधिकांश मजदूर गांवों से आये थे। उस समय तक भारतीय मजदूरों में वर्ग चैतन्य का उदय नहीं हुआ था। मालिक को वे मां-बाप समझते थे और उसी भावना से प्रेरित होकर वे अपने कष्टों की पुकार मालिक के सामने करते, प्रार्थना पत्र देते और मालिक जो कुछ भी उन्हें देता उससे संतोष करके उसे धन्यवाद देते थे। कारण यह था कि उन्हें यह पता ही नहीं था कि उनके कुछ अधिकार भी हैं और मालिक जो उनके श्रम का लाभ उठा कर अपनी तिजोरियां भर रहा है उससे कुछ प्राप्त करने के लिए प्रार्थना पत्र ही यथेष्ट नहीं हैं वरन मजदूरों के संगठन की आवश्यकता भी है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भारतीय मजदूरों में वर्ग चैतन्य और वर्ग भावना का सर्वथा अभाव था। यही कारण है कि यद्यपि मजदूरों को कारखानों, खानों, और चाय के बागों

में पशुवत् जीवन व्यतीत करना पड़ता था परन्तु फिर भी हड़तालों की हम कोई चर्चा नहीं सुनते। इसका यह अर्थ नहीं है कि भारतीय उद्योग-धंधों के प्रारम्भिक दिनों में मालिकों और मजदूरों में कोई संघर्ष ही नहीं हुआ। कुछ छुट-पुट संघर्ष हुए किन्तु उनका कहीं ठीक विवरण उपलब्ध नहीं है।

सबसे पहली हड़ताल जिसके संबंध में हमें लिखित विवरण प्राप्त होता है गोलाम बाबा स्पिनिंग और वीविंग मिल में १८८२ में हुई। हड़ताल दो दिन तक रही—एक महीने के उपरान्त १६ दिसम्बर से २४ दिसम्बर तक फिर उस मिल में मजदूरों ने हड़ताल करदी। १८८२ और १८९० के बीच में २५ महत्वपूर्ण हड़तालें बम्बई और मद्रास की मिलों में हुईं जिनका लिखित विवरण हमें प्राप्त है। परन्तु छोटी-छोटी हड़तालें बहुधा हुआ करती थीं जिनमें एक या दो दिन कारखाने बन्द रहते और थोड़े से मजदूर भाग लेते थे। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हड़तालों की संख्या बढ़ गई। १९०५ में उदाहरण के लिये बम्बई के कारखानों मे बिजली लगने और काम के घंटो के बढ़ जाने की सम्भावना से मजदूरों ने हड़तालें कीं। १९०७ में बम्बई कारखानों में मजदूरी के प्रश्न को लेकर कई हड़तालें हुई जो कि एक सप्ताह से भी अधिक चलीं। १९०७ में जो फैक्टरी कमीशन बैठा था उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि मजदूर हड़ताल के अस्त्र का उपयोग करना भली-भाँति जानते हैं और उन्होंने कई बार सफलतापूर्वक हड़तालों का उपयोग मिल मालिकों से अपनी मांगों को मनवाने के लिए किया है। किन्तु अभी वे अपना विस्तृत संगठन करने में सफल नहीं हुए हैं।

सबसे प्रथम महत्वपूर्ण हड़ताल जिसमें बम्बई के लगभग सभी मजदूरों ने भाग लिया, स्वर्गीय लोकमान्य तिलक को षड्यंत्र के लिए कैद करने के अवसर पर हुई।

महायुद्ध के अवसर पर हड़तालों की संख्या बहुत बढ़ गई। १९१७ में अहमदाबाद, मद्रास, बम्बई के कारखानों में कई हड़तालें हुईं और

मजदूरों को थोड़ी सुविधायें प्राप्त होगईं। १९१८ में अधिकांश हड़तालें मजदूरी को बढ़वाने के उद्देश्य से हुई थीं। परन्तु उनमें से अधिकांश हड़तालों को अधिक दिन नहीं चलाना पड़ा क्योंकि मालिकों ने मजदूरों की मांग को स्वीकार करके उनकी मजदूरी बढ़ा दी। दिसम्बर १९१८ में बम्बई में एक बहुत बड़ी हड़ताल हुई। क्रमशः यह हड़ताल बम्बई के सभी कारख़ानों में फैल गई और ९ जनवरी १९१९ को लगभग एक लाख पच्चीस हज़ार मजदूर हड़ताल में सम्मिलित हो गए।

परन्तु १९१९ के पूर्व मोटे रूप से मालिकों और मजदूरों के आपसी सम्बंध अधिक खराब नहीं हुए थे। १९१९ के अन्त तथा १९२० में मजदूरों में क्षोभ की एक तीव्र लहर जागृत हुई और मिल मालिकों तथा मजदूरों में घोर संघर्ष आरम्भ होगया। यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि १९१८ के उपरान्त भारत में मजदूर संगठित होने लगे और मजदूर आन्दोलन बल पकड़ने लगा। मजदूरों में वर्ग चैतन्य उदय हुआ और वे अपने कष्टों को दूर करने के लिए मालिकों को संगठित रूप से चुनौती देने लगे। इसका फल यह हुआ कि १९१९ के उपरान्त हड़तालों का देश में ताँता लग गया। देखते-देखते हड़तालों का रोग सारे देश में छूत की बीमारी की भाँति फैल गया। १९२० के पहिले दो महीनों [जनवरी-फरवरी] में १२४ हड़तालें हुईं, उनमें ९६ केवल बम्बई में हुई थीं जिनमें तीन लाख मजदूरों ने भाग लिया था। जून १९२० तक देश में २०० हड़तालें हुईं जिनमें १५ लाख मजदूरों ने भाग लिया था। जुलाई से दिसम्बर १९२० तक ११९ हड़तालें हुईं जिनमें कई लाख मजदूर सम्मिलित हुए।

१९२१ के उपरान्त देश में हुई हड़तालों के आँकड़े हमें उपलब्ध हैं, क्योंकि उसी वर्ष सरकार ने लेबर ऑफिस की स्थापना की थी और वह हड़तालों का पूरा विवरण रखता है। १९२१ के उपरान्त हुई हड़तालों का ब्योरा इस प्रकार है।

१९२१ के उपरान्त होने वाली हड़तालों की तालिका

वर्ष.	हड़तालों की संख्या.	मजदूरों की संख्या. हजारों में.	काम के दिनों की हानि लाखों में.
१९२१	३९६	६००	७०
१९२२	२७८	४३५	४०
१९२३	२१३	३०१	५१
१९२४	१३३	३१२	८७
१९२५	१३४	२७०	१२६
१९२६	१२८	१८७	११
१९२७	१२९	१३१	२०
१९२८	२०३	५०७	३१६
१९२९	१४१	५३१	१२२
१९३०	१४८	१९६	२३
१९३१	१६६	२०३	२४
१९३२	११८	१२८	१९
१९३३	१४६	१६५	२२
१९३४	१५९	२२१	४८
१९३५	१४५	११४	१०
१९३६	१५७	१६९	२४
१९३७	३७९	६४८	१००
१९३८			
१९३९			
१९४०	३२२	४५३	७६
१९४१			
१९४२	६९४	७७३	५८
१९४३			

वर्ष	हड़तालों की संख्या.	मजदूरों की संख्या हजारों में	काम के दिनों की हानि लाखों में
१९४४			
१९४५	८४८	७८२	३९
१९४६ जुलाई तक	११५५	१५०८	७५

१९४६ के आँकड़ों में जुलाई [१९४६] में सहानुभूति प्रदर्शन के लिये की गई उन १४ बड़ी हड़तालों के आंकड़े नहीं दिए गए हैं जिनमें चार लाख से अधिक कार्य के दिनों की बम्बई प्रान्त में, ४०,००० दिनों की मद्रास में तथा २० लाख दिनों की बंगाल में हानि हुई थी। जुलाई के उपरान्त भी हड़तालों की लहर कम नहीं हुई। एस. आई. आर. की हड़ताल जिसमें ४०,००० मजदूरों ने २८ दिनों तक भाग लिया, गिरिडीह के १६,००० मजदूरों ने १९ दिनों तक हड़ताल की। नागपुर की सूती मिलों के २२,००० मजदूरों ने हड़ताल की और कानपुर की सूती मिलों में आम हड़ताल रही।

ऊपर के आंकड़ों में उन बड़ी हड़तालों के आंकड़े सम्मिलित नहीं हैं कि जो गैर-फैक्टरियों के कर्मचारियों ने कीं। ८०,००० डाक विभाग के कर्मचारियों ने तीन सप्ताह तक हड़ताल की; ३०,००० मिलिटरी अकाउंट क्लर्कों ने १६ दिनों तक हड़ताल रक्खी, इम्पीरियल बैंक के ६,००० क्लर्कों ने ४५ दिन तक हड़ताल रक्खी, संयुक्त प्रान्त नहर विभाग के ५००० कर्मचारियो ने ७५ दिन तक हड़ताल रक्खी। दफ्तरों के बाबुओं ने बम्बई में हड़ताल की। ग्राम पाठशालाओं तथा पटवारियों ने कई प्रान्तों में हड़ताल की। इस प्रकार की हड़तालें भारतवर्ष में पहले कभी भी नहीं सुनी गई थीं। यह पहला अवसर था कि शिक्षित क्लर्कों तथा अन्य कर्मचारियों ने जिनका फैक्टरियों से कोई सम्बन्ध नहीं था हड़तालें कीं।

सच तो यह है कि १९४५ के उपरान्त मजदूरों में गहरे असंतोष और

क्षोभ की लहरें उठ खड़ी हुई। किन्तु आश्चर्य यह है कि १९३९ के उपरांत ६ वर्षों के लम्बे युद्ध काल में भारतीय मजदूर अपेक्षाकृत शान्त रहा। जिस समय कि वस्तुओं का मूल्य ऊँचा चढ़ रहा था, मजदूरों को तरह-तरह के कष्टों का सामना करना पड़ रहा था, उस समय मजदूरों की अधिक हड़तालें नहीं हुई और १९४२ की अगस्त क्रान्ति के समय भी जब सारा देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद को भारत से उखाड़ फेंकने के लिए उठ खड़ा हुआ था, अहमदाबाद तथा जमशेदपुर के मजदूरों के अतिरिक्त उस जन-क्रान्ति में भी मजदूरों का कोई गौरवपूर्ण भाग नहीं रहा। मजदूरों की उस निश्चेष्टता का कारण भारत की तत्कालीन राजनीति में छिपा है। १९३९ के युद्ध छिड़ते ही कांग्रेस ने पदत्याग दिया और आगे चल कर कांग्रेस के सभी कार्यकर्त्ता जेलों में ठूंस दिये गए। देश में कांग्रेस समाजवादी दल ही एक क्रान्तिकारी दल था जो कि मजदूरों को राष्ट्रीय मोर्चों पर लाकर खड़ा कर सकता था। उनका ही मजदूरों पर विशेष प्रभाव था। किन्तु सरकार ने समाजवादी दल के कार्यकर्त्ताओं को बीन-बीन कर पकड़ लिया था। उधर मजदूरों में कार्य करने वाले अन्य मजदूर नेताओं ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद से घृणित समझौता कर लिया था। कम्युनिस्टों ने जर्मनी द्वारा रूस पर आक्रमण होते ही साम्राज्यवादी युद्ध को जन युद्ध कहना आरम्भ कर दिया और सब प्रकार से युद्ध प्रयत्नों में सहायता पहुंचाना उनका कर्तव्य हो गया। श्री. एम. एन. राय के अनुयायियों ने कांग्रेस को क्षेत्र से हटा देख कर अपने दल (रेडिकल डेमाक्रेटिक पार्टी) को देश में बलवान करने के उद्देश्य से भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों से मोटी-मोटी रक़में लेकर युद्ध को जनता का युद्ध कहना और मजदूरों को युद्ध कार्य में सहायता पहुंचाने के लिए प्रोत्साहित करना आरम्भ कर दिया। मजदूरों के सच्चे नेता जेल में थे। कम्युनिस्ट और रायिस्ट उन्हें युद्ध काल में शान्त रहने और हड़तालें करके युद्ध प्रयत्न में बाधा न पहुँचाने का उपदेश देते थे। इस कारण युद्ध काल में मजदूर वर्ग अपेक्षाकृत शान्त रहा। परन्तु युद्ध समाप्त हो जाने के

उपरान्त जब नये चुनावों के अनुसार अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें स्थापित हो गई, तो बहुत अधिक हड़तालें हुईं। उसका मुख्य कारण यह था कि मजदूरों से कम्युनिस्ट कार्यकर्ता युद्ध के समय कहते आये थे कि युद्ध के समाप्त होने पर उनकी सारी कठिनाइयां दूर हो जावेंगी। यही नहीं १९४६ में मंहगाई हद दर्जे को पहुँच चुकी थी और मजदूरों की आर्थिक दशा अत्यन्त दयनीय थी। वे और अधिक धैर्य नहीं रख सकते थे। उधर राजनैतिक दलों ने चुनाव घोषणाओं में मजदूरों की दशा को सुधारने की जो बार-बार घोषणा की थी उससे मजदूरों में अत्यधिक आशायें बंध चुकी थीं। किन्तु आर्थिक राजनैतिक कठिनाइयों के कारण प्रान्तीय सरकारें मजदूरों की उन आशाओं को पूरा नहीं कर सकीं। इधर कम्युनिस्ट अपना प्रभाव मजदूरों पर फिर से जमाने के उद्देश्य से मजदूरों को भड़काने में लगे हुए थे। यही सब कारण थे जिनसे १९४६ में समस्त देश में हड़तालों का तांता लग गया। १९४७ के आरम्भ में भी हड़तालों में कोई कमी नहीं दीखती। जनवरी १९४७ में शक्कर के कारखानों में हड़तालें हुईं। देहली के ५००० हाई स्कूलों के अध्यापकों ने हड़तालें कीं और कानपुर में लम्बे समय तक आम हड़ताल रही जिसमें एक लाख से अधिक मजदूरों ने भाग लिया।

भारतवर्ष में १९२१ से १९४१ तक कुल ४६६४ हड़तालें हुईं जिनमें ६,६७४,१५८ मज़दूरों ने भाग लिया और १३५,२००,३२१ दिनों की हानि हुई। इनमें २६६४ हड़तालें मजदूरी और बोनस के कारण हुईं, ९४१ मजदूरों को रखने और निकालने की नीति से सम्बन्ध रखती थीं, १९८ छुट्टी और काम के घंटों को लेकर हुईं और ८६१ फुटकर कारणों से हुईं। इन हड़तालों में से ७९२ पूर्णतः सफल हुईं, १०८८ में आंशिक सफलता मिली और २६८२ असफल रहीं।

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि प्रथम योरोपीय युद्ध के पूर्व भारत में मजदूर संगठित नहीं थे। इस कारण संगठित रूप से १९१९ के पूर्व यहां हड़तालें नहीं होती थीं। १९२० के उपरान्त में हड़तालों की बाढ़-

सी आ गई और देश का ध्यान इस नवीन समस्या की ओर गया। योरोपीय महायुद्ध में मिल-मालिकों तथा व्यवसायियों को कल्पनातीत लाभ हुआ था। यद्यपि मज़दूरी में कुछ वृद्धि अवश्य हुई थी किन्तु वस्तुओं का मूल्य बेहद बढ़ गया था। इस कारण उनकी वास्तविक मजदूरी कम हो गई थी। मजदूर की आर्थिक दशा दयनीय हो गई थी और वे अधिक सहन नहीं कर सकते थे। इस कारण १६१८ और १६१६ में बहुत-सी हड़तालें हुईं जिनके फलस्वरूप मजदूरों की मजदूरी बढ़ी और उनकी सुख-सुविधा में भी वृद्धि हुई। यद्यपि उद्योग धंधों की दशा इतनी अच्छी थी कि यदि पूंजीपति चाहते तो बहुत पहले ही मजदूरी को बढ़ा सकते थे किन्तु जब तक मजदूरों ने हड़ताल नहीं की तब तक मिल-मालिकों ने ध्यान ही नहीं दिया।

उस समय उद्योग-धन्धों की दशा बहुत अच्छी थी, मिलों में अधिकाधिक मजदूरों की मांग थी। किन्तु इन्फ्लूएंजा की महामारी के कारण पचास लाख से एक करोड़ तक मनुष्यों की मृत्यु हो जाने से औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों की कमी हो गई। इन्हीं केन्द्रों में सर्व प्रथम मज़दूर संगठित हो गये थे और प्रारम्भिक हड़तालों में सफलता मिल जाने के कारण उनको संगठन का महत्व मालूम हो गया था। वे समझने लगे थे कि अपनी दशा में सुधार करने के लिए हड़ताल एक अमोघ अस्त्र है। यही नहीं वे अब मजदूरों के उन शिक्षित हितचिन्तकों के नेतृत्व में अपने को संगठित करने के लिए प्रयत्नशील हो गये जोकि मजदूरों की शक्ति को पहिचान कर उनकी ओर आकर्षित हुए थे। योरोपीय महायुद्ध के उपरान्त जो शिक्षित वर्ग के कार्यकर्त्ताओं का मजदूरों को नेतृत्व प्राप्त हुआ वही उनकी सबसे बड़ी शक्ति थी। युद्ध के फलस्वरूप और विशेषकर रूसी क्रांति ने संसार भर के सर्वहारा वर्ग में नवीन आशा और आशा की लहर उत्पन्न कर दी थी। भारतीय मजदूरों में इस समय एक नवीन जीवन हिलोरें ले रहा था। उन्हें पहली बार यह सुनने को मिला था कि जो किसान और मजदूर पूंजीपतियों तथा धनी लोगों की लकड़ी

चीरने और पानी भरने के लिए ही उत्पन्न हुए थे वे भी समाज में स्वाभिमान और प्रतिष्ठापूर्वक रह सकते हैं और यदि वे पूर्ण रूप से संगठित हो जावें तो वे देश के शासन की बागडोर अपने हाथों में ले सकते हैं। उधर महात्मा गांधी के नेतृत्व में १९२१ में पहली बार सत्याग्रह आंदोलन ने देश की जनता में अपूर्व जागृति उत्पन्न कर दी थी। सारा देश क्षुब्ध हो उठा था। देश में पहली बार ऊंचे और नीचे वर्गों का भेद मिट कर सभी लोग राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए आगे आये। राजनैतिक और आर्थिक आधार पर किये गये आन्दोलन एक दूसरे से मिल गए। इसका फल यह हुआ कि सर्वहारा वर्ग तथा शिक्षित वर्ग में जो पार्थक्य की दीवार थी वह टूट गई। यह ध्यान में रखने की बात हैं कि १९२१ में जो फैक्टरी कानून संशोधित हुआ वह इन हड़तालों का परिणाम था। बहुत से स्थानों पर मजदूरों ने ६० घंटे के सप्ताह की मांग की थी; अस्तु, १९२१ के फैक्टरी कानून में ६० घंटे का सप्ताह कर दिया गया।

उस समय की मुख्य हड़तालों मे आसाम के चाय के बागों की हड़ताल सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। १९२१ में आसाम के चाय के बागों में ऐसा तीव्र क्षोभ उत्पन्न हुआ कि सारे मजदूर बागों को छोड़ कर भाग निकले। बाग़ के मालिकों की सहायता के लिए सरकार ने चांदपुर रेलवे स्टेशन पर गुरखा फौज़ भेज दी। मजदूरों पर गोली चलाई गई और बहुत से मजदूर मारे गए। इस कांड से अन्य मजदूरों में भी तीव्र क्षोभ उत्पन्न हुआ और आसाम बंगाल रेलवे तथा स्टीमरों पर काम करने वाले मज़दूरों ने सहानुभूति में हड़ताल कर दी। तीन महीने तक रेलें ठप्प रहीं। किन्तु जहां तक चाय के बागों के मज़दूरों की हड़ताल का प्रश्न था वह बिलकुल असफल रही। बेचारे निर्धन निस्सहाय मज़दूरों को विवश होकर फिर चाय के बागों में काम करने के लिए जाना पड़ा। उनकी कोई मांग पूरी नहीं हुई और उनकी दशा पहले से भी बुरी हो गई। इसका मुख्य कारण यह था कि मज़दूरों में कोई संगठन नहीं

था केवल उनमें कार्यकर्त्ताओं ने प्रचार करके जोश उत्पन्न कर दिया था। बिना सुदृढ़ संगठन किये हड़ताल करने का जो परिणाम होता है वही हुआ और हड़ताल समाप्त हो गई।

१९२४ में बम्बई में एक आम हड़ताल हुई जो कि भारतवर्ष में हुई सब हड़तालों से बड़ी थी। उसमें १६०,००० मज़दूरों ने भाग लिया था। उसका मुख्य कारण यह था कि सूती कपड़े की मिलों में पिछले पांच वर्षों से जो बोनस दिया जाता था वह बन्द कर दिया गया। दूसरे वर्ष (१९२५) में बम्बई में फिर आम हड़ताल हुई जो कि पहली हड़ताल से भी बड़ी थी और जिसमें १ करोड़ दस लाख कार्य के दिनों की हानि हुई। यह हड़ताल पूर्ण रूप से सफल हुई और मज़दूरों की मज़दूरी की कटौती पूरी कर दी गई। १९२८ और १९२९ में बम्बई में फिर आम हड़तालें हुईं जिनमें प्रत्येक बार एक लाख से अधिक मज़दूर सम्मिलित हुए। पहली हड़ताल कारखानों में तेज़ी से काम कराने के सम्बन्ध में हुई और दूसरी हड़ताल कुछ मज़दूर कार्यकर्त्ताओं को जिन्होंने पिछली हड़तालों में कार्य किया था निकाल देने के सम्बन्ध में हुई थी। दूसरी हड़ताल दो दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इस हड़ताल में पहली बार कम्युनिस्टों का प्रभाव मज़दूरों पर प्रगट हुआ और आगे से वे कम्युनिस्टों के प्रभाव में आ गए। दूसरी उल्लेखनीय बात इस हड़ताल के सम्बन्ध में यह है कि इसके फलस्वरूप ही १९२९ का ट्रेड डिस्प्यूटस् ऐक्ट पास हुआ और उसके द्वारा स्थापित पंचायत ने इस हड़ताल का समझौता करवाया। यह हड़ताल सात महीने तक चली और सूती कपड़े की मिलों के सभी मज़दूरों ने इसमें भाग लिया। इसी प्रकार की एक आम हड़ताल जूट मिलों के मज़दूरों की १९२९ में हुई और उसमें २७२,००० मज़दूरों ने भाग लिया। यह हड़ताल ग्यारह सप्ताह तक चलती रही। इस हड़ताल का मुख्य कारण यह था कि मिल मालिकों ने काम के घन्टे ५५ से बढ़ा कर ६० कर दिये थे। ग्यारह सप्ताह बाद मिल मालिकों ने मज़दूरों से समझौता कर लिया और

उनकी अधिकांश मांगों को स्वीकार कर लिया। १९३८ में बंगाल की जूट मिलों में फिर एक बड़ी आम हड़ताल हुई जिसमें २९१,८०० मज़दूरों ने भाग लिया था और मज़दूरों की ३५½ लाख रुपये की हानि हुई थी। मज़दूरों की मांग यह थी कि १९३२ में मज़दूरी में जो कटौती कर दी गई थी वह पुनः वापस दी जावे। इसी वर्ष (१९३८) में कानपुर के मज़दूरों ने आम हड़ताल कर दी जिसमें ४०,००० मज़दूरों ने भाग लिया था। बात यह थी कि संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने जो लेबर इन-क्वायरी कमेटी बिठाई थी उसकी सिफारिशों को मिल मालिकों ने मानने से इनकार कर दिया था। मिल मालिकों का रुख इस समय बहुत ही निन्दनीय था। प्रान्तीय सरकार ने मिल मालिकों तथा मज़दूरों के बीच समझौता कराना चाहा किन्तु मिल मालिकों ने उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। यही नहीं मिल मालिकों ने तो यहां तक घोषणा कर दी कि वे समझौते की बातचीत में तभी सम्मिलित हो सकते हैं जबकि मज़दूर अपनी शिकायतों को व्यक्तिगत रूप से उनके सामने रक्खें न कि लेबर यूनियनों द्वारा। इन आम हड़तालों में लाभ, मज़दूरी और कार्य के दिनों की अपार क्षति तो हुई ही किन्तु कुछ कारख़ानों और ख़ानों में तो बहुमूल्य मशीन और प्लान्ट को भी भारी क्षति पहुँचाई गई। उदाहरण के लिए जमशेदपुर के ताता आयरन वर्क्स में बड़ी भारी हड़ताल हुई जो १०४ दिन तक चलती रही। इस हड़ताल में २६,००० मज़दूरों को २५ लाख रुपयों की हानि हुई। मालिकों को भी २२ लाख की हानि हुई और २५ लाख कार्य के दिनों की क्षति हुई। जो समझौता हुआ उसमें मज़दूरों की बहुत सी मांगे स्वीकार कर ली गईं और मालिकों को मज़दूरों को कम करने की नीति बदलनी पड़ी।

१९३६ में जब आठ प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडल स्थापित हो गए तो मजदूरों में नवीन आशा और उत्साह की लहर फैल गई क्योंकि कांग्रेस मंत्रिमंडल मजदूरों से सहानुभूति रखते थे और कांग्रेस के मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रस्ताव तथा चुनाव घोषणा में मज़दूरों के

हितों की रक्षा करने की बात कही गई थी। मजदूर जानते थे कि कांग्रेस मन्त्रिमंडलों के शासनारूढ़ होते ही उन पर पूंजीपतियों के संकेत पर अन्याय-पूर्ण दमन नहीं हो सकता। अस्तु, १९३७ और ३८ में बहुत अधिक हड़तालें हुईं। प्रान्तीय सरकारों ने जांच कमेटियां बिठाईं, लेबर आफिसर नियुक्त किये और मजदूरों की स्थिति में सुधार हो इसकी योजनायें बनाई जाने लगीं। संयुक्तप्रान्त, बम्बई, बिहार में इस ओर विशेष रूप से कार्य हुआ किन्तु कुछ हो सके, उससे पूर्व ही कांग्रेस मन्त्रि मंडल हट गए। क्रमशः कांग्रेस और सरकार का संघर्ष उग्र रूप धारण करता गया। १९४२ की जन-क्रान्ति के फलस्वरूप जमशेदपुर, अहमदाबाद तथा मदरास प्रान्त में अवश्य ही मजदूरों ने अगस्त क्रान्ति के साथ हड़तालें करके ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती दी किन्तु अधिकांश स्थानों पर कम्युनिस्टों और रायवादियों के नेतृत्व में मजदूरों ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद को चुनौती देने के बजाय उस साम्राज्यवादी युद्ध में परोक्षरूप से सहायता पहुँचाई। युद्ध काल में काम के घंटे बढ़ा दिये गए, मजदूरों के बहुत से अधिकार छीने गए, खानों में मजदूर स्त्रियों को काम करने की आज्ञा दी गई। जीवन की आवश्यक वस्तुओं का मूल्य आकाश छूने लगा और मजदूरों को मंहगाई भत्ता अपेक्षाकृत बहुत कम दिया गया परन्तु फिर भी कम्युनिस्ट और रायवादियों ने मजदूरों को हड़तालें करने से रोका क्योंकि वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद से गठबंधन कर चुके थे।

१९४६ में जब उत्तरदायी सरकारें प्रान्तों में फिर स्थापित हो हो गईं और गवर्नरों के सलाहकारों के शासन का अन्त हो गया तो फिर मजदूरों ने हड़तालें करना आरम्भ कर दीं जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

हड़तालों के कारण

यों तो उद्योग-धंधों के पूंजीवादी संगठन में मजदूरों और मिल मालिकों में संघर्ष उपस्थित होना अनिवार्य है क्योंकि दोनों के स्वार्थ

परस्पर विरोधी हैं। परन्तु अधिकतर हड़तालें नीचे लिखे कारणों से होती हैं। जब मालिक किसी उत्साही ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता को किसी बहाने से निकाल देते हैं, अथवा मजदूरों की कमी करते हैं अथवा काम के घंटों, मजदूरी बोनस, छुट्टियों तथा नौकरी की अन्य शर्तों को लेकर मज़दूरों और पूंजीपतियों में संघर्ष हो जाता है। जब कोई आर्थिक परिवर्तन होता है, जैसे आर्थिक मंदी, बेकारी तथा धंधों का रेशनैलाईज़ेशन अथवा जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का अत्यन्त मंहगी हो जाना, तब मज़दूर तथा पूंजीपतियों का संघर्ष तीव्र हो जाता है।

भारतवर्ष में इन सब कारणों से हड़तालें होती हैं। मज़दूरी का कम होना, मज़दूरी में कटौती होना, मालिकों का कठोर व्यवहार, मज़दूरों को अनुचित दंड देना, तथा अधिक संख्या में मजदूरों को नौकरी से हटा देने पर हड़तालें होती हैं। कभी-कभी मैनेजर अथवा किसी ऊंचे अफसर के दुर्व्यवहार, मारपीट, गाली से भी हड़तालें हो जाती हैं। परन्तु ऐसी दशा में कारखाने की जो अन्य बुराइयां हैं वे ही मुख्यतः हड़ताल का कारण होती हैं। हां, दुर्व्यवहार उसका बहाना अवश्य बन जाता है। भारत में मज़दूर संगठन अभी उतना सशक्त नहीं है और न अधिक पुराना ही है। बहुत से स्थानों पर तो मजदूर यूनियन होती ही नहीं और फिर भी मजदूर हड़ताल कर देते हैं। उस दशा में उन्हें ट्रेड यूनियन का नेतृत्व और सलाह प्राप्त नहीं होती। कभी-कभी ट्रेड यूनियन के बनने पर अधिकारी उन मजदूरों को निकाल देते हैं जिन्होंने उस में सक्रिय भाग लिया है। उसी पर मजदूर और मालिकों में संघर्ष छिड़ जाता है। मजदूर अपना संगठन करना चाहते हैं किन्तु उनको अपने शुभचिन्तकों, बाहरी नेताओं को सलाह देने के लिए यूनियन में रखना पड़ता है। मिल मालिक यह कह कर कि हम बाहरी आदमियों से बात नहीं करना चाहते मजदूरों के प्रतिनिधियों तथा मजदूर कार्यकर्ताओं से न तो बात करना चाहते हैं और न उनके पत्रों का ही जवाब देते हैं। बहुत बार तो केवल उसी प्रश्न को लेकर मजदूरों को संघर्ष करना पड़ता है। भारतवर्ष में

बहुत सी हड़तालें केवल इस लिए होती हैं कि मिल मालिक ट्रेड यूनियनों को स्वीकार ही नहीं करते और उनके मन्त्री तथा चुने हुए प्रतिनिधियों का यह अधिकार ही नहीं मानते कि वे मजदूरों की ओर से बात चीत करें। यही नहीं जब एक बार कोई यूनियन हड़ताल करके मिल मालिकों को उसे स्वीकार करने पर विवश कर देती है तो भी मालिक उसके कमजोर होते ही उसे फिर व्यवहार में अस्वीकार कर देते हैं। लिखा-पढ़ी में यूनियन को स्वीकार कर लेने पर भी मालिक उसे व्यवहार में स्वीकार नहीं करते और जब उनके प्रतिनिधि उनके सामने मजदूरों की शिकायतें रखते हैं तो उसकी नितान्त अवहेलना करते हैं। बहुधा मालिक यह भी कहते हैं कि जब वे यूनियन को मजबूत देखते हैं तो उसे स्वतः ही स्वीकार कर लेते हैं और जब उसके सदस्य कम हो जाते हैं तो उसको अस्वीकार कर देते हैं। साथ ही वे इस बात का भी प्रयत्न करते हैं कि मजदूरों में आपस में फूट पड़ जावे और मजदूर सभा निर्बल हो जावे। १९३७ में कानपुर के मजदूरों ने जो आम हड़ताल की वह केवल इस लिए कि मिल मालिक कानपुर की मजदूर सभा को स्वीकार नहीं करते थे।

इन कारणों के अतिरिक्त कभी-कभी राजनैतिक कारणों से भी हड़तालें होती हैं। जब राष्ट्रीय नेता गिरफ्तार होते हैं अथवा सरकार जनता का दमन करती है उस समय हड़तालें हो जाती हैं। किन्तु इन हड़तालों का कोई मुख्य कारण नहीं है। यह बात अवश्य है कि जिन राजनैतिक दलों का मजदूर यूनियनों पर प्रभाव है वह अपनी नीति के अनुसार मजदूरों से हड़तालें करवाते हैं अथवा उन्हें हड़तालें करने से रोकते हैं। उस सीमा तक देश की राजनीति का मजदूरों की हड़तालों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

कुछ लोगों को यह बात आश्चर्य में डाल देती है कि भारतीय मजदूर असंगठित हैं। जो भी मजदूर सभायें देश में हैं, वे अधिक शक्तिशाली नहीं हैं और न उनके पास इतना धन ही है कि वे हड़ताल के

समय मजदूरों को आर्थिक सहायता दे सकें। परन्तु फिर भी भारतीय मजदूरों में हड़तालें करने की आश्चर्यजनक क्षमता दृष्टि-गोचर होती है। इसका क्या कारण है ? वे लोग यह भूल जाते हैं कि भारतीय मजदूर अधिकतर गांवों से आता है और उसने अपने गांव से अपना नाता नहीं तोड़ा है। प्रति वर्ष और यदि सुविधा नहीं होती तो दूसरे तीसरे वर्ष वह एक दो महीने के लिए अवश्य ही गांवों में जाता है और अपने कुटुम्बियों में रहता है। अस्तु, भारतीय मजदूर इतना निराश्रय नहीं है जितना कि अन्य औद्योगिक देशों का मजदूर निराश्रय होता है। अस्तु, जब बम्बई इत्यादि में लम्बी हड़तालें होती हैं, तो मजदूर अपने गांवों की ओर चले जाते हैं। वे समझते हैं कि चलो कुछ दिनों अपने पैतृक गांव में अपने लोगों के साथ रह लें। जब हड़ताल समाप्त हो जावेगी, कारखाने खुलने लगेंगे, तब हम फिर गांव से लौट आवेंगे। मजदूर नेता भी जब देखते हैं कि हड़ताल लम्बी चलने वाली है तो मजदूरों को गांव चले जाने की सलाह दे देते हैं।

जहाँ आर्थिक कारणों से बहुधा हड़तालें होती हैं, वहाँ कभी-कभी मजदूर नेता तथा किसी राजनैतिक दल विशेष के लोग, जिनका मजदूरों पर प्रभाव है, अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिये अथवा अपने प्रतिद्वन्द्वी राजनैतिक दल के लिए कठिनाइयां उपस्थित करने के लिए हड़तालें करवा देते हैं और मजदूरों को भारी क्षति पहुँचती है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि एक मिल में हड़ताल होती है तो दूसरे मिलों के मालिक उस मिल मजदूर यूनियन के नेताओं को आर्थिक सहायता देकर वहाँ की हड़ताल को और लम्बी चलाने के लिए प्रोत्साहन देते हैं। कई बार ऐसा हुआ कि जब बम्बई के सूती-वस्त्र की मिलों में लम्बी हड़ताल चली तो अहमदाबाद के मिल मालिकों ने हड़तालियों को आर्थिक सहायता भेजी कि जिससे वे अधिक समय तक हड़ताल चलाते रहें और अहमदाबाद की मिलों का कपड़ा बाजार में अच्छे मूल्य पर बिक सके।

मजदूर और मालिकों के संघर्ष को कम करने के उपाय

खेद है कि भारतवर्ष में अभी तक हड़तालों को रोकने अथवा संघर्ष छिड़ जाने पर उसे शीघ्र ही निबटा देने की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। अन्य देशों में इस ओर विशेष प्रयत्न किया गया है। उसका कारण यह है कि हड़तालों से सभी को हानि होती है। मजदूरों की मजदूरी जाती है, मालिकों का लाभ नष्ट होता है, उत्पादन कम होता है और बाजार में उस वस्तु का टोटा हो जाता है। भारतवर्ष में पिछले दिनों मिल-मालिकों तथा मजदूरों के सम्बन्ध इतने खराब हो गए हैं कि इस ओर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है।

वर्क्स कमेटी

इस सम्बन्ध में हमें यह न भूलना चाहिए कि हड़तालों को रोकने के लिए ऐसी संस्था की बहुत आवश्यकता है, जो कि कारखाने के अन्दर ही काम करे। अभी तक भारतवर्ष में उस ओर किसी का ध्यान नहीं गया है। पश्चिमीय देशों में इन वर्क्स कमेटियों के द्वारा कारखानों के अन्दर मालिक और मजदरों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने में विशेष सफलता मिली है। वर्क्स कमेटी में मजदूरों और मिल मालिकों के प्रतिनिधि बराबर मिलते रहते हैं। मजदरों की जो शिकायतें और कष्ट होते हैं, उनके सम्बन्ध में बात चीत होती है और उनको दूर करने का प्रयत्न किया जाता है। इसी प्रकार मिल-मालिकों की जो शिकायतें होती हैं वे मजदूर प्रतिनिधियों के सामने रखते हैं। बहुत सी छोटी-मोटी शिकायतें जो आगे चलकर उग्र रूप धारण कर लेती हैं, इन कमेटियों में सरलता से निपट जाती हैं।

होना यह चाहिए कि मालिक मजदूर सभा (ट्रेड-यूनियन) से इस आशय की प्रार्थना करे कि वह कारखाने में एक वर्क्स कमेटी स्थापित करने में सहायता दे। ट्रेड-यूनियन अपने प्रतिनिधियों को चुन दे और मैनेजर, सुपरिंटैंडेन्ट अथवा फोरमैन उस कमेटी में मालिकों का प्रतिनि-

धित्व करें। अनुशासन, ग्रेड, मजदूरी तथा कारखाने में काम करने के सम्बंध में जो भी समस्याएँ हों उन सब पर इस कमेटी में अच्छी तरह से विचार किया जावे। वर्क्स कमेटी में ट्रेड-यूनियनों के प्रमुख सदस्य मजदूरों के प्रतिनिधि होकर आवेंगे। अस्तु, जो भी निर्णय मजदूर प्रतिनिधियों को मान्य होगा, वह ट्रेड यूनियन का समर्थन भी प्राप्त कर सकेगा। साथ ही फोरमैन इत्यादि के वहां रहने से प्रत्येक समस्या पर कारखानों के हितों की दृष्टि से भी विचार हो सकेगा। लेकिन वर्क्स कमेटियां तभी सफल हो सकती हैं कि जब ट्रेड यूनियन उसमें सक्रिय सहयोग दें और अपने प्रतिनिधियों को मत देने की स्वतंत्रता प्रदान करें। साथ ही मालिकों को भी चाहिये कि मजदूरों के सदस्यों की बातों का उचित आदर करें, यह न हो कि मालिक मजदूरों के प्रतिनिधियों को अपनी ओर मिला कर मजदूरों में ट्रेड यूनियन के प्रभाव को नष्ट करने का प्रयत्न करें। अधिकतर होता यह है कि मालिक वर्क्स कमेटियों का उपयोग ट्रेड यूनियन को निर्बल करने में अथवा उसको नष्ट कर देने में करते हैं। इसी कारण ट्रेड यूनियन के कार्यकर्त्ता इनसे सशंक रहते हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि ऐसी बहुत सी समस्याएँ उपस्थित होती हैं, जिनका क्षेत्र विस्तृत होता है और जो वर्क्स कमेटी में हल नहीं की जा सकती। अस्तु ट्रेड यूनियन का पूर्ण सहयोग प्राप्त करना मालिकों के लिये आवश्यक है।

लेबर आफिसर और मजदूर बोर्ड

प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र में सरकार को एक लेबर आफिसर नियुक्त कर देना चाहिए, जो मिल मालिकों तथा ट्रेड यूनियनों के बीच संधि स्थापित करने का प्रयत्न करेगा। जो भी परिवर्तन कारखानों में मालिक करना चाहें, उसकी पूर्व सूचना मालिकों को लेबर आफिसर को देनी होगी। यदि लेबर आफिसर समझे कि इससे मजदूरों को असंतोष होगा तो वह मालिकों से बात करके उसमें

के धन्धों जैसे रेल, डाक, बिजली, जल इत्यादि के कारखानों में दो सप्ताह का नोटिस दिया जावे। जैसे ही मजदूर-सभा हड़ताल की सूचना दे, लेबर आफिसर को एक समझौता बोर्ड, जिसमें एक मजदूरों का प्रतिनिधि और एक मिल-मालिकों का प्रतिनिधि हो और लेबर आफिसर उसका अध्यक्ष हो, बिठा देना चाहिए। नोटिस की अवधि के अन्दर मजदूर न तो हड़ताल करें और न मालिक द्वारावरोध करें। एक सप्ताह के अन्दर ही समझौता बोर्ड अपना निर्णय दे दे। यद्यपि समझौता बोर्ड का निर्णय किसी भी पक्ष को मानना अनिवार्य नहीं होगा; परन्तु समझौता बोर्ड के निर्णय के विरुद्ध जो भी पक्ष जावेगा, उसको सर्व साधारण तथा सरकार का समर्थन प्राप्त नहीं होगा। अस्तु, उभय पक्ष में से कोई भी बिना सोचे-विचारे निर्णय नहीं करेगा। यहां यह कह देना आवश्यक है कि मजदूरों के हड़ताल करने के अधिकार पर उससे अधिक प्रतिबन्ध लगाना किसी प्रकार भी सहन नहीं किया जा सकता जैसा कि बम्बई के ट्रेड डिसप्यूटस् ऐक्ट तथा भारत सरकार के प्रस्तावित कानून में किया गया है। हमें यह न भूल जाना चाहिए कि मजदूर के लिए हड़ताल करना एक विवशता की वस्तु है, मनोरन्जन की वस्तु नहीं है। फिर हड़ताल को सफल बनाने में एक मनोवैज्ञानिक क्षण की आवश्यकता है। यदि कानून द्वारा चार-पांच महीने तक मजदूरों को हड़ताल करने से रोक दिया जावे तो एक प्रकार से उनको हड़ताल के अधिकार से ही वंचित कर देना होगा। अस्तु, हड़ताल के नोटिस की अवधि से अधिक मजदूरों को हड़ताल करने से रोकना सर्वथा अन्याय है।

हड़तालों के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें

यहां इस सम्बन्ध में विचार कर लेना आवश्यक है कि जब हड़ताल हो तो उस समय मिल-मालिक, मजदूरों और सरकार का उसके प्रति क्या रुख होना चाहिए। आज तो स्थिति यह है कि जैसे ही मजदूर

हड़ताल करते हैं, मिल-मालिक उनको प्रत्येक सम्भव उपाय से कष्ट देने पर उतारू हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि मज़दूर मालिकों के दिये हुए क्वार्टरों में रहते हैं तो उन्हें तुरन्त वहां से निकाल दिया जाता है। उनके मकानों में बिजली और पानी बंद कर दिया जाता है। मेहतर उनकी टट्टियों और नालियों को साफ करना बन्द कर देते हैं। इस प्रकार उन्हें हड़ताल समाप्त कर देने पर विवश कर दिया जाता है। यदि मजदूर फैक्टरी के क्षेत्र में अथवा अपने क्वार्टरों के पास कोई सभा करते हैं तो उसको मालिक भंग करवा देते हैं अथवा मीटिंग की मनाही कर देते हैं। मजदूर कार्यकर्त्ताओं की यह बहुत बड़ी शिकायत है कि मालिकों के जासूस यूनियनों के कार्यकर्त्ताओं का पीछा करते हैं और मजदूरों को गैर कानूनी काम करने पर उकसाते हैं। मालिक गुण्डों को नौकर रखकर मजदूर कार्यकर्त्ताओं को पिटवाना, उनकी सभाओं को भंग करवाना आरम्भ कर देते हैं।

इसके विपरीत मजदूर हड़ताली उन मजदूरों को जो कि हड़तालियों का साथ न देकर काम पर जाते हैं अपमानित करते और कभी-कभी पीट भी देते हैं। यही नहीं, जब मजदूरों में मालिकों के दुर्व्यवहार से अत्यन्त कटुता उत्पन्न हो जाती है तो वे फैक्टरी की सम्पत्ति को भी हानि पहुंचाने का प्रयत्न करते हैं।

किन्तु यह मजदूर तभी करते हैं, जब कि मालिकों के एजेन्ट उन्हें भड़का देते हैं और उनका तथा पुलिस का व्यवहार बहुत निन्दनीय होता है: नहीं तो अधिकतर मजदूर शान्तिप्रिय हड़ताल करके अपने अधिकारों को सुरक्षित करने का प्रयत्न करते हैं। जब तक मालिक इन निन्दनीय गैर कानूनी कार्यों को छोड़ नहीं देते तब तक यह आशा करना व्यर्थ होगा कि मजदूरों में उसकी प्रतिक्रिया न हो।

इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि शान्तिमय हड़ताल की एक कानूनी परिभाषा स्वीकार कर ली जावे और हड़ताल के समय मिल मालिकों और मजदूरों का व्यवहार कैसा होना चाहिए यह निर्धारित

कर दिया जावे। मालिकों द्वारा ट्रेड यूनियन कार्य-कर्त्ताओं की गति-विधि पर दृष्टि रखने के लिए जासूस रखना अथवा हड़ताल को तोड़ने के प्रयत्न करना कानूनन जुर्म बना दिया जाना चाहिए। मजदूर कार्य-कर्त्ताओं की यह शिकायत है और इसमें बहुत कुछ तथ्य है कि इस देश में बड़े-बड़े व्यवसायी मजदूर जासूस नौकर रखते हैं और पेशेवर हड़ताल तोड़ने वाले नौकर रक्खे जाते हैं। इस प्रकार व्यवसायी ट्रेड-यूनियन संगठन को नष्ट करने का घृणित कार्य करते हैं। यही नहीं, बड़े बड़े लोहे तथा अन्य कारखानों में एक काली सूची रक्खी जाती है और उन मजदूरों को जिनका नाम काली सूची में आजाता है, क्रमशः निकाल दिया जाता है। कहा जाता है कि लोहे और स्टील के कारखानों में ऐसे बहुत से सुपरिन्टेंडेंट हैं जिन्होंने संयुक्तराज्य अमेरिका में हड़तालों को तोड़ने और ट्रेड-यूनियन संगठन को नष्ट कर देने की वैज्ञानिक ढंग से शिक्षा पाई है और उस अमेरिकन पद्धति को भारत में काम में ला रहे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि एक कानून बना कर कारखानों के बाहर मजदूरों की गति विधि पर ध्यान रखने के लिए चौकीदार रखना और हड़ताल को तोड़ने वाले मजदूरों को प्रचलित मजदूरी से अधिक मजदूरी देकर भर्ती करना जुर्म बना दिया जावे।

संयुक्तराज्य अमेरिका में शान्तिमय हड़ताल को रोकने तथा उसमें हस्तक्षेप करने के लिए व्यक्तियों को राजकीय रेलों का उपयोग नहीं करने दिया जाता। इसी प्रकार भारतवर्ष में एक कानून बनाकर हड़ताल तोड़ने वालों को हड़ताली मज़दूरों से अधिक मजदूरी देकर भर्ती करना जुर्म बना दिया जाना चाहिए।

बिहार की कोयले की खानों और जमशेदपुर में मालिकों ने मजदूरों को हड़ताल के समय कारखाने द्वारा दिये गये मकानों से निकाल दिया और बिजली और पानी बंद कर दिया। इसी प्रकार बंगाल की जूट मिलों ने बार-बार हड़ताल होने पर मजदूरों को कुली लाइनों से बलपूर्वक

निकाल बाहर किया। यहाँ तक कि रेलवे लाइनें भी इसी अस्त्र का उपयोग करती हैं। बम्बई, कानपुर, देहरी-सोन के कारखानों ने भी हड़ताल के समय मजदूरों को काम पर वापस आने अथवा कारख़ाने के क्वार्टर छोड़ देने की धमकी दी। बम्बई में चालों के कम्पाउंड में मजदूरों को सभा करने की आज्ञा नहीं दी जाती और कारखानों द्वारा बनाई गई चालों में मजदूर कार्य-कर्त्ताओं को आने से रोका जाता है। जहां-जहां मिल मालिकों ने मजदूरों को मकान दिये हैं, वे अपना जन्म-सिद्ध अधिकतर मानते हैं कि वे जिसे चाहें वहां न आने दें और मजदूरों को अपनी सभा न करने दें। चाय के बागों और कोयले की खानों का तो सारा क्षेत्र ही मालिकों की सम्पत्ति होती है। वे ट्रेड यूनियनों के कार्य-कर्ताओं को वहां आने से रोक देते हैं। कभी-कभी तो कार्य-कर्त्ताओं पर उनके वहां आने पर मुक़दमा तक दायर कर दिया। युद्ध काल में कहीं-कहीं मालिकों ने मजदूरों के हड़ताल करने पर उनकी राशन तक रोक दी। जहां राशन की और दूकाने नहीं हों, जिनसे मजदूर अपने जीवन-निर्वाह की आवश्यक वस्तुयें ले लें, वहां मालिकों का यदि यह अधिकार मान लिया जावे, तब तो मजदूर कभी हड़ताल कर ही नहीं सकते। अतएव कानून बना कर सरकार को यह सब ग़ैर क़ानूनी बना देना चाहिए।

यह हम पहले ही कह चुके हैं कि मजदूरों और मालिकों को हड़ताल करने और द्वारावरोध करने के लिये नोटिस देना चाहिये। यदि उस बीच में कोई समझौता हो सके तब तो अच्छा है किन्तु अनिवार्य पंचायत अथवा अनिवार्य रूप से मामले को औद्योगिक अदालत के सामने ले जाने की शर्त मजदूरों के हड़ताल के अधिकार को एक प्रकार से नष्ट कर देना है। यह कभी नहीं होना चाहिए।

एक बात और भी ध्यान देने की है, बहुधा ऐसा होता है कि हड़ताल करने के उपरान्त मालिक यह घोषित कर देते हैं कि हड़ताल करने वाले मजदूर नौकरी से हटा दिये जावेंगे और जब समझौता हो

जाता है तो वे मजदूरों की नये सिरे से भर्ती करते हैं। इसका फल यह होता है कि उनके अधिकार और सुविधायें, जो कि उनको पुराने होने के कारण मिले थे, छिन जाते हैं। उनकी आर्थिक हानि होती है और उन मजदूरों को जिन्हें मालिक खतरनाक समझते हैं, लेते ही नहीं। एक कानून बना कर मजदूरों के इस अधिकार को सुरक्षित कर देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हड़ताल करने पर भी मजदूर का अपनी नौकरी पर से अधिकार नहीं जावेगा और समझौता होने पर वह अपनी नौकरी पर बिना किसी कठिनाई के वापस लौट सकेगा।

बात यह है कि मजदूर आर्थिक दृष्टि से बहुत निर्बल होता है। यदि अनिवार्य रूप से पंचायत कराने का कानून बना दिया जाता है तो समय अधिक लगने के कारण मजदूरों की हड़ताल करने की क्षमता नष्ट हो सकती है और मालिकों को अपनी शक्ति और साधन जुटाने का समय मिल जावेगा। सरकार को ऐसा कोई कानून न बनाना चाहिए कि जो मजदूरों की शक्ति को क्षीण करे और मालिकों की शक्ति को बढ़ावे। इसी प्रकार मालिकों को हड़ताल के समय अधिक मजदूरी देकर मजदूर भर्ती करने का अधिकार नहीं होना चाहिए। नई भर्ती से मालिक और मजदूरों के सम्बन्ध और भी खराब हो जाते हैं। नये मजदूरों के विरुद्ध हड़तालियों में बहुत कटु भावनायें उत्पन्न हो जाती हैं और कभी-कभी मजदूर अपनी रोजी को जाते देख कर हड़ताल को शान्तिमय रखने में असमर्थ हो जाते हैं।

मजदूरों की ओर से एक बात ध्यान में रखने की है। किसी-किसी धन्धे में कुछ क्रियायें ऐसी होती हैं कि यदि उनको भी छोड़ दिया जावे तो धन्धे को बहुत हानि होने की सम्भावना है। उदाहरण के लिए कोयले की खानों में यदि पम्प न चलाये जावें तो खानों में पानी भर जावे। इसी प्रकार लोहे और स्टील के कारखानों में भी ऐसी कुछ क्रियायें हैं। मजदूर अधिकतर हड़ताल के समय भी उन क्रियाओं से आदमियों को नहीं हटाते।

हड़तालों के सम्बन्ध में एक बात और ध्यान में रखने की है कि पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों को किसी भी पक्ष की सहायता न करना चाहिए। अभी तक पुलिस और मजिस्ट्रेट बहुधा मालिकों की सहायता करते रहे हैं। शान्तिमय हड़तालियों को गिरफ्तार करना, उन पर लाठी चार्ज करना, उनकी सभायें भंग कर देना, हड़ताल के समाचारों को सेंसर करना, मज़दूर नेताओं पर प्रतिबन्ध लगा देना, उन्हें गिरफ्तार कर लेना और जुलूस इत्यादि पर रोक लगा देने की घटनायें हमारे देश में आये दिन होती रहती हैं। उत्तरदायी सरकारों को पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों की इस नीति को कठोरतापूर्वक रोकना होगा। कहीं-कहीं तो पुलिस हड़ताल तोड़ने वाले मजदूरों को भर्ती करने में मालिकों को सहायता पहुंचाती है और उन नये मजदूरों को अपनी देख-भाल में मिलों के अन्दर पहुँचाती है। जैसे ही हड़ताल आरम्भ होती है, मजिस्ट्रेट दफा १४४ लगा देता है और मजदूरों को सभा करने इत्यादि की मनाही कर दी जाती है। आश्चर्य और खेद की बात तो यह है कि मजदूरों के विरुद्ध भारतवर्ष में दफा १४४ का हज़ारों बार प्रयोग किया गया, किन्तु मालिकों के विरुद्ध केवल एक बार इस दफा का आज तक प्रयोग किया गया है। आशा है कि भविष्य में जनता के प्रति उत्तरदायी प्रान्तीय सरकारें पुलिस और मजिस्ट्रेटों को मजदूरों के प्रति यह अन्याय करने से रोकेंगी। पुलिस और मजिस्ट्रेटों के इस व्यवहार का ही यह परिणाम है कि बहुत बार मजदूरों मे अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, गोली और लाठी चार्ज तक की नौबत आ जाती है। सरकार को कठोरतापूर्वक इस सब को रोकना चाहिए। लेबर कमिश्नर के नेतृत्व में पुलिस और मजिस्टेटों को काम करना चाहिए और उन्हें मजदूर नेताओं का सहयोग शान्ति बनाये रखने में लेना चाहिए। मजदूर नेताओं को मजदूरों से छीन लेने का सीधा परिणाम यह होता है कि मजदूरों का नेतृत्व करने वाला कोई नहीं रहता और वह ऊटपटांग काम करने लगते हैं।

पिछले वर्षों में भारत में सर्वहारा वर्ग में जो अभूतपूर्व जागृति हुई है और वे जो अपने अधिकारों को प्राप्त करने के उद्देश्य से पूँजीपतियों को चुनौती देने लगे हैं, उसका परिणाम यह होता है कि मालिक और मजदूरों में आये दिन संघर्ष होता है और हड़तालें होती हैं। इधर १९३८ में बम्बई सरकार ने जो ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट बनाया, उसमें एक प्रकार से हड़ताल को कानून द्वारा बहुत लम्बे समय तक रोक रखने का विधान किया गया है। अब भारतवर्ष भर में भारत सरकार द्वारा बनाया हुआ कानून, जो कि बम्बई ट्रेड डिस्प्यूट्स एक्ट के आधार पर बनाया गया है, लागू हो जावेगा। इसका दूसरे शब्दों में अर्थ यह हुआ कि हड़तालों को रोकने का सरकार को अधिकार प्राप्त हो जावेगा। हम यह पहले ही कह चुके हैं कि हड़तालों को लम्बे समय तक रोकने का अर्थ यह होगा कि मजदूरों को हड़ताल करना कठिन हो जावेगा। यह अनिवार्य-पंचायत एक प्रकार से मालिकों के पक्ष में और मजदूरों के विरुद्ध है। अतएव जब तक सरकार कानून बना कर मालिकों को औद्योगिक अदालतों के फैसलों को मानने के लिए विवश नहीं करती, तब तक अनिवार्य-पंचायत का विधान करना भी न्यायपूर्ण नहीं है। इधर हिन्दू-मुस्लिम दंगों के फलस्वरूप जो प्रान्तों में सुरक्षा सम्बन्धी कानून बनाये गए हैं, उनमें हड़तालों को भी रोकने और गैरकानूनी घोषित करने का विधान है। यह प्रवृत्ति खतरनाक है और मजदूर नेताओं को इस ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

ग्यारहवां परिच्छेद

मजदूर हितकर कार्य

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि मजदूरों के स्वास्थ्य तथा उनके हितों की रक्षा के लिए मजदूर कानूनों की आवश्यकता होती है।

मजदूर जितने ही संगठित होते हैं, देश में प्रगतिशील शक्तियां जितनी अधिक बलवान होती हैं, उतने ही अच्छे मजदूर-कानून देश में बनते हैं। परन्तु केवल मजदूर सम्बंधी कानूनों से ही मजदूरों के सारे कष्ट दूर नहीं हो जाते किन्तु दिन प्रति दिन उनके दैनिक कार्य में जो असुविधायें होती हैं उन्हें दूर करने की भी आवश्यकता होती है। अस्तु, मजदूर हितकर कार्यों की बहुत आवश्यकता है। मजदूर हितकर कार्य मिल मालिक, मजदूर सभायें तथा अन्य सामाजिक संस्थायें करती हैं। भारतवर्ष में मजदूर हितकर कार्य कुछ ही केन्द्रों और कारखानों में होता है। उसे अधिक सुसंगठित तथा वैज्ञानिक बनाने की आवश्यकता है।

काम के घंटे

यद्यपि कानून द्वारा काम के घंटे निर्धारित कर दिये गए हैं परन्तु फिर भी कारखानों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि भारतवर्ष एक गरम देश है और यहां कारखानों में काम करना अत्यन्त कष्ट-साध्य और स्वास्थ्य के लिए हानिकर है। बहुत से कारखानों में गरमियों के दिनों में तापमान १२० डिगरी फैरन हीट तक चढ़ जाता है और हवा भी बहुत गरम रुकी हुई और धूल तथा गंदगी से भरी रहती है। अस्तु, भारतीय मजदूर को अधिक निपुण बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि काम के घंटों को कम किया जावे और ऐसा प्रबंध किया जावे कि जिससे कारखाने में गरमी कम रहे और हवा का समुचित प्रबन्ध हो। कारखानों में गरमी कम करने तथा हवा का समुचित प्रबंध करने से मिल मालिकों को भी लाभ है। उससे मजदूरों की कार्य क्षमता बढ़ेगी और उत्पत्ति में वृद्धि होगी। मानवीय दृष्टिकोण से भी यह आवश्यक है क्योंकि अत्यधिक गरमी और रुकी हुई गंदी वायु मजदूर के लिए अत्यन्त हानिकर तथा कष्ट दायक होती है।

यही बात काम के घंटों के सम्बन्ध में लागू होती है। भारत में जो

मजदूर के काम के घंटों को कम करने की लगातार मांग की जाती है, उसका एक मात्र कारण यह नहीं है कि मजदूरों को अपने रहन-सहन का दर्जा ऊंचा करने तथा नागरिक के कर्त्तव्यों को पालन करने के लिए अधिक अवकाश चाहिए, वरन् भारत के गरम जलवायु में मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए यह आवश्यक है कि अधिक लम्बे समय तक कार्य न किया जावे। अगस्त १९४६ के पूर्व फैक्टरी कानून के अनुसार वर्ष भर चलने वाले कारखानों में प्रति सप्ताह ५४ घंटे काम लिया जा सकता था। किन्तु युद्ध के पूर्व अधिकांश कारखानों में कानून द्वारा निर्धारित घंटों से अधिक काम होता था। १९३८ में यह अनुमान लगाया गया था कि वर्ष भर चलने वाले कारखानें में २९ प्रतिशत पुरुष और ३१ प्रतिशत मजदूर प्रति सप्ताह ४८ घंटों से अधिक काम नहीं करते। खानों में तो प्रति सप्ताह खान के अन्दर अधिकांश मजदूर ४४ घंटे ही काम करते थे। मौसमी कारखानों में जहां प्रति सप्ताह ६० घंटे काम किया जा सकता था वहां भी अधिकांश मजदूर ४८ घंटे ही काम करते थे। यही कारण था कि जब अगस्त १९४६ में काम के घंटे घटा कर वर्ष भर चलने वाले कारखानों में ४८ कर दिये गये तथा मौसमी कारखानों में ५० कर दिये गये तो मिल मालिकों ने इसका कोई विशेष विरोध नहीं किया। युद्ध के समय अवश्य उत्पत्ति को बढ़ाने के लिए काम के घंटों को बढ़ा दिया गया था परन्तु वह अस्थायी था और युद्ध के उपरान्त काम के घंटे फिर कम कर दिये गये। परन्तु काम के घंटों को बढ़ाने से उत्पत्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई। अनुभव से हमें यह ज्ञात होता है कि अधिक घंटे काम लेने से उत्पत्ति में वृद्धि नहीं होती क्योंकि मजदूर की कुशलता कम हो जाती है। जब-जब काम के घंटों को कम करने की मांग हुई तब-तब मिल मालिकों ने उत्पत्ति के कम हो जाने का भय प्रदर्शित किया किन्तु अनुभव से ज्ञात हुआ कि उत्पत्ति कम नहीं हुई। इसका कारण यह है कि लम्बे घंटे काम लेने से मजदूर की कुशलता कम हो जाती है।

विश्राम

काम के घंटों से भी अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न विश्राम का है। मिल मालिकों को चाहिए कि वे इस बात का अध्ययन करें कि कितनी देर तक काम करने के उपरान्त मजदूर को विश्राम की आवश्यकता होगी और कब कम विश्राम देने से मजदूर अधिक से अधिक काम कर सकेगा। विश्राम, रोशनी, हवा का समुचित प्रबन्ध करने तथा विश्राम के घंटों में आराम से लेटने-बैठने के स्थान, तथा नहाने-धोने की सुविधा का प्रबंध करने से मजदूरों का स्वास्थ्य अच्छा होता है। ऐसा करने से मजदूरों का स्वास्थ्य और कुशलता बढ़ती है तथा उत्पादन बढ़ता है।

विशेषज्ञों का कथन है कि दो ढाई घंटा लगातार काम करने के उपरान्त मजदूर की कार्य शक्ति क्षीण होने लगती है और उसे विश्राम की आवश्यकता होती है। पांच-छः घंटे लगातार काम करना मजदूरों के लिए शक्य नहीं है। अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि दिन के अन्तिम घंटों में जबकि मजदूर थक जाता है तभी दुर्घटनायें अधिक होती हैं और मजदूर को चोट आ जाती है। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि मजदूर को उचित विश्राम दिया जावे।

भारतवर्ष में मजदूर निर्बल है फिर ऊपर से यहां का जलवायु ऐसा है कि मजदूर शीघ्र ही थक जाता है और उस थकावट के कारण उत्पादन भी कम होता है, दुर्घटनायें भी अधिक होती हैं। अतएव भारतवर्ष में जहां तक सम्भव हो ओवर टाइम काम नहीं लेना चाहिए। यदि अधिक उत्पादन की आवश्यकता हो तो शिफ्ट चलाना चाहिए।

रोशनी और हवा का प्रबंध

बहुत से कारखानों की इमारतें ऐसी होती हैं कि जिनमें यथेष्ट रोशनी और हवा की गुंजाइश नहीं होती। मजदूर को ऐसे कारखानों में काम करने से बहुत कष्ट होता है। यद्यपि इन्सपेक्टरों को यह अधिकार

है कि यदि वे देखें कि कारखानों में यथेष्ट रोशनी और हवा नहीं आती तो वह कारखाने के मालिकों को आवश्यक सुधार करने की आज्ञा दें परन्तु वे ऐसा नहीं कर सकते क्योंकि बहुत से कारखानों की इमारतें ऐसी बनी हैं कि उनमें बहुत अधिक परिवर्तन करने पर ही रोशनी और हवा अधिक मिल सकती है, परन्तु यह सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसा करने से व्यय बहुत अधिक होगा। होना तो यह चाहिए कि प्रत्येक मिल में जहां मजदूर काम करते हैं बिजली के पंखे लगा दिये जावें। इससे गरमी के दिनों में मजदूरों को पसीना नहीं आवेगा और वे अधिक उत्पादन कर सकेंगे। थोड़े से व्यय से मालिक को अधिक लाभ होगा किन्तु भारतीय व्यवसायी की दृष्टि बहुत ही संकुचित है वह उन कार्यों को भी नहीं करता कि जिनसे मजदूरों का कष्ट कम होने के साथ उसका उत्पादन भी बढ़ता है। हवा और रोशनी के सम्बन्ध में आवश्यक सुधार करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि यह नियम बना दिया जावे कि जब कोई नया कारखाना स्थापित हो तो उसकी इमारत के नक्शे को सरकार स्वीकार करे तभी वह कारखाना चल सकेगा। ऐसा करने से भविष्य में इमारतों में सुधार किया जा सकता है। कपास के पेंचों के सम्बन्ध में एक कानून बना दिया है। उक्त कानून के अन्तर्गत नये पेंच तभी खोले जा सकते हैं कि जब वे अपनी इमारत के नक्शे को सरकार से स्वीकार करवा लें। मदरास प्रान्तीय सरकार ने एक नियम बना दिया है कि जो भी नया कारखाना स्थापित हो उसकी इमारत के नक्शे को पहिले फैक्टरियों का चीफ इन्सपेक्टर निरीक्षण करेगा और उसकी स्वीकृति मिल जाने पर ही कारखाना चल सकेगा। आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रान्तों में इस प्रकार का नियम बना दिया जावे।

फैक्टरी का तापक्रम

भारतवर्ष में सूती कपड़े के कारखानों तथा बीड़ी के कारखानों में

कुछ विभागों में गरमी इतनी अधिक होती है कि वह मजदूर के लिए असहनीय हो उठती है। यही कारण है कि मजदूर दिन में कई घन्टे इधर-उधर घूमते और समय नष्ट करते रहते हैं। शाही लेबर कमीशन के सामने गवाही देते हुए कुछ बुनकरों ने कहा था कि जिन कारखानों में पंखे होते हैं, हम बीड़ी या तम्बाकू पीने बाहर जाते हैं और शीघ्र लौट आते हैं। किन्तु जिन कारखानों में पंखे नहीं हैं हमें बहुत देर तक बाहर रहना पड़ता है। कारखानों के अन्दर जहां पंखे नहीं होते वायु इतनी गरम हो उठती है कि मजदूर बहुधा बेहोश हो जाते हैं और उन्हें अस्पताल में ले जाना पड़ता है। गरमियों के दिनों में तो स्थिति और भी अधिक भयंकर हो उठती है। मजदूर तथा धंधे दोनों के ही हित के लिए यह आवश्यक है कि फैक्टरी ऐक्ट में इस बात का समावेश कर दिया जावे कि कारखानों का तापक्रम उचित हो। इसके लिए फैक्टरी एक्ट में संशोधन होना चाहिए। फैक्टरी इन्सपेक्टर को यह निर्धारित कर देना चाहिए कि किन उपायों से फैक्टरी का तापक्रम कम किया जा सकता है और फिर मिल मालिकों से उसके अनुसार कार्य करवाना चाहिए। अहमदाबाद की कतिपय मिलों में एअर कंडिशनिंग प्लाट लगाये गए हैं और हवा का उचित प्रबन्ध किया गया है। जिन विभागों में भाप देने की आवश्यकता होती है वहां भी यथेष्ट सुधार किया गया है। मजदूरों को कार्य करने में सुविधा हो इसका उन कारखानों में विशेष ध्यान रक्खा गया है। ऐसा करने से कारखाने के अन्दर का तापक्रम बाहर के तापक्रम से बहुत कम रहता है।

भारतवर्ष जैसे गरम देश में जहां कि गरमियों में साधारणतः कार्य करना कठिन होता है, कारखानों के तापक्रम को उचित रखना तथा यथेष्ट हवा का प्रबन्ध करना आवश्यक है। इससे मजदूरों को कष्ट कम होगा और उत्पादन भी अधिक हो सकेगा। इंजिनियरिंग तथा रेलवे वर्कशापों में कुछ विभागों में गरमी हद दर्जे को पहुँच जाती है और बहुत से मजदूर इस भीषण

गरमी के कारण मर जाते हैं। अतएव फैक्टरी कानून में इस आशय का संशोधन अवश्य कर देना चाहिए कि इन्स्पेक्टर प्रत्येक कारखाने में उचित तापक्रम का प्रबन्ध करे। लोहे तथा इंजिनियरिंग कारखानों में तो इसका विशेष रूप से ध्यान रखने की आवश्यकता है। गोलमुरी के टिनप्लेट कारखानों में मालिकों ने कुछ सुधार किया है। वहां जो मजदूर अग्नि के सामने काम करते हैं उन पर ठंडी हवा छोड़ी जाती है और पानी से फर्श ठंडा रक्खा जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि सभी कारखानों में गरमियों में बिजली के पंखे लगाये जावें साथ ही कपास, जूट, चावल, ऊन, चाय, कागज, सीमेंट तथा लाख के कारखानों में धूल तथा कण भरी हवा रहती है उसको सोखने के लिए यन्त्र लगाये जावें। क्योंकि जब मजदूर इस दूषित हवा में सांस लेता है तो उसके स्वास्थ्य पर बहुत बुरा असर पड़ता है।

अन्य सुविधायें

कुछ कारखानों में मजदूरों को चकाचौंध कर देने वाली रोशनी में काम करना पड़ता है। सरकार को यह नियम बना देना चाहिये कि ऐसी दशा में मजदूरों को धूप के चश्मे दिये जावें। जहां मजदूरों को आग के पास काम करना पड़े वहां उन्हें दस्ताने तथा जूते दिये जावें।

यदि कारखानों में हवा रोशनी तथा अन्य सुविधाओं का प्रबन्ध हो तो उत्पादन अवश्य ही बढ़ जावेगा। अहमदाबाद में केवल हवा का प्रबन्ध करने से उत्पादन में ९ प्रतिशत की वृद्धि हो गई। भारतवर्ष जैसे गरम देश में शिफ्टों का समय बदल देने से भी मजदूरों के कष्ट को कुछ कम किया जा सकता है। उदाहरण के लिये गरमियों में प्रातःकाल ५ बजे से १०-३० तक और २-३० सायंकाल से ५-३० तक काम के घंटे रखने से मजदूरों का कष्ट कम हो सकता है।

भारतीय सूती वस्त्र की मिलों में रात्रि में काम करने का चलन

है। इससे मजदूर के शरीर तथा उसके पारिवारिक जीवन पर बहुत बुरा असर पड़ता है। भारतीय औद्योगिक केन्द्रों में जहां पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत कम है, रात्रि में कार्य करने का परिणाम यह होता है कि मजदूरों में अनैतिकता तथा व्यभिचार बढ़ता है, आवश्यकता से अधिक मजदूर केन्द्रों में आते हैं और मजदूरों को जो भी थोड़ी सी मनोरंजन तथा शिक्षा की सुविधायें उपलब्ध हैं, उनसे भी वह वंचित हो जाते हैं। जापान में प्रातःकाल ५ से २ बजे सायंकाल तक तथा २ बजे सायंकाल से ११ बजे रात्रि तक दो शिफ्टों का चलन है और इन नौ घंटों के शिफ्ट में आध-घंटे का विश्राम मिलता है। भारत में भी यदि इस प्रकार के दो शिफ्ट चलाये जावें और बीच में एक घंटे का विश्राम दिया जावे तो मजदूरों के लिए सुविधा-जनक होगा।

पुरुष, स्त्री और बालक मजदूरों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि वे कितना बोझा उठावें, यह भी कानून द्वारा निर्धारित कर दिया जावे। पश्चिमीय देशों में इस प्रकार के कानून हैं, जिनके द्वारा अधिक से अधिक बोझा जो कि मजदूर ले जा सकता है, निर्धारित कर दिया जाता है। फ्रांस में अधिक से अधिक बोझा जो कि एक मजदूर स्त्री ले जा सकती है, ५५ पौंड है, ब्रिटेन में ६० पौंड, इटैली में ५४ पौंड तथा सोवियट रूस में पुरुष तथा स्त्री मजदूरों के लिए ४० पौंड निर्धारित किया गया है। भारतवर्ष में पुरुष तथा मजदूर स्त्रियों के लिए ३५ पौंड अधिक से अधिक बोझा निर्धारित कर देना चाहिए और उस दृष्टि से फैक्टरी कानून तथा खानों के कानून में संशोधन कर देना चाहिए। इससे पूर्व कि इस प्रकार का कोई कानून बनाया जावे, इस बात की आवश्यकता होगी कि कुछ विशेषज्ञों को इस बात का अध्ययन करने के लिए नियुक्त किया जावे कि वे यह पता लगावें कि पुरुष, स्त्री तथा बालक मजदूर अधिक से अधिक कितना बोझा उठा सकते हैं, जिससे कि उनके स्वास्थ्य को हानि न पहुँचे।*

विश्राम-गृह

भारत के अधिकांश कारखानों में विश्राम के लिए कोई विश्राम-गृह नहीं हैं। छुट्टी के समय मजदूर खाना खाने और विश्राम करने के लिए बाहर निकलते हैं। यदि कारखाने के कम्पाउन्ड में पेड़ों की छाया हुई तब तो अच्छा है, नहीं तो उन्हें बरसात और गरमियों में बहुत कष्ट होता है। अतएव इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि प्रत्येक कारखाने में विश्राम-गृह तथा जलपान गृह बनाये जावें, जहां मजदूर छुट्टी के समय तथा भोजन करने के समय विश्राम कर सकें। जिन कारखानों में ५० से अधिक स्त्रियां हों, वहां स्त्रियों के लिए विश्राम-गृह की अलग व्यवस्था हो।

फैक्टरी एक्ट में प्रान्तीय सरकारों को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वे चाहें तो नियम बना कर उन कारखानों को शिशु-गृह स्थापित करने पर विवश करें, जहां कि ५० से अधिक मजदूर स्त्रियां काम करती हों। सभी प्रान्तीय सरकारों को शिशु-गृहों के सम्बन्ध में नियम बना देना चाहिए। शिशु-गृहों में केवल शिशुओं के रखने की ही व्यवस्था न होना चाहिए, वहां नर्स रखनी चाहिए, जो शिशुओं की देख-भाल करे, दूध तथा अन्य भोजन का प्रबन्ध होना चाहिए, शिशुओं के खेलने तथा चिकित्सा का भी प्रबन्ध करना चाहिए, इसके अतिरिक्त शिशुओं के आराम का इन गृहों में समुचित प्रबन्ध होना आवश्यक है।

छोटे कारबारों को फैक्टरी कानून के अन्तर्गत लाने की आवश्यकता।

फैक्टरी कानून के अनुसार जहां कारखाना यांत्रिक शक्ति से संचालित होता हो और कम से कम २० मजदूर काम करते हों, फैक्टरी स्वीकार की जाती है। किन्तु प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे उस स्थान को भी फैक्टरी स्वीकार कर लें, जहां १० मजदूर काम करते हों। बहुत से पश्चिमीय देशों में उन स्थानों को भी फैक्टरी माना जाता है, जहां १० मजदूर कार्य करते हों फिर

चाहे वहां यांत्रिक शक्ति का उपयोग होता हो या न होता हो । इस बात की आवश्यकता है कि जिन स्थानों में यांत्रिक शक्ति का उपयोग होता हो, यदि वहां १० मजदूर भी काम करते हों तो उसे फैक्टरी मान लिया जावे और वहां फैक्टरी एक्ट लागू कर दिया जावे । जिन स्थानों पर यांत्रिक शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता है, परन्तु दस व्यक्तियों से अधिक कार्य करते हैं, वहां भी काम के घंटों को निर्धारित कर देना और सफाई, हवा तथा रोशनी के सम्बन्ध में नियम बना देना आवश्यक है ।

धान कूटने, दाल बनाने, आटे की चक्कियों, तेल पेरने, लकड़ी काटने (आराकशी), खंडसारी शकर तैयार करने, बीड़ी बनाने, बरफ के कारखानों, चमड़ा कमाने, अबरख तथा लाख के छोटे-छोटे कारखानों में मजदूरों को प्रति दिन १२ घंटे तक काम करना पड़ता है। इन स्थानों में बच्चों और स्त्रियों को अधिकतर रक्खा जाता है और वहां हवा और रोशनी का उचित प्रबन्ध नहीं होता। बीड़ी, अबरख और लाख के कारखानों में तो बहुत बड़ी संख्या में मजदूर काम करते हैं। उनकी दशा वास्तव में दयनीय है । उन्हें बहुत कम वेतन दिया जाता है और उन्हें १२ घंटे गंदे स्थानों में काम करना पड़ता है ।

किन्तु केवल कानून बना देने से ही कारखानों में सुधार नहीं हो जावेगा । आवश्यकता इस बात की है कि फैक्टरी इन्सपेक्टरों को यह अधिकार दिया जावे कि वह प्रत्येक कारखानों का निरीक्षण करने के उपरान्त जो भी मजदूरों की सुख-सुविधा के लिए आवश्यक समझें, वे सुधार करने की मालिक को आज्ञा दे सकें। पश्चिमीय देशों में इन 'आज्ञाओं' से कारखानों की दशा में यथेष्ट सुधार हुआ है। अतएव प्रान्तीय सरकारों को नियम बना कर इन्स्पेक्टरों को यह अधिकार दे देना चाहिए । इन्स्पेक्टरों को नीचे लिखी बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रत्येक कारखाने में पीने के लिये यथेष्ट ठंडा पानी रहना चाहिये, भोजन करने तथा विश्राम करने के लिए विश्राम-गृह होना

चाहिए, नहाने और कपड़ा धोने की सुविधा होनी चाहिए, शिशु-गृह होना चाहिए और फर्स्ट एड का प्रबन्ध होना चाहिए।

खानों सम्बन्धी कानून में संशोधन की आवश्यकता।

खानों के अन्दर काम करने वालों के स्वास्थ्य और सुख के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि खानों के अन्दर हवा, रोशनी, पीने के लिए ठंडा पानी तथा शौच गृह इत्यादि का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए। यद्यपि बड़ी खानों में बिजली, हवा और पानी का प्रबन्ध किया गया है, परन्तु भारत की अधिकांश छोटी खानों में हवा, रोशनी इत्यादि का कोई समुचित प्रबन्ध नहीं है। जब मजदूर खान के अन्दर काम करता है तो यदि आधुनिक ढंग के यन्त्रों द्वारा हवा पानी और रोशनी का खान के अन्दर समुचित प्रबन्ध न कर दिया जावे तो मजदूर को बेहद कष्ट होता है। गरमी के कारण मजदूर के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है। खान के अन्दर शौच-गृहों की व्यवस्था न होने के कारण मजदूर जो कि बहुधा नंगे पैर रहते हैं, उन्हें हुकवर्म रोग हो जाता है। यही कारण है कि झरिया के ६० प्रतिशत मजदूरों को हुकवर्म रोग है। छोटी खानों और खदानों का कोई ठीक प्रकार से निरीक्षण भी नहीं करता और उनमें काम करने वाले मजदूरों को अकथनीय कष्ट सहन करना पड़ता है। आवश्यकता इस बात की है कि सरकार खानों के कानून में उचित संशोधन करके खानों में ऊपर लिखी सुविधाओं को उपलब्ध करावे।

साधारण शिक्षा और शिल्प-शिक्षा

जब भारतीय मजदूर को स्वास्थ्य रक्षा के लिए उचित सुविधायें उपलब्ध कर दी जावेंगी और कारखानों का जीवन आज से अधिक स्वास्थ्यप्रद और आकर्षक होगा तभी मजदूर उन हितकर कार्यों से लाभ उठा सकेगा जो कि उसके लिए किये जावेंगे और तभी उसकी कार्यक्षमता बढ़ेगी। किन्तु केवल उसके स्वास्थ्य की रक्षा करने ही से वह अत्यन्त

कुशल मजदूर नहीं बन जावेगा। जब तक उसको साधारण तथा शिल्प-शिक्षा नहीं दी जावेगी, तब तक वह कुशल मजदूर नहीं बन सकता। यदि भविष्य में हमारा देश औद्योगिक उन्नति के स्वप्न देखता है तो उसे मजदूरों की शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। जापान पिछले दिनों में जो इतनी तेज़ी से औद्योगिक उन्नति कर सका उसका एक मुख्य कारण यह है कि वहां के मजदूर शिक्षित थे और उन्हें शिल्प-शिक्षा मिली थी। दुर्भाग्यवश भारतीय मजदूर नितान्त अशिक्षित है और उसे शिल्प सम्बन्धी शिक्षा भी नहीं मिलती, फिर भी उसने यन्त्रों पर काम करने की अपूर्व क्षमता प्रदर्शित की है।

अभी तक भारतीय मज़दूर को साधारण शिक्षा तथा शिल्प संबंधी शिक्षा देने की ओर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया है। बम्बई और अहमदाबाद की कतिपय मिलों ने रात्रि पाठशालायें खोल कर अपने मजदूरों को शिक्षा देने का प्रबंध किया है। नागपुर की एम्प्रेस मिल मदरास की बकिंगहम मिल तथा कलकत्ते की कुछ जूट मिलों ने रात्रि पाठशालायें स्थापित की हैं। किन्तु जो कुछ भी थोड़ी सी मिलों ने पाठशालायें स्थापित की हैं वे बालकों के लिए हैं प्रौढ़ों के लिए शिक्षा का प्रबंध बिलकुल नहीं किया गया। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक मिल अपने मजदूरों के लिए रात्रि स्कूल स्थापित करे। केवल पाठशालायें ही स्थापित करने से समस्या हल नहीं हो जावेगी वरन आवश्यकता इस बात की है कि मिल मालिक मज़दूरों के लिए वाचनालय तथा पुस्तकालय और रेडियो की व्यवस्था करें जिससे मजदूरों का ज्ञान और उनकी जानकारी बढ़े। यदि मिल मालिक शिक्षा तथा मनोरंजन पर थोड़ा सा व्यय करेंगे तो उनके मजदूरों की कार्यक्षमता बढ़ेगी और उनको अधिक लाभ होगा।

जहां तक शिल्प शिक्षा का प्रश्न है उसके लिए कारखानों के समूहों को मिल कर औद्योगिक केन्द्रों में ऐसी संस्थायें स्थापित करनी चाहिये कि जहाँ शिल्प शिक्षा दी जा सके। प्रत्येक कारखाना अपने कुछ मज़दूरों को

जिन्हें वह योग्य समझे छांट कर इन शिल्प शिक्षक संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजें। इन संस्थाओं के चलाने में सरकार भी सहायता दे। भारतीय मजदूर को कुशल बनाने के लिए इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि उसको शिक्षित और निपुण बनाया जावे अन्यथा भविष्य में भारत की औद्योगिक उन्नति में बाधा उपस्थित होगी।

यदि देश में अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा का आन्दोलन सफल हो जावे तो मिलों का कार्य और भी सरल हो जावेगा। इसमें कोई संदेह नहीं कि बिना शिक्षा के भारतीय मज़दूर कुशल नहीं बन सकता।

चिकित्सा की सुविधाओं का अभाव

यद्यपि बड़े-बड़े कारखाने अपने मजदूरों की चिकित्सा के लिए वैतनिक डाक्टर रखते हैं और कारखाने का अस्पताल भी होता है जहां मजदूरों की चिकित्सा का प्रबंध होता है किन्तु अधिकांश कारखानों में मजदूरों की चिकित्सा का कोई समुचित प्रबंध नहीं होता। निर्धन मज़दूर अपनी तथा अपने परिवार वालों की चिकित्सा के लिए यथेष्ट धन व्यय नहीं कर सकता। परिणाम यह होता है कि उसकी कार्यक्षमता घटती है। आवश्यकता इस बात की है कि प्रान्तीय सरकारें एक नियम बनादें कि जिन कारखानों में ५०० से अधिक मज़दूर कार्य करते हों उन्हें एक योग्य डाक्टर और अस्पताल रखना अनिवार्य हो। जहां छोटे छोटे कारखाने हों उनको मिला कर अस्पताल चलाने पर विवश किया जावे।

सामाजिक बीमा

जिन देशों में औद्योगिक उन्नति हुई है और कारखानों में काम करने वालों की संख्या बढ़ी है वहां मजदूरों की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने के लिए सामाजिक बीमे का प्रबंध किया गया है। औद्योगिक प्रधान देशों में मजदूर के चोट लगने पर अथवा मृत्यु होने पर क्षतिपूर्ति कानून

के अन्तर्गत मजदूर को अथवा मजदूर के आश्रितों को क्षतिपूर्ति की रक़म दी जाती है। इसके अतिरिक्त बीमार पड़ने पर, बेक़ार होने पर, तथा वृद्ध हो जाने पर जब कि मजदूर काम करने में असमर्थ हो जाता है तब उसको अलाउंस दिये जाने का प्रबंध किया गया है। बात यह है कि जब मजदूर कारखाने में कार्य करता है तब वह इतनी बचत नहीं कर पाता कि बेकारी के समय, बीमारी के समय तथा वृद्धावस्था के समय अपना निर्वाह कर सके। इसका परिणाम यह होता था कि जब मज़दूर बीमार पड़ता था, उसकी आय बंद हो जाती थी और उस दशा में वह इलाज तथा पथ्य के लिए व्यय नहीं कर पाता था। अतएव आमदनी न होने के कारण उसकी कार्यक्षमता नष्ट होती थी। इससे केवल मजदूर को ही कष्ट नहीं होता था परन्तु क्रमशः उसकी कार्यक्षमता नष्ट होने से उत्पादन पर भी बुरा प्रभाव पड़ता था।

यही दशा मज़दूर के बेकार हो जाने पर होती है। जब मज़दूर बेकार हो जाता है तो उसकी आमदनी बंद हो जाती है अतएव उसके रहन-सहन का दर्जा गिर जाता है। उसका परिणाम यह होता है कि उसकी कार्यक्षमता नष्ट होती है। यदि वह लम्बे समय तक बेकार रहे तो फिर उसको काम पाना कठिन हो जाता है, क्योंकि उचित भोजन और रहन-सहन न पाने के कारण उसका स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता गिर जाती है और उसको नौकरी मिलना कठिन हो जाती है। यदि उसको कोई काम मिलता भी है तो उसको पहले से कम मज़दूरी मिलती है क्योंकि उसकी कार्यक्षमता गिर जाती है।

बीमारी और बेकारी के कारण मज़दूर को कर्ज भी लेना पड़ता है। इस कारण आगे चल कर उसकी कार्यक्षमता और भी गिर जाती है क्योंकि उसको अपनी मज़दूरी में से कर्ज भी निबटाना पड़ता है। इस कारण आवश्यकता इस बात की है कि मज़दूर को बीमारी तथा बेकारी के समय कुछ अलाउंस दिया जावे जिससे कि बीमारी और बेकारी के दिनों में उसको कुछ आर्थिक सहायता मिल सके। जब वृद्धावस्था में

मज़दूर कार्य नहीं कर सकता और यदि उसने कुछ जमा नहीं कर पाया है तो उसके निर्वाह के लिए उसे एक पेंशन मिलनी चाहिए, नहीं तो मजदूर की दशा दयनीय हो जाती है। अन्य देशों में वृद्धावस्था में पेंशन मिलने की व्यवस्था की गई है।

इसी प्रकार मज़दूर स्त्रियों के बच्चा पैदा होने के कुछ समय पूर्व और कुछ समय के बाद तक आराम मिलना चाहिए, साथ ही उन्हें उस समय का वेतन भी मिलना चाहिए। क्योंकि उस समय का यदि उन्हें वेतन नहीं दिया गया तो वे छुट्टी न लेंगी और उससे उनके तथा भावी शिशु के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ेगा।

भारतवर्ष में अभी तक केवल मज़दूर क्षतिपूर्ति कानून (Workmen's Compensation Act) के अन्तर्गत मजदूर के चोट लगने तथा मृत्यु हो जाने पर उसे हर्जाना देने की व्यवस्था की गई है और मैटरनिटी बैनिफिट एक्ट के अन्तर्गत गर्भवती स्त्रियों को सवेतन एक मास पूर्व और एक मास उपरान्त की छुट्टी दी जाती है।

अभी हाल में मजदूर स्वास्थ्य बीमा सम्बन्धी जो कानून बनाया गया है, उसके अन्तर्गत मजदूर के बीमार होने पर उसकी चिकित्सा की व्यवस्था की जावेगी और उसको बीमारी के समय कुछ अलाउन्स दिया जावेगा। उसके लिए मिल-मालिक और मजदूर प्रतिमास कुछ देंगे और राज्य भी कुछ आर्थिक सहायता देगा।

अभी तक भारतवर्ष में बेकारी तथा वृद्धावस्था के लिए कुछ प्रबन्ध नहीं किया गया है।

बेकारी

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि बेकारी मजदूर के लिए एक भयंकर अभिशाप है, जिससे मजदूर आये दिन ग्रस्त होता है। आज के पूँजीवादी युग में उत्पादन का कार्य मांग पर निर्भर रहता है और आर्थिक मन्दी के कारण कभी-कभी धन्धों की दशा गिर जाती है, उस

दशा में मिल मालिक काम के घन्टे कम करके, मजदूरों की कटौती करके, सप्ताह में कम दिन काम करके अथवा कुछ समय के लिए कारखानों को बन्द करके उत्पादन को कम करने का प्रयत्न करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मजदूरों में बेकारी फैल जाती है। जिन देशों में धन्धों में लगे हुए मजदूरों की संख्या बहुत अधिक होती है वहां यदि बेकारी फैल जाती है तो उनकी क्रय-शक्ति भी कम हो जाती है और उसका परिणाम यह होता है कि आर्थिक मन्दी और भी गहरी हो जाती है और बेकारी भीषण रूप धारण कर लेती है। बेकारी में मजदूर विवश हो जाता है, उसका कोई बस नहीं रहता। वह काम करना चाहता है, परन्तु उसको काम नहीं मिलता। इसका परिणाम यह होता है कि उसकी कार्यक्षमता गिर जाती है और उसको दयनीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

भारतवर्ष में बेकारी की समस्या को हल करने के लिए शाही मजदूर कमीशन ने यह उपाय बतलाया था कि प्रत्येक औद्योगिक केन्द्र में म्युनिस्पैलिटी, कारपोरेशन तथा प्रान्तीय सरकार मिल कर कुछ निर्माण कार्य की योजनायें बनावें। वे योजनायें ऐसी हों कि जिनकी तुरन्त तो आवश्यकता न हो, किन्तु जो नगर के सुधार के लिए आवश्यक हों। जब औद्योगिक मन्दी के कारण धन्धे में बेकारी फैल जावे और उन्हें काम न मिले तो उस निर्माण कार्य को आरम्भ कराया जावे और बेकार मजदूरों को काम दिया जावे। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस योजना से कुछ मजदूरों को काम मिल सकता है, किन्तु बेकारी की समस्या इससे हल नहीं हो सकती। क्योंकि अब धन्धे छोटे-छोटे शहरों में भी स्थापित होने लगे हैं और बड़े केन्द्रों में मजदूरों की संख्या बेहद बढ़ गई है। अतएव यह आशा करना कि म्युनिस्पैलटियों अथवा कारपोरेशन के निर्माण कार्य की योजनाओं से बेकारी की समस्या को हल किया जा सकता है, केवल दुराशामात्र है।

इसके लिए बेकारी का बीमा कराना आवश्यक होगा। संसार के

प्रमुख औद्योगिक राष्ट्रों में अनिवार्य बेकारी बीमा प्रचलित कर दिया गया है, जिसके अन्तर्गत प्रत्येक मजदूर को बेकारी का बीमा कराना अनिवार्य है। परन्तु कुछ देशों में राज्य मिल-मालिकों को कुछ आर्थिक सहायता देकर उन्हें अपने मजदूरों की बेकारी का बीमा कराने के लिए प्रोत्साहित करता है। भारत में अनिवार्य बेकारी बीमा ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए। परन्तु यदि आरम्भ में यह कठिन हो तो राज्य मिल-मालिकों को आर्थिक सहायता देकर बेकारी-फंड स्थापित करने के लिए प्रोत्साहित करे। जिसमें मिल-मालिक और मजदूर भी धन दें। महायुद्ध की समाप्ति हो जाने के कुछ समय उपरान्त देश में बेकारी होने का भय है, ऐसी दशा में अनिवार्य बेकारी बीमे के लिए मजदूरों को प्रयत्न करना चाहिए। यदि ऐसा नहीं हुआ तो बेकारी के कारण मजदूरों की दशा दयनीय हो जावेगी।,

लेबर एकसचेंज

यह तो हम पहले ही कह चुके हैं कि भारतवर्ष में मजदूरों की भर्ती का काम सरदार या जाबर के हाथ में रहने के कारण घूस का बाजार गरम है और मजदूरों के स्थायी रूप से एक ही मिल में काम न करने के कारण प्रत्येक मिल में कुछ न कुछ जगह खाली रहती है। अस्तु, जाबर इस स्थिति का खूब ही लाभ उठाता है और प्रत्येक व्यक्ति से नौकरी देने के एवज में कुछ रुपये बना लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि जो भी नया ग्रामीण औद्योगिक केन्द्र में नौकरी की खोज में आता है, उसको कुछ ले-देकर नौकरी मिलने की सम्भावना रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि औद्योगिक केन्द्रों में आवश्यकता से अधिक मजदूर आ जाते हैं; क्योंकि वे घूस देकर नौकरी खरीद सकते हैं। इस समय भारतीय औद्योगिक केन्द्रों में मजदूरों की यह दशा है कि प्रत्येक मजदूर महीने में २० या २५ दिन का काम पा जाता है। इस कारण औद्योगिक केन्द्रों में आवश्यकता

से अधिक मजदूर आ जाते हैं।

यह तो हम पहले ही कह आये हैं कि प्रत्येक कारखाने में लेबर आफिसर नियुक्त होना चाहिये। किन्तु इतने से ही सारी समस्या हल नहीं हो जावेगी। बेकारी के समय मजदूरों के लिए काम ढूँढ़ने के लिए लेबर ऐक्सचेंज भी स्थापित होने चाहिए। जापान तथा अन्य देशों में लेबर ऐक्सचेंजों के द्वारा ही मिलें अपने मजदूरों की भर्ती करती हैं। प्रत्येक बेकार मजदूर समीपवर्ती लेबर ऐक्सचेंज में अपना नाम दर्ज करवा देता है और लेबर ऐक्सचेंज उसके लिए नौकरी ढूँढ़ती है। यदि नौकरी मिल जाती है तो लेबर ऐक्सचेंज उसे एक पत्र देकर कारखाने के मैनेजर के पास भेज देता है। कारखाने अपनी आवश्यकताओं को लेबर ऐक्सचेंजों के पास लिख भेजते हैं और लेबर ऐक्सचेंज अपने यहां दर्ज मजदूरों में से कुछ मजदूरों को उनके पास भेज देते हैं। मिल के कर्मचारी अपनी आवश्यकता के अनुसार मजदूरों को छांट लेते हैं।

भारतवर्ष में लेबर ऐक्सचेंजों की अभी महायुद्ध की समाप्ति पर स्थापना हुई। देश में इस समय ४० ऐक्सचेंजों की स्थापना हुई है, किन्तु यह ऐक्सचेंजें केवल सेनाओं से हटाये हुए लोगों को ही नौकरी दिलाने का काम करती हैं। आवश्यकता इस बात की है कि लेबर ऐक्सचेंज बहुत बड़ी संख्या में स्थापित की जावें और बेकार मजदूरों को नौकरी दिलाने में सहायता पहुँचाई जावे।

सामाजिक बीमा

जैसे-जैसे भारतवर्ष में उद्योग-धन्धों का विस्तार होता जावेगा, सामाजिक बीमे की आवश्यकता का अधिकाधिक अनुभव होगा। युद्धोपरान्त जो आर्थिक योजनायें बन रही हैं, उनके अन्तर्गत भारतवर्ष तेजी से औद्योगिक उन्नति की ओर अग्रसर होगा और यदि हमने सामाजिक बीमे के द्वारा उसके हितों की रक्षा का प्रबन्ध न कर दिया

तो मजदूर की स्थिति दयनीय हो जावेगी।

प्रश्न यह है कि बीमारी का बीमा, बेकारी का बीमा और वृद्धावस्था में पेन्शन का प्रबन्ध करने के लिए जो धनराशि की आवश्यकता होगी, उसका प्रबन्ध किस प्रकार होगा। इस प्रश्न का हल जिस प्रकार अन्य देशों ने किया है, उसी प्रकार इसका हल हमें करना होगा। अर्थात् मिल मालिक, मजदूर तथा राज्य तीनों को ही इसकी आर्थिक जिम्मेदारी उठानी होगी। लेखक का मत है कि जो भी सामाजिक बीमे की योजनायें बनें उनमें आर्थिक उत्तरदायित्व इस प्रकार बांटा जावे।

मालिक	६ आना
मजदूर	६ आना
सरकार	४ आना

इस प्रकार मजदूर और मालिक बीमे के व्यय को बराबर-बराबर सहन करेंगे। जब तक हम भारतीय मजदूर के लिए सामाजिक बीमे की व्यवस्था नहीं करते, तब तक उसकी स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। अस्तु, मजदूर-संघों और देश के नेताओं का ध्यान इस आवश्यक प्रश्न की ओर जाना चाहिए।

मजदूरों में मद्यपान

भारतीय मजदूरों में मद्यपान बहुत अधिक प्रचलित है। देशी शराब और ताड़ी का चलन इतनी अधिकता से मजदूरों में प्रचलित है, जिसका अनुमान करना भी कठिन है। बात यह है कि थके हुए मजदूर के लिए कुछ स्फूर्ति चाहिए। किन्तु उसके लिए स्फूर्ति देने का कोई साधन नहीं होता। वह सीधा ताड़ी की दूकान या शराब की भट्टी पर जाकर नशा करता है और अपने थके हुए शरीर में नवीन स्फूर्ति भरता है, चाहे फिर वह स्फूर्ति हानिकर ही क्यों न हो। थके हुए शरीर और उदास मन में शराब या ताड़ी पीकर चैतन्य उदय होता है। भारतीय मजदूर में मद्य-

पान का व्यसन बढ़ता जा रहा है। इससे उसके स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

आवश्यकता इस बात की है कि जहां औद्योगिक क्षेत्र हों, वहां शराब बंदी करदी जावे और मजदूरों के सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधन उपलब्ध किये जावें। मजदूरों की बस्तियों में खेलों, सिनेमा शो, पुस्तकालय, नाटक मंडली, तथा अन्य सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधनों का प्रबंध होना चाहिए, तभी मद्यपान के विरुद्ध आन्दोलन सफल हो सकता है। जब तक हम थके हुए शरीर और उदास मन में स्फूर्ति और शक्ति भरने के साधन मजदूर के लिए उपलब्ध नहीं कर देते, तब तक उसको मद्यपान से बचाया नहीं जा सकता। अभी तक बहुत थोड़े भारतीय मिल मालिकों ने मजदूरों के लिए सुरुचिपूर्ण मनोरंजन के साधनों की आवश्यकता को अनुभव किया है। ट्रेड यूनियनों का भी इस दिशा में कुछ कर्तव्य है, जिसकी ओर मजदूर कार्य-कर्त्ताओं को ध्यान देना चाहिए।